ज्ञान-धारा रत्न माला, तीसरा रत्न

[अ]नन्त की ओर साधो अनन्त की ओर!

लेखक

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रचयिता

(ज्ञान के उद्यान में, अमरीका के निर्धन विद्यार्थी, राष्ट्रीय संध्या, स्वतन्त्रता की खोज में, संजीवनी-बूटी आदि)।

मिलने का पता

'ज्ञान-धारा' कार्यालय, अलीगढ़।

[प्रथम संस्क]रण } दिसम्बर सन् १९४[...]

...से भेंट करने ...र्स, पुस्तक विक्रेता, बड़ाबाज़ार, अलीगढ़ से पूछ लेना चाहिये।

सोल एजेन्ट्स
गोविन्द ब्रदर्स, अलीगढ़।

मुद्रक
पं० रामलाल झा
रामेश्वर प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़।

नम्र निवेदन

राजनीति शिक्षा, राष्ट्र-धर्म, भ्रमण वृतान्त, वीर्य-रक्षा, लेखन कला आदि विषयों पर तो मैंने लेखनी चलाई है, किन्तु अध्यात्म तत्त्वों के सम्बन्ध में मैंने अभी तक कुछ नहीं लिखा था। जब मैं अपने प्रेमी पाठकों तथा पाठिकाओं से इस की मांग सुनता तो सोचता था कि किस प्रकार हिन्दी भाषा-भाषियों के सामने अपने एसे अनुभवों को सरल भाषा में भेंट करूँ। हमारे यहाँ अध्यात्मवाद का अर्थ दीन-दुनिया से अलग होकर योग साधना माना जाता है, किन्तु मुझे ऐसा अध्यात्मवाद कभी पसन्द नहीं आया।

मैं हूँ उपयोगितावादी। मुझे छायावादी और रहस्यवादी लटके कभी पसन्द नहीं आये। दिमाग़ी ऐयाशी की पुस्तकें और कविताएं मेरे निकट दो कौड़ी कीमत भी नहीं रखतीं। साहित्य भी एक साधन है मानव के उत्कर्ष का। जो भाषा तथा साहित्य समाज को ऊपर नहीं उठाता, दैनिक जीवन की समस्याओं को हल नहीं करता, मनोविज्ञान के चमत्कारों पर प्रकाश नहीं डालता और सत्य ज्ञान की प्राप्ति में सहायक नहीं बनता, वह साहित्य और भाषा केवल समय नष्ट करने वाली है।

इसलिये मैं ऐसी शैली की खोज में था जो अध्यात्मवाद के अत्यन्त उपयोगी विषय को मेरे आदर्शानुसार सरल भाषा में स्पष्ट कर सकती। प्रभु की कृपा से अमरीका के प्रसिद्ध लेखक श्रीमान् राल्फ वाल्डो त्राइण की पुस्तक मेरे देखने में आई। अध्यात्मवाद पर प्रकाश डालने का यह ढंग मेरे मन भाया और मैंने उसे अपनाया। अध्यात्मवाद के अपने अनुभवों को मिला कर भारतीय आवश्यकताओं के अनुसार उसे ढाल कर, दैनिक समस्याओं का हल समझा कर, मैंने अपनी स्वाभाविक

शैली के सहारे अपने इस ग्रंथ की रचना की और बहुत सी सामग्री बढ़ाकर दो अध्याय नये भी जोड़ दिये, जिससे वह विषय पाठकों को हृदय-ग्राह्य और पठनीय होजाय।

मुझे विश्वास है कि जिस प्रकार मैं त्राइण महोदय का ऋणी हूँ और उनके लिखने के ढंग ने मुझे प्रफुल्लित किया इसी प्रकार मेरी यह पुस्तक हिन्दी पाठक-पाठिकाओं का मन मुदित करेगी और उनका सच्चा मित्र बन कर स्वाध्याय का काम देगी।

इस पुस्तक में मैंने धार्मिक विचारों के सम्बन्ध में खुली व्याख्या की है। मैंने इस बात का प्रयत्न किया है कि वर्तमान काल में जो अशान्ति, धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में, मानव-समाज में फैली हुई है उसका अच्छी तरह से समाधान कर दूँ और मुमुक्षुजनों के लिये इसमें भरपूर सामग्री जुटाऊँ। मैंने इस बात का प्रयास किया है कि यह मेरी पुस्तक दैनिक जीवन के सभी अङ्गों का भली प्रकार विकास करे, और जो कठिनाइयां साधारण मनुष्यों के मार्ग में आकर खड़ी हो जाती है, उन्हें दूर करने के उपाय सहज में ही मिल जांय। इतना ही नहीं बल्कि हिंसा प्रतिहिंसा के कारण जो कड़ुवे फल सभ्य संसार को चखने पड़ रहे हैं उनका निरूपण भी परा-अपरा द्वारा स्पष्ट कर दूं।

आशा है कि त्राइण महाशय की मूल पुस्तक पर जो मैंने अपनी भारतीय पुट लगायी है, उससे मेरे पाठक इस ग्रन्थ की उपयोगिता का और भी अधिक आदर करेंगे और इसका प्रचार बढ़ायेंगे।

'ज्ञानधारा' कार्यालय, विनम्र
विष्णुपुरी, अलीगढ़। सत्यदेव परिव्राजक

श्रद्धा के फूल

जिस मेरी आदरणीया जननी ने मुझे बाल्यकाल से ही ईश्वर-भक्ति के भजन सिखाये, जिसने मुझे सच्चे वैराग्य का उपदेश दिया और जिसने सुन्दर संस्कार देकर मुझ में देश-प्रेम भरा, उस स्वर्गीया माता नारायणदेवी जी के पवित्र चरण-कमलों में मैं यह श्रद्धा के फूल सादर समर्पित करता हूं।

सत्यदेव

विषय-सूची

As the lamp does not burn without oil,
So man cannot live without God.

—*Ramakrishna Paramhamsa.*

That body in which love does not dwell is a crematorium.

—*Kabir.*

सत्य से तप से, यह आत्मा प्राप्त होता है,
पूर्ण ज्ञान से, नित्य ब्रह्मचर्य से—
शरीर के भीतर, ज्योतिर्मय और शुद्ध,
जिस को दोष रहित यति लोग देखते हैं।

—मुण्डकोपनिषद् ३ । ५ ॥

By the blessing of the Upright the country is exalted: but it is over thrown by the mouth of the wicked.

—*Solomon.*

Thoughts are mightier than strength of hand.

—*Sophocles.*

अनन्त की ओर साधो अनन्त की ओर!!

विषय प्रवेश

जीवन का यथार्थ स्वरूप

जब से मनुष्य ने होश सम्भाला है और मानव-समाज का संगठन हुआ है, तब से जीवन के सम्बन्ध में कई प्रकार की विचार-धारायें बहती चली आरही हैं। जीवन-संग्राम के भयंकर तूफ़ानों के कारण तथा जरा-व्याधि और मृत्यु के कारण मनुष्य ने यह परिणाम निकाला कि यह संसार अनित्य है जीवन दुःखमय है और शरीर व्यधि का घर है। यह परिणाम निकालने के बाद मनुष्य को इस की आवश्यकता पड़ी कि वह मरने के बाद ऐसे परलोक की रचना करे, जिस में जीवन-सम्बन्धी कोई क्लेश न हो और उसे सब प्रकार के सुखों की सामग्री भरपूर मिलती रहे। उसी नवीन लोक का नाम उसने स्वर्ग रखा। इस स्वर्ग की प्राप्ति के लिये उसने एक दूसरी विचार धारा बनाई कि मनुष्य जन्म से ही पापी है और शरीर, जो रोगों का घर है, उस के पापों के कारण ही उसे मिलता है। नवीन लोक में जाने के लिये मनुष्य को शुद्ध पवित्र बनना चाहिये, इस कारण उसे पापों का त्राण कराने वाले एक मुक्ति दाता की आवश्यकता पड़ी, जो उसे मरने के बाद स्वर्ग में ले जा सके।

जीवन के इस तत्व दर्शन के मानने वाले दुनिया में आज करोड़ों लोग हैं, जो अपने आप को पापी समझ कर दूसरे

लोक की चिन्ता में सब प्रकार के शुभ कामों को करते हैं औ यह समझते हैं कि यह नश्वर संसार दुःखों का आगार होने कारण त्याग देने योग्य ही है। इसलिये वे सदा स्वर्ग प्रतीक्षा में रहते हैं।

इस विचार धारा के अतिरिक्त ऐसे भी लोग हैं जो केव इसी जन्म को मानते हैं और 'खाओ पीओ और मौज करो इस जीवन दर्शन पर चलते हैं। वे ईश्वर, परलोक और स्व ऐसी किसी चीज़ पर विश्वास नहीं करते। वे केवल भोग-विला के जीवन को ही असली जीवन समझते हैं। इसी प्रकार लाखों स्त्री-पुरुष मानव-समाज में पशुओं की तरह जीवन व्यती करते हुये विचरते हैं।

उपरोक्त दो विचार धाराओं के अतिरिक्त एक तीसरी विचा धारा नवीन वेदान्तियों की है, जो संसार को मिथ्या मान क केवल ब्रह्म की सत्यता को ही स्वीकार करते हैं। उनका म यह है कि शरीर में ब्रह्म की चेतना शक्ति ही अपना प्रदर्श करती हुई सारे कार्य करती है, किन्तु अविद्या के कारण व चेतना मायारूपी प्रकृति के वश में होकर अपने आप को जी समझने लगी है। जिस क्षण वह जीव अविद्या के जाल से छूट कर अपने स्वरूप को पहचान लेगा, उसी समय उसका भ्रम दू हो जायेगा और वह ब्रह्म में मिल जायगा। इस विचार धार के अनुयायी भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि दूसरे देशों में भ पाये जाते हैं।

आज इस बीसवीं शताब्दी में जीवन का यथार्थ स्वरूप क्य है ? इस प्रश्न पर बुद्धिवाद के प्रकाश में हम विचार करने लग हैं। इन सब विचार धाराओं के विरुद्ध हमारी घोषणा य है कि यह संसार नित्य है, जीवन आनन्दमय और शरीर आत्म

का मन्दिर है। दुःख नाम की कोई चीज़ इस संसार में नहीं। जिस कलाकार ने इस ब्रह्माण्ड को रचा है, उसी ने इस मानव देह को भी बनाया है; जो अनादि सिद्धान्त इस ब्रह्म-चक्र में नियम पूर्वक काम कर रहे हैं, वही इस मानव-शरीर में भी अपना चमत्कार दिखलाते हैं। जीवन के इस स्वरूप को समझने के लिये जीवन-कला को जानना चाहिये और जो स्त्री-पुरुष इस जीवन की कला को जिस अंश तक समझते हैं, उतने अंश तक वे जीवन-दर्शन के मर्म को अनुभव करते हैं।

किसी विद्वान् ने सच कहा है—"Every life is a work of art shaped by the man who lives it". अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-कला के ज्ञान के अनुसार अपने शरीर का विकास करता है। जब हम किसी निरोग और हंस-मुख व्यक्ति से मिलते हैं, उसे देख कर हमारा हृदय गद्गद् हो उठता है तो हमें यह मानना पड़ता है कि वह व्यक्ति जीवन को समझता है। वह जहां कहीं भी चला जाता है, उसके रोम-रोम से जीवन-धाराएं प्रस्फुटित होने लगती हैं; जब वह बातचीत करने लगता है तो उसके मुंह से मानों अमृत वर्षा होती है। उस के सम्पर्क में आने वाले स्त्री-पुरुष निहाल हो जाते हैं। उस की उपस्थिति शान्ति का वातावरण उत्पन्न करती है। ये हैं वे व्यक्ति जो जीवन-कला को समझते हैं और जिनके तेजस्वी चेहरे जीवन-कला की ज्योति से परिपूर्ण होते हैं।

इस के विपरीत ऐसे भी हजारों मनहूस स्त्री-पुरुष हैं, जो अपनी चिन्ताओं और दुःखों का बोझा लादे हुये न केवल अपने आप को चिन्ता-ग्रस्त करते हैं बल्कि दूसरों को भी अपने पापों का हिस्सा बांटते फिरते हैं। वे जवानी में बूढ़े हो जाते हैं और उनकी टांगें कबरों में लटकने लग जाती हैं। ये चटोरे लोग

इन्द्रियों के दास बने हुये सदाँ उनकी गुलामी करते हैं और अपना सारा जीवन-रस खो कर शोक-सागर में डूब जाते हैं। उनके चेहरे की मुर्दनी इस बात को साफ़ प्रकट करती है कि वे जीवन-कला से कितने अनभिज्ञ हैं और उन्होंने जीवन-कला का ककहरा भी अभी तक नहीं जाना। आप हस्पतालों में जाकर देखिये, अनेक नासमझ लोग नाना प्रकार के रोगों को लिये हुए मुर्झाए चेहरों के साथ जीवन के प्रति अपनी अज्ञानता का परिचय देते हैं; लाखों स्त्री-पुरुष विषय-भोगों के मारे हुये असाध्य रोगों से ग्रस्त हो मृत्यु की घड़ियां गिन रहे हैं। जीवन-कला से शून्य ये नर-नारी केवल अपने लिये ही नर्क की रचना नहीं करते परन्तु अपने सम्पर्क में आने वाले इष्ट मित्रों के लिये भी नर्क का द्वार खोल देते हैं। प्रकृति के नियमों को तोड़ने वाले यह पापी लोग प्रकृति-माता के डण्डे खा रहे हैं और समाज के सामने ऐसे ही अपराधी हैं जैसे चोर, डाकू और हत्यारे।

आज विज्ञान ने जरा, व्याधि और मृत्यु को जीतने का मार्ग बतला दिया है। जिन तीन प्रकार के शारीरिक क्लेशों को देख कर सिद्धार्थ के मन में संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हुआ था, शरीर की उन तीन अवस्थाओं जरा, व्याधि और मृत्यु के मनोवैज्ञानिक स्वभाव को आज भौतिक विद्या-विशारद विद्वानों ने भली प्रकार जान लिया है। आज विज्ञान बड़े जोर से यह घोषणा करता है कि मानवी भावना ही सब शारीरिक अवस्थाओं की जननी है। मनुष्य के शरीर का काया-कल्प साल भर के अन्दर हो सकता है और कुछ भाग तो कुछ महीनों में ही बिल्कुल नये बनाए जा सकते हैं। मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार प्राकृतिक नियमों का पालन करता हुआ अपने

यौवन को स्थिर रख सकता है और उसे कभी भी बुढ़ापा नहीं सता सकता यदि वह मन-रूपी चुम्बक-पत्थर के चमत्कारों को हृदयङ्गम कर लें। यदि नव्वे वर्ष की आयु रखने वाला प्रसिद्ध विद्वान् जार्ज बर्नाडशा अपनी इस अवस्था में भी सरोवर में कुदकियां लगा सकता है और जवानी का आनन्द ले सकता है तो क्या कारण है कि दूसरे भी वैसा नहीं कर सकते। प्रकृति के नियम अटल हैं—वे तीनों कालों में एक रस रहते हैं। उन का प्रभाव सब के लिये एक जैसा होता है।

अच्छा, अब जरा व्याधी के विषय में सुनिये। मनोविज्ञान ने इस बात को सिद्ध किया है कि मानव शरीर को सताने वाले सभी रोग मनोविकारों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्षा, द्वेष आदि से उत्पन्न होते हैं और इन रोगों का उपचार बाहर की दवाइयों से नहीं होता, बल्कि अन्दर के संयम से होता है। बाहर की दवाइयां तो केवल उन रोगों को रोकने में सहायक होती हैं। लेकिन निरोग बनाने में आन्तरिक इच्छा-शक्ति ही काम देती है। यदि हम अपने मन को शुद्ध पवित्र बनाले और उस की वृत्ति अन्तर्मुखी कर लें तो हमारे सब दुःख दूर हो जांय।

अतएव जीवन का यथार्थ स्वरूप समझने के लिये सब से पहिले हमें यह बात जान लेनी चाहिये कि यह संसार जो हमारे सामने है, हमें इसे ही स्वर्ग बनाना है। मरने के बाद जिस स्वर्ग के विषय में हम अभी तक विश्वास करते रहे हैं, वह विकृत मस्तिष्क की उपज मात्र है। 'यह चमन यूँही रहेगा और हजारों जानवर, अपनी अपनी बोलियां सब बोल कर उड़ जायेंगे'—कवि की यह उक्ति सत्य ही समझनी चाहिये। हजारों वर्षों से भारतवर्ष के यह नगर, उस की यह नदियां और पहाड़

बराबर अपना सन्देश दे रहे हैं, किन्तु इन के साथ खेलने वाले खिलाड़ी आये और चले गये। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारा अपना प्रारब्ध हमारी अपनी मुट्ठी में है। यदि हम अपने जीवन को कला के रूप में समझ कर इसे व्यवस्थित कर लें और इन्द्रिय-संयम सीख जायें तो हमें जीवन का माधुर्य मिलने लगे। प्रभु ने इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न किये हैं, किन्तु शरीर के अपने-अपने विकास के अनुसार उन के उपयोग की विधि को जानना ही जीवन-कला को समझना है। हमारा दृष्टिकोण सर्वाङ्गपूर्ण होना चाहिये। व्यक्तिवादी समाज ही अपने लिए दुःख के पहाड़ खड़े करता है, क्योंकि उसका प्रत्येक सदस्य केवल अपने ही स्वार्थ को देखता है। होना यह चाहिये कि हम सब के भले में अपना भला देखना सीखें, तभी हम इस संसार को स्वर्ग बना सकते हैं।

अन्त में हमारा निवेदन यह है कि कभी भूल कर भी बुढ़ापा और रोग की भावनाओं को अपने अन्दर स्थान न दीजिये। सौन्दर्य, शृंगार-रस में नहीं, बन-ठन कर रहने में नहीं, अपितु उस में है जो सुन्दर काम करता है—"Handsome is he who handsome does" अर्थात् जो अन्दर मलिन भावनायें रख कर बाहर की सफ़ाई दिखलाते हैं, वह केवल अपने आप को धोखा देते हैं। इसलिये जीवन को अनुशासन में रख कर, व्यायाम द्वारा शरीर को निरोग बना, मन, वाणी और कर्म में जो स्त्री-पुरुष एकता स्थापित कर लेते हैं, वे ही जीवन के यथार्थ स्वरूप को पहचानते हैं और उन के द्वारा ही यह संसार स्वर्ग बन सकता है।

प्रथम अध्याय

परमार्थी और स्वार्थी

जीवन के जिस विषय की विवेचना हमने ऊपर की है, जिस स्वर्ग की हम स्थापना इस पृथ्वी पर करना चाहते हैं, जिस महामन्त्र से हम संसार के लोगों को दुःखों से छुड़ाना चाहते हैं, वह महामन्त्र क्या है ? दुनियां में हैं दो प्रकार के लोग— परमार्थी और स्वार्थी। इन दोनों में प्रकाश और अंधकार के समान बुद्धि-भेद है—पहला परमार्थी है जो प्रकाश में रहता है और दूसरा स्वार्थी है जो अन्धकार में निवास करता है। लेकिन आश्चर्य यह है कि दोनों ही सच्चे हैं। क्यों दोनों इसलिये सच्चे हैं कि उनका अपना अपना दृष्टिकोंण हैं और वह दृष्टिकोंण ही मानव-जीवन के उत्थान-पतन, सुख-दुख, विद्या-अविद्या का मुख्य कारण है। यह दृष्टिकोंण इस बात को निश्चित करता है कि उसके रखने वाला शक्तिशाली जीवन प्राप्ति का इच्छुक है अथवा नपुंसकता के गर्त में गिरना चाहता है: इतना ही नहीं बल्कि इससे यह भी पता चलेगा कि उसे जीवन में शान्ति चाहिये या अशान्ति। जीवन के इस संग्राम में मानव-दृष्टिकोंण ही सफलता अथवा निराशा का पथ दिखलाता है।

देखिये। परमार्थी का दृष्टि-कोंण सर्वांगपूर्ण है, वह आशा से भरा हुआ है। वह अपने जीवन के अनुभव में चारों ओर निरीक्षण कर अपना कर्तव्य निश्चित करता है, इसलिये उसका कार्य सर्वांगपूर्ण रहता है। इसके विपरीत स्वार्थी मनुष्य व्यक्तिवादी है। वह सीमा के अन्दर बँधा हुआ पार्टी बाज़ है; वह

जाति-पांति के माया-जाल में फँसा हुआ दूरदर्शी नहीं हो सकता; उसने अपने इर्द-गिर्द दीवालें खड़ी कर रखी हैं और अपने को ही सब कुछ मान कूप-मण्डूक बना बैठा है। परमार्थी का दृष्टिकोण सत्य-ज्ञान के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित रहता है; उसके साथी स्वार्थी का दृष्टि-कोंण सीमित होने के कारण घटाटोप अंधकारमय बना रहता है। दोनों ही अन्दर की भावनाओं के द्वारा अपनी अपनी सृष्टि की रचना करते हैं और उस रचना का परिणाम उनके अपने अपने दृष्टि-कोंण से परिपालित होता है। परमार्थी का दृष्टि-कोंण सात्विक, परोपकारी और सर्वोपयोगी होने के कारण समाज में स्वर्ग की रचना करता है, इसके विपरीत स्वार्थी का दृष्टि-कोंण एकाङ्गी, खुदगर्जी से भरा हुआ और अपना ही लाभ सोचने की बुद्धि रखने के हेतु समाज में नर्क के सामान उत्पन्न करता है। जितने दर्जे तक एक परमार्थी पुरुष परोपकार में रत होकर स्वर्ग की रचना करता है, उतने दर्जे तक वह दूसरों को भी स्वर्ग का आनन्द देता रहता है; इसी प्रकार स्वार्थी व्यक्ति जितने दर्जे तक स्वार्थ में लगा रहता है, उतने दर्जे तक ही वह अपने इर्द गिर्द के लोगों के लिये नर्क के कीटाणु फैलाता रहता है।

हम चाहते हैं संसार को स्वर्ग बनाना। इसे कैसे स्वर्ग बनायेंगे? हमारी घोषणा यह है कि हममें प्रत्येक मनुष्य अपने अपने दृष्टि-कोंण द्वारा प्रत्येक समय स्वर्ग अथवा नर्क की रचना समाज में करता रहता है। जैसा दृष्टि-कोंण हम रखते हैं, उसी के अनुसार हम समाज का निर्माण करते जाते हैं। इस संसार को स्वर्ग अथवा नर्क बनाने की कला हमारी मुट्ठी में है हम नित्य प्रति अपने कर्मों द्वारा समाज को उत्कर्ष अथवा पतन की ओर ले जा रहे हैं। जितने दर्जे तक हम में भलाई या

बुराई करने की शक्ति होगी, उतने दर्जे तक हम संसार के लिये सुख अथवा दुख के सामान उत्पन्न करेंगे।

अच्छा, तो प्रश्न उठता है कि स्वर्ग किसको कहते हैं? स्वर्ग नाम है समता, एक रसता, न्याय-शीलता और प्रेम का। इसके विपरीत नर्क से पहचान होती है भेद-बुद्धि की, छूत-छात की, जाति-पाति की और ऊँच-नीच की। संगीत में सात स्वर होते हैं, किन्तु वे कलाकार के हाथ में ही माधुर्य पैदा कर सकते हैं और ऐसा माधुर्य कि मनुष्य और पशु-पक्षी सब उसके वशीभूत हो जांय। लेकिन वही संगीत मूर्ख मनुष्य के हाथ में विभिन्नता पैदा कर कानों को फाड़ने वाला बन जाता है और कोई उसे पसन्द नहीं करता।

अब यहाँ पर यह बात सामने खड़ी हो जाती है कि वह कौन सी ऐसी वस्तु, शक्ति-शाली पदार्थ, चैतन्यता की मूर्त्ति और जीवन का स्रोत है, जिसके सम्पर्क में आने से पशु जैसा मनुष्य परमार्थी बन जाता है और जिसके अभाव से मनुष्य निराशा वादी, स्वार्थी और मद-मत्त बन जाता है। जब तक हम जीवन के उस महा कारण को नहीं पहचानेंगे, तब तक हम संसार में फैले हुये दुखों, नर्क की यातनाओं, अन्याय के आगारों और मनोविकारों को दूर करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

आइये, अब हम उस शक्ति की खोज करें जिसके साथ सम्बन्ध होने से एक मनुष्य दयालु, धर्मात्मा, न्याय शील और प्रेम की मूर्ति बन जाता है और जिसके साथ सम्बन्ध टूटने से मनुष्य परम स्वार्थी और राक्षसी-वृत्ति वाला बन जाता है। अगले अध्याय में हम इसी की विवेचना करेंगे।

दूसरा अध्याय

विश्व का सर्वोत्कृष्ट तथ्य

विश्व का महान् केन्द्रीभूत तथ्य यह है— इस सारे ब्रह्माण्ड के पीछे एक अनन्त जीवन-शक्ति कार्य कर रही है, जो सब को जीवन प्रदान करती है, जो सब पदार्थों में अपनी ज्योति और चेतना का प्रादुर्भाव करती है; वह सजीवता का स्वयम्भु सिद्धान्त जिससे सब पदार्थों का जन्म होता है- न केवल उससे सब पदार्थ निकलते हैं, बल्कि लगातार उत्पन्न होते चले आ रहे हैं और जो सारे जगत में चेतना की धारा बहाता है तथा जिस की शक्ति से छोटे से छोटे कीट से लेकर बड़े से बड़े विकसित मनुष्य को चैतन्यता का प्रदर्शन होता है।

अब हमें यह जान लेना चाहिये कि जहाँ कहीं भी किसी एक पृथक संजीवनी शक्ति अथवा सात्विक गुणों का प्रादुर्भाव हमें दृष्टि गोचर होता है तो उसके अनन्त स्रोत का होना भी अत्यावश्यक है, जहां से उन सद्गुणों की जीवन धारा बहती चली आ रही है, जो प्राणी मात्र को चेतना दे रही है। इसी प्रकार यदि हम किसी स्थान में प्रेम की सम्मोहिनी शक्ति को पाते हैं और उस सद्गुण के चमत्कार को देखते हैं तो अवश्य ही प्रेम की अनन्त धारा का होना स्वयं सिद्ध हो जाता है, जो अपने इन सद्गुणों को दूसरों को देती चली जा रही है। इसी प्रकार जब हम किसी व्यक्ति विशेष में मेधा का चमत्कार देखते हैं तो हमें यह जान लेना चाहिये कि ऐसी सर्वज्ञता की अनन्त धारा अवश्य होगी, जिससे इन सर्वोच्च

सद्गुण की कला प्रस्फुटित होती है—ऐसे ही सभी दिव्य गुणों के विषय में समझिये अर्थात् शान्ति, शक्ति और प्राकृतिक वैभव भी इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत हैं।

अतएव जगत में एक आधारभूत ऐसा अनन्त स्रोत है, जो इस ब्रह्माण्ड में स्थान स्थान पर अपने इन सद्गुणों का प्रदर्शन करता है और करता रहेगा। क्योंकि असत से सत की उत्पत्ति नहीं हो सकती, जब हम सद्गुणों का अस्तित्व देखते हैं, शक्ति के चमत्कारों का प्रदर्शन पाते हैं। तो हमें यह मानना ही पड़ेगा कि कोई ऐसा अनन्त स्रोत है जिस के प्रताप से हमारे चारों ओर जीवन के विस्मय-जनक चमत्कार दृष्टिगोचर होते हैं। तब हमें इस बात को स्वीकार कर लेना चाहिये कि इस क्रिया शील जगत में सभी प्राकृतिक चमत्कारों के मूल में एक अनन्त शक्ति काम कर रही है, जो सब क्रियाओं का स्रोत है और जो अपने अटल कानूनों की सुन्दर व्यवस्था द्वारा उत्पादन कार्य करती है तथा अपने उन कानूनों के द्वारा सारे विश्व पर शासन चलाती है और जिसकी चेतना-शक्ति हमारे चारों ओर व्यापक है और जिसके सहारे विश्व का कार्य सुचारु रुप से चल रहा है।

हमारा प्रत्येक कर्म इन्हीं महान नियमों, अवस्थाओं और शक्तियों द्वारा संपादित होता है। प्रत्येक फूल, प्रत्येक पौधा, जो सड़क के किनारे पर अपना सौन्दर्य दिखाता है, इन्हीं नियमों के आधार पर खिलता बढ़ता, और मुरझाता है। आकाश और पृथ्वी के बीच में शीत प्रधान देशों में जो वर्फ के मुलायम गाल उड़ते फिरते हैं, जम जाते हैं और पिघल जाते हैं, वे भी इसी शक्ति के अपरिवर्तित नियमों में बंधे हुए हैं और जिनकी छोटी से छोटी क्रिया, कारण कार्य के अटल

सिद्धान्त से जुड़ी हुई है। संक्षेप में हमारा अभिप्राय यह है कि इस महान विश्व में कानून के अतिरिक्त दूसरी वस्तु नहीं। अर्थात् इस में जो ब्रह्म चक्र चल रहा है, वह महान नियमों के आधार पर कार्य करता है।

यदि यही बात सत्य है तो हमें निर्विवाद इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिये कि इन जड़ कानूनों के पीछे कोई महान संजीवनी शक्ति काम करती है, जो इस व्यवस्था को चलाती है और जो इन नियमों से अधिक बलवान और वैभवपूर्ण है। इसी अनन्त चैतन्य शक्ति को जिस के आधार पर यह सारा ब्रह्म चक्र चल रहा है, ईश्वर के नाम से पुकारा जाता है। आप इसे किसी नाम से पुकारिये—चाहे रब कहिये चाहे जिहोवा अथवा गौड (God) हमें नाम से कोई झगड़ा नहीं; किन्तु उसकी भावना को भली प्रकार समझ लेना उचित है। वह सर्वव्यापक, प्रकाशवान, निराकार, शुद्ध-बुद्ध, चाहे किसी भी उपमा से हम अपना भाव प्रगट करें हमें इस विषय में सहमत होना चाहिये कि यह विश्व एक महान शक्ति द्वारा बनाये हुये नियमों की सहायता से अपना कार्य्य कर रहा है। अब यह बात स्पष्ट है कि उस ईश्वर की अनन्त सत्ता सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक है, वही सब जगह रम रहा है और उस की महिमा के चमत्कार हम चारों ओर आकाश में देखते हैं। हम उसी में है, उसी से आये हैं और कोई वस्तु उस से बाहर नहीं है। निस्संदेह हम उसी में सांस लेते हैं उसी में गति करते हैं और उसी में हमारा अस्तित्व है। वही हमारा जीवन है, वही हमारे प्राणों का प्राण है, हम निरन्तर उस से संजीवनी शक्ति प्राप्त कर रहे हैं और करते रहेंगे; उसकी चेतन्यता के हम हिस्सेदार हैं। यह भी सत्य है कि हम उस

भिन्न हैं। क्योंकि हमारा व्यक्तित्व उससे जुदा है और हम चैतन्य, सजीव प्राणी हैं। परन्तु इस के साथ ही हमारा उसी में निवास है, उसी से निकास है, इस कारण उस से हमारी सगोत्रता है, परन्तु उसमें और हमारे में जीवन-तथ्य में भेद नहीं, केवल दर्जे में भेद है। यहां पर यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि आध्यात्मिक विचार क्षेत्र में इस ब्रह्मज्ञान की दो धारायें बही हैं— कुछ ब्रह्मज्ञानी यह मानते हैं कि प्रभु की सात्विक धारा प्राकृतिक जगत में इस प्रकार से बहती है, जैसे गंगोत्री से गंगाजी की जल धारा; दूसरे वेदान्ती यह मानते हैं कि जीव ब्रह्म का अंश है, जो ब्रह्म के गुणों से युक्त है और जो अपनी अज्ञानता से अपने आपको जीव समझे हुये है। ये दोनों दृष्टि-कोण वास्तव में एक ही हैं। आइये, अब इन दो विचार धाराओं पर हम ठण्डे दिल से दृष्टि दौड़ायें। हमें तब पता लगेगा कि इन में कोई लम्बा चौड़ा भेद नहीं है, केवल उन का भाव समझने में हमें भूल नहीं करनी चाहिये। पहली विचार धारा के अनुसार जीव परमात्मा के अनन्त स्रोत से अपनी संजीवनी शक्ति पाता है, क्योंकि वही चैतन्य शक्ति का स्रोत है। उसी प्रकार दूसरी विचार धारा के अनुसार यदि जीव का सीधा संबन्ध उस अनन्त भगवान के साथ है, तो उस का अंश होने के नाते इसमें वैसे सब गुण होने ही चाहिये, जो उस पूर्ण ब्रह्म में हैं; जैसे समुद्र से लिया हुआ एक जल का बिन्दु समुद्र का अंश होने के कारण जलत्व के सब गुणों को रखता है, इसी प्रकार जीव ब्रह्म का भाग होने के कारण दैवी गुणों से अलंकृत है। परन्तु हमें यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिये कि यध्यपि बिन्दु समुद्र का अंश है, किन्तु वह समुद्र नहीं। इसलिये जो कार्य समुद्र कर सकता है, जो शक्ति समुद्र में है, वह बिन्दु में कदापि नहीं आ सकती— बिन्दु

बिन्दु ही है और समुद्र समुद्र ही, दोनों में आकाश-पाता
का अन्तर है। अतएव यह बात समझने में अब हमें को
दिक्कत न होगी कि दोनों विचार धारायें एक ही मूल सिद्धा
को प्रतिपादन करती हैं और अब हम इन का स्पष्टी करण ए
उदाहरण से करते हैं।

हिमालय पहाड़ की तलहटी में एक निर्मल जल का सरोव
है, जिसकी जड़ में पहाड़ी-झरनों का पानी आता है। पहल
विचार धारा के अनुसार पर्वतों पर एकत्रित अनन्त जलरा
उस सरोवर को जल से भरती है और इसी प्रकार असंख
सरोवरों को भर सकती है; दूसरी विचार धारा के अनुसा
उस सरोवर का जल उस अनन्त जल राशि का अंश है
पर्वतों पर एकत्रित है और वह जल अपने स्वभाव तथा गुण
में उस महान जल राशि के गुणों से एकता रखता है, इसलि
उन दोनों में कोई भेद नहीं। इसी सिद्धान्त के अनुसार मानव
शरीर में जो चैतन्य-शक्ति है, वह प्रभु के साथ एकता रखने
कारण समान गुणों से विभूषित है, परन्तु भेद सिर्फ इतना
है कि वह अनन्त जल राशि असंख्य सरोवरों को भर सकत
है और फिर भी उस में कोई कमी नहीं होती, किन्तु व
सरोवर उस अनन्त स्रोत का इस अवस्था में कुछ भी मुकाबल
नहीं कर सकता। अब यह बात स्पष्ट है कि उस सरोव
का व्यक्तित्व का अनन्त स्रोत से सम्बन्ध होने के नाते
जितने दर्जे तक उस में पानी के आने का रास्ता खुल
रहेगा, उतनी ही जल राशि सरोवर को मिलती रहेगी औ
यदि हम उन पटों को बन्द कर जल का आना रोक दें
तो सरोवर का हृदय-स्तल सूखने लगेगा। सरोवर में ज
कुछ शक्ति है, वह उसे इस अनन्त स्रोत से मिलती है। इस

प्रकार यदि हम उस अनन्त प्रभु के साथ जितने दर्जे तक सम्बन्ध करेंगे, उतनी शक्ति हमें प्राप्त होगी और जब तक हम प्रभु के सद्गुणों को धारण कर अपने आप को उसकी शक्तियों के प्रदर्शन करने का पात्र न बना देंगे, तब तक हम दैवी वरदानों से वंचित रहेंगे। प्रभु की शक्तियाँ अनन्त हैं। हमने अज्ञानवश अपने इर्द गिर्द बनावटी दीवारें खड़ी करली हैं, जिन के कारण हमारी शक्तियाँ अत्यन्त संकुचित हो गई हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमें परम पिता परमात्मा के वरदान प्राप्त हों तो हमें अपना हृदय, अपना मन उनके लिये खुला कर लेना चाहिये। हम अपने स्वरूप को पहचानते नहीं; इसी भूल के कारण हम उन सब दैवी शक्तियों से वंचित हैं जिन्हें हम अनन्त के साथ मेल करने से बड़ी आसानी से पा सकते हैं।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः,
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।

(श्वेताश्वतरोपनिषद्, ६।११॥)

तीसरा अध्याय

मानवीय जीवन का सर्वोत्कृष्ट तथ्य

विश्व के केन्द्रीभूत तथ्य का अध्ययन करने से, जिस विषय में हम सहमत हो गये हैं, इस परिणाम पर पहुंचे कि प्राकृतिक जगत के सभी अद्‌भुत चमत्कारों को सक्रि बनाने वाली एक अनन्त संजीवनी शक्ति है, जिस के बल प यह ब्रह्म चक्र चल रहा है। अब यहां पर यह प्रश्न स्वाभावि ही उठता है कि मनुष्य के शरीर को चलाने वाला सर्वोत्कृ तथ्य कौन सा है ? जो कुछ हम पहले लिख चुके हैं, उस आधार पर इस प्रश्न का उत्तर सहज ही में मिल सकता है।

मानव-जीवन में केन्द्रीभूत तथ्य यह है—आप के जीव में और मेरे जीवन में—कि हमें उस बात का भान हो जान चाहिये, इस बात की जागरुकता हो जानी उचित है कि हमार उस अनन्त शक्ति के साथ एकता का सम्बन्ध है और सर्वा तौर पर उस ब्रह्मधारा के साथ एक रसता का होना ही मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है और हमें उस ब्रह्मधारा को ग्रह करने का पात्र अपने आप को बनाना चाहिये। हमें यह जा लेना चाहिये कि जब हम में प्रभु, के साथ एकता की चैतन्यत बोध होने लगे अर्थात् हम उस को ब्रह्म-ज्ञान-धारा से सम्ब स्थापित कर लेते हैं तो शेष सब पदार्थ स्वयं ही हमें प्राप्त हो सकते हैं, उन सब वस्तुओं का इस महान शक्ति से सीध संबन्ध है।

उपरोक्त बातों का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि हमें अपने स्वरूप को पहचानना चाहिये। हमारा उस परम ब्रह्म से ज

सीधा सम्बन्ध है, उसकी ठीक ठीक अनुभूति हमें होनी चाहिये; जब तक हम अपने आप को पहचानते नहीं, तब तक हमें अपने व्यक्तित्व का ज्ञान नहीं हो सकता और हम अपनी शक्तियों से अनभिज्ञ ही रहते हैं। इस ब्रह्माण्ड के प्रभुदत्त वरदानों का हमें कुछ भी लाभ नहीं मिल सकेगा। यदि हम चाहते हैं कि हम ईश्वरीय दैवी शक्तियों को अपना सहायक बना लें तो हमें सब से पहिले अपने स्वरूप को पहचान कर उस अनन्त शक्ति के साथ एकता स्थापित करनी चाहिये।

प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों, पैगम्बरों, अवतारों और मसीहों ने अपने काल में उसी अनन्त शक्ति से स्फूर्ति ग्रहण की थी। उपनिषदों में भी उसी परम परुष की चर्चा है, जिस एक के जान लेने से सब वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। उस परम ब्रह्म की असीम शक्तियाँ और उसके अटल नियम ब्रह्म ज्ञानिओं के सम्मुख अपने रहस्य खोल देते हैं और वे ज्ञानी उन शक्तियों को पाकर संसार में विस्मय-जनक काय-सम्पादन करते हैं तथा असम्भव से असम्भव काम भी उनके लिये सम्भव हो जाते हैं। हम अपनी मूर्खतावश ब्रह्म-ज्ञान की उस धारा को अपने पास पहुंचने नहीं देते और न ही दैवी-शक्तियों से कुछ काम ही लेते हैं।

अमृतपुत्र होने के नाते हमारा यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि हम ईश्वरीय सद्गुणों को विकसित करें और दैवी शक्तियों का लाभ उठावें, किन्तु हमारी अविद्या हमारे मार्ग में भारी रुकावट डालती है और परिणाम स्वरूप हम अल्पज्ञ जीव निकम्मी इच्छाओं के गोरख धंधों में फंसे रहते हैं।

निःसंदेह हम देवता बन सकते हैं और प्रभु के वरदानों की सहायता से महा पुरुष-पद पा सकते हैं, किन्तु हमारी तंग

दिली हमारी अपनी संकीर्णता हमारे मार्ग को अवरुद्ध कर
है। महान् कार्य्य करने वाले कर्मवीरों का हृदय विशाल औ
उदार होता है। वे विश्वव्यापी दृष्टिकोण रखते हैं; इस कार
उनके काम देवताओं जैसे होते हैं।

अच्छा, देवता शब्द से हमारा क्या अभिप्राय है? ए
मनुष्य है तो मानव देहधारी किन्तु काम वह देवताओं जै
करता है। जब ऐसा व्यक्ति प्रभु-एकता की अनुभूति इस द
तक करले कि ब्रह्मज्ञान की धारा उसके मन-मंदिर में बहने ल
तो दैवी शक्तियाँ आप ही आप उसके वश में हो जाती
और वह व्यक्ति देवता बन जाता है। ऐसा मनुष्य अप
इच्छा से भले ही अपनी शक्तियों को सीमित कर ले कि
कोई दूसरी ताकत उसके कार्य-क्षेत्र की हद बंदी नहीं कर सकती
वह साधारण जनता से बहुत ऊँचे उठ जाता है और को
भी पशुबल से उसे कर्तव्य-पथ से च्युत नहीं कर सकता। हमा
पाँच शत्रु—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेश और अभिनिवेश
हमारा पथ रोक कर खड़े हो जाते हैं और हमें हमारे दै
अधिकार से वंचित रखते हैं। जिस ईश्वरीय संपत्ति पर हमा
जन्म-सिद्ध अधिकार है, अपने आप को न पहिचानने
कारण हमें उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती और हम भिख
मंगों की तरह इधर-उधर-मारे मारे फिरते हैं। हमा
विकास बन्द हो जाता है और हम दुर्गन्धयुक्त वातावरण
जीवन व्यतीत करते हैं। जब तक हम अपनी असलियत
न जान जायँगे, तब तक हमारी दुर्दशा अवश्यम्भावी है।

इसलिये हमें शीघ्रातिशीघ्र सब से पहिले अपने स्वरू
को पहिचानना चाहिये, जिससे ब्रह्माण्ड की उस महान श
के साथ हमारा सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाये। हम अभी त

अपने असली स्वरूप को पहिचानने में समर्थ नहीं हुए। मानव-समाज ने अभी तक अपनी अविद्या के कारण इस सत्य तथ्य को नहीं जाना। जिनका सीधा सम्बन्ध इस अनन्त शक्ति के साथ है, जिन्होंने अभी तक अपने आपको उस महान् ब्रह्म-धारा को ग्रहण करने के लिये अपने आपको तय्यार नहीं किया वे उन दैवी वरदानों से वंचित रह कर साधारण मनुष्य बने रहते हैं। जब हम अपने आपको केवल साधारण जन समझते हैं, तब हम उसी कसौटी के अनुसार अपनी जीवनचर्य्या बनाते हैं और हममें साधारण मनुष्यों जैसी ही सामर्थ्य रहती है। उसके विपरीत जब हमें इस सत्य तथ्य की अनुभूति होजाती है कि हम साधारण मनुष्य नहीं, बल्कि देवता हैं और हम में देवताओं के कार्य करने की शक्ति है—जितने दर्जे तक हम इस ब्रह्म-धारा को ग्रहण करने के योग्य अपने आपको बना सकेंगे उतने ही दर्जे तक हम में देवत्व शक्ति का प्रादुर्भाव होने लगेगा।

लीजिये एक सुन्दर उदाहरण—

एक मित्र के पास एक मनोरम कमल-फूलों से खिला हुआ सरोवर था। यह उसके बगीचे में एक कुदरती बना हुआ था, जिसमें थोड़े फ़ासले पर से पहाड़ियों से जल-स्रोत का पानी आने का ऐसा प्रबन्ध था, जिससे छोटे-छोटे पटों द्वारा जल को अन्दर लाया अथवा रोका जा सकता था। यह स्थान नसर्गिक सौन्दर्य का अद्भुत नमूना था। जून मास में खिलने वाले गुलाबों तथा अन्य फूलों की उसके किनारे पर भरमार थी। पक्षी, सुबह से शाम तक किलोलें करते हुए उसके निर्मल जल में स्नान करते, पानी पीते और मधुर स्वर अलापते थे। मधु-मक्खियाँ यहां के जंगली फूलों पर से लगातार मधु संचय करने में तल्लीन

रहती थीं। एक मनोहर झाड़ी-कुंज सरोवर के पीछे की ओ
फैली हुई थी, जिस में नाना प्रकार की झाड़ियाँ और बहु पत्रि
नाम के पेड़ फैले हुए थे और जिन का फैलाव बहुत दूर त
दृष्टि-गोचर होता था।

यों तो हमारा मित्र उस जायदाद का स्वामी था औ
देखने में वह साधारण मनुष्य बोध होता था, किन्तु था व
देवता, जो प्राणी मात्र से प्रेम करता था और जिसक
मनोहारिणी भूमि पर आने जाने वालों को रोकने के लि
किसी प्रकार के अपमान जनक साइनबोर्ड नहीं थे; जैसे-"नि
जर्मन है, बिना पूछे अन्दर मत आइये, दखल बेजा मना है"
आदि नहीं थे बल्कि उनके स्थान पर इस .खूबसूरत आकर्ष
उद्यान के आखिरी किनारे पर, जहां से पगडंडी जंगल के बी
में से होती हुई सुन्दर सरोवर की ओर ले जाती है, उस छो
से पथ के प्रारम्भ में सड़क के किनारे एक सुन्दर दरवाजे
ऊपर मोटे अक्षरों में यह लिखा हुआ था—"पधारिये
स्वागतम् !! पधारिये सरोवर का आनन्द लीजिये" !!! इर्द-गि
के स्त्री-पुरुष अपने इस पड़ौसी को देवता के समान मानते
और हृदय से आदर करते हैं। क्यों ? इसीलिये न, कि उसक
अपना जो कुछ है वह सब उन्हीं के लिये है इसीलिये स्वाभ
विक ही उनके हृदय में उसके प्रति प्रेम की धारा बहती थी।

दूसरा आनन्द-प्रद दृश्य देखिये। बच्चों के झुण्ड के झु
हंसते ठठाके लगाते हुऐ इस उपवन में बिहार करते थे। इन
अतिरिक्त थके हारे बटोही—स्त्री और पुरुष—इस सुनह
हरियाली पर आकर विश्राम लेते थे। उनके चेहरे सुर्ख औ
शान्ति से उद्दीप्त हो जाते और उसे हृदय से आशीर्वाद दे
हुए अपने घरों को लौटते थे। उनकी थकान दूर हो जात

और वे अपने उस पड़ोसी के सात्विक गुणों पर मुग्ध होकर उस की प्रशंसा करते हुऐ नहीं अघाते। "परमात्मा हमारे इस परोपकारी बन्धु को दीर्घजीवी करे"। यही भावनायें उनके हृदय से बार बार निकलती हुई सुनाई देती थीं। वे उसके उस मनोरम उपवन की तुलना स्वर्ग से करते। उपवन का स्वामी इस सुन्दर स्थली को "ईश्वरीय ज्ञान-स्थली–कह कर पुकारता था और घंटों एकान्त का सुधा-रस पान करता। बहुत बार लोगों ने उसे इस एकान्त स्थली में अकेले इधर उधर विचरते हुए देखा और चन्द्रमा की स्निग्ध शीतल-चांदनो में फूलों की मादक सुगन्धी का आनन्द लूटते हुऐ बैंच पर बैठे पाया। विमल सादा जीवन व्यतीत करने वाला यह हमारा मित्र था उसने कई बार अपने मित्रों से कहा कि इसी पवित्र भूमि पर उसके जीवन की कठिन समस्याओं का हल बिजली के प्रकाश की तरह उसे दिखलाई दिया और यहीं पर आध्यत्मिक जगत की रहस्यमई बातें उसे अपना संदेश देती थीं।

इतना ही नहीं, बल्कि उसकी स्वर्ग·वाटिका के इर्द-गिर्द का वातावरण भी दया और प्रेम, सदिच्छा और सद्भावना की समीर बहाता। पशु भी जब घूमते घामते-इस विहार-स्थली के किनारे आ निकलते तो उन्हें भी यहां का नैसर्गिक सौंदर्य प्रभावित किये बिना नहीं रहता और वे भी मनुष्यों की भाँति प्रेम भरी निगाहों से इस सरोवर की ओर निहारते थे तथा वैसा ही सुखलाभ करते हुये प्रतीत होते। अपने उस आनन्द और संतोष का प्रदर्शन वे मानों मुस्कराते हुये करते। शायद उनकी इस प्रसन्नता को देखने वाला उनके संतोष और आनन्द की अनुभूति का चित्र अपने मस्तिष्क में ऐसा ही खींच लेता। सरोवर में ताजा जल लानेवाले द्वार इतने

अधिक खुले रहते, जिससे निर्झरों का जल बहुत बड़ी मिकदार में सरोवर में आता रहता और उसे भरने के बाद वह जलधारा निचली भूमि में उतर जाती और नीचे नाले में निर्मल जल छोटी सी नदी का रूप धारण कर खेतों में चला जाता। ग्रामों के पशु इसी धारा का जल पीते और हरी हरी घास चुगते। किसान लोग इसी पहाड़ी जल से अपने खेतों को सींचते।

उस सरोवर पर एक नई घटना घटी। उस स्वर्ग-भूमि के स्वामी को एक वर्ष के लिये अत्यावश्यक कार्य-निमित्त परदेश जाना पड़ा। अपनी अनुपस्थिति में उसने इस भूमि को किराये पर दे दिया। उस जायदाद का नया स्वामी दुनिया की भाषा के अनुसार व्यावहारिक मस्तिष्क रखने वाला था। वह भला दूसरों को अपनी चीजें मुफ्त में क्यों देता? उसका दिमाग तो चौवीस घन्टे रुपया-पैसा पैदा करने में व्यस्त रहता था। ज्यादा से ज्यादा आमदनी उस भूमि से कैसे हो, यही व्यापारि युगकी चीज उसके दिमाग में चक्कर काटती रहती थी। उसने पहिला काम तो यह किया कि निर्झर के दरवाजे बन्द कर दिये, जल का आना, बिल्कुल रोक दिया। अब निर्मल जल धारा उस सरोवर से बाहर बहनी बन्द होगयी। परिणाम स्वरूप न तो कमलों की वैसी बहार रही और न गुलाबों के फूल अपने जंगली साथियों के साथ सरोवर की शोभा बढ़ाते थे। नैसर्गिक सौन्दर्य का अन्त होगया। जो पक्षी दिनभर किलोलें किया करते थे, जहां मधु-मक्खियां गुनगुनाया करती थीं, जहां बच्चों के झुंड दिन भर ठठाके लगाते थे, जहां बटोही विश्राम लेकर अपनी थकान दूर करते और भूमि के स्वामी को आशीर्वाद देते थे, वहां वह सरोवर ताजा जल न आने

कारण सूखने लगा। जो मछलियां उसमें दिनभर तैरा करती थीं, वे मरने लगीं और वह विहार-स्थली उनकी बदबू के कारण दुर्गन्धयुक्त होगयी। "पधारिये" और स्वागत के प्रेम-भरे साइनबोर्ड उखाड़ डाले गये और उनके स्थान पर "भीतर आने की आज्ञा नहीं," "बिना आज्ञा प्रवेश करनेवाले दण्ड पायेंगे" आदि विज्ञप्तियाँ टाँक दीगयीं। इतना ही नहीं, जो स्वच्छ-निर्मल-धारा उस सरोवर से नीचे की भूमि में खेतों को सींचती थी और किसानों के हृदयों को पुलकित करती थी, अब बिल्कुल सूख गयी। इर्द-गिर्द के ग्रामों के भोले-भाले पशु नाले के स्वच्छ जल-धारा के बिना प्यासे मरने लगे; चारों ओर हाहाकार मच गया और जो शान्त-स्थली अनगिनत प्राणियों के लिये आनन्द का कारण बनी हुई थी, उसने अब नरक का रूप धारण कर लिया। अब सब इर्द-गिर्द के ग्रामों के लोग अपने देवता रूप पड़ौसी को स्मरण कर उसके लौट आने की घड़ियां गिनने लगे।

क्या इस उदाहरण से हम अध्यात्मवाद की उस श्रेष्ठतम शिक्षा को ग्रहण नहीं कर सकते, जो हमें बार बार उस प्रभु से साथ सम्बन्ध करने का आदेश देती है? विश्व में सुख और शान्ति लाने का सर्वोत्कृष्ट उपाय यही है कि हम अपना मुँह अनन्त की ओर करें। जितने दर्जे तक हम अपनी एकता, अपना सम्बन्ध उस अनन्त प्रभु से करेंगे और जितने दर्जे तक हम उस ब्रह्म-धारा को अपने मन में स्थान देंगे, उतने ही दर्जे तक हम उस महान शक्तिशाली, सर्वोत्कृष्ट और परम सौन्दर्य को मूर्ति के साथ सम्बन्ध कर शान्ति लाभ करेंगे। जितने दर्जे तक हम अधिक से अधिक उस अनन्त शक्ति के साथ एक-रसता कर अपने हृदय-कुण्ड को प्रेम-रस-भर लेंगे—

उस समय तक जब वह धारा हमें पूरा स्नान करा हमारे इर्द गिर्द उमड़ने लगे—तब उस ब्रह्मानन्द का सच्चा सुख न केवल हमें ही मिलेगा बल्कि वे भी जो हमारे सम्पर्क में आयेंगे उसके पवित्र प्रभाव को अनुभव करेंगे। अनन्त-स्रोत में स्नान करने वाले सब स्त्री-पुरुषों की जीवन-विभूति उस देवता स्वरूप प्रभु-भक्त मनुष्य के सरोवर के समान है, जिसके पुरुषार्थ से परोपकार की धारायें सत्य, शिव और सुन्दर का रूप धारण कर पृथ्वी पर स्वर्ग का राज्य स्थापित करती है। इसके विपरीत जो खुदी में डूबे हुए हैं, जिन्होंने स्वार्थपरता के सिवाय दूसरा कोई जीवनोद्देश्य नहीं समझा, जिनके हृदय में मनो विकारों के कीटाणु दुर्गन्ध फैलाते हैं, ऐसे अभागे नारकीय जीवन व्यतीत करनेवाले चारों ओर दुखों और व्याधियों की सृष्टि करते हैं। उनमें कोई श्रेष्ठतम भावना नहीं रह जाती सौन्दर्य का लोप हो जाता है, आकर्षणशक्ति का स्थान घृणा ले लेती है; उनके साथ सम्पर्क में आने वाले भी इन्हीं सब दुखों का शिकार बन जाते हैं। ऐसे ही धन-लोलुप, पशुवृत्ति रखने वाले मनुष्य उस सुन्दर सरोवर को किराये पर लेने वाले के समान है, जिसने व्यवहारिक-पटुता के घमंड में एक सुरम्य विहार-स्थली को उजाड़ दिया और अपने इर्द-गिर्द के पड़ौसियों तथा पशुओं का घृणा-पात्र बन गया।

आइये, हम इस भीषण भेद के रहस्य को समझने का प्रयत्न करें। हमें यह स्पष्टतया जान लेना चाहिये कि उस सरोवर के निर्झर-पटों को खोलने की शक्ति स्वयं हममें मौजूद है। इस सम्बन्ध में हम दूसरी बाहरी शक्ति के मोहताज नहीं हैं। आप और हम निर्मल जल-स्रोत के द्वारों को खोलने तथा बन्द करने की शक्ति रखते हैं—यह शक्ति हमें अपने मनोबल और निर्मल विचार-सरणी द्वारा प्राप्त होती है।

हमारे में ऐसी एक आत्म-जीवन-शक्ति विद्यमान है, जिसका सीधा सम्बन्ध अनन्त के साथ है। उधर एक दूसरी शारीरिक जीवनी-शक्ति है, जो हमें प्राकृतिक जगत के साथ जोड़ती है। इन दोनों के बीच में पुल बाँधने वाली एक अद्भुत विचार-सरणी है, जो हमारी आत्मिक और शारीरिक शक्तियों को जोड़ देती है। यही है, जो दोनों अर्थात् आत्मिक और प्राकृतिक जगत के सूत्रों को अपने वश में कर हमें नाच नचाती है।

देखिये, आगे चलने से पहिले हमें इस नुक्कड़ पर खड़े होकर हमें इस विचार-सरणी रूपी जादूगर की असलियत को समझ लेना चाहिये। इस विचार-सरणी को बहुधा हम लोग अमूर्त कल्पना के रूप में फर्ज़ कर लेते हैं। यह हमारी बड़ी भारी भूल है। इसके विपरीत विचार, एक सजीव शक्ति-शाली, अत्यन्त सूक्ष्म, अदम्य चेतना है, जो इस ब्रह्माण्ड में रचना-शक्ति के चमत्कार दिखलाती है।

हमने अपनी प्रयोग-शालाओं में रासायनिक क्रिया द्वारा जो अनुभव प्राप्त किये हैं, उनसे यह सत्य तथ्य निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि विचार एक जीती जागती चेतना शक्ति है, जिसका रूप, गुण तथा अस्तित्व और शक्ति अद्वितीय हैं और जिसके विषय में विचार-विज्ञान का नवीन क्षेत्र वैज्ञानिक जगत में स्थापित किया गया है। अब हम यह भी जानने लगे हैं कि विचार-साधनों के द्वारा हम नयी सृष्टि की रचना कर सकते हैं। यह कथन हम अलंकारिक भाषा में नहीं कह रहे हैं, बल्कि सच्चे यथार्थवाद की परिभाषा में इसका प्रयोग किया गया है।

इस प्राकृतिक जगत की प्रत्येक वस्तु, उसकी प्रत्येक विस्मय-जनक कृति तथा अन्य जितने प्रसिद्ध ऐतिहासिक पदार्थ संसार में मिलते हैं, उन सबकी मूल भूत शक्ति, उनका असली जनक विचार ही रहा है। बीजरूप विचार सर्व प्रथम अस्तित्व में आकर जगत के बड़े से बड़े पदार्थ का निर्माण करता है। प्रत्येक क़िला, प्रत्येक शिल्पी चमत्कार, प्रत्येक तैल-चित्र, संगमरमर की प्रत्येक जगत प्रसिद्ध इमारतें, आगरे का ताजबीबी का रोज़ा, साहित्य का प्रत्येक महाकाव्य—ये सब उनके निर्माताओं के मस्तिष्क में पहले से ही बीजरूप मौजूद थे, जिनके सहारे उन्होंने बाह्य जगत में इन अमर कृतियों को जन्म दिया। इतना ही नहीं, यह सारा ब्रह्माण्ड पहले बीजरूप विचार के रूप में उसके नियन्ता के मस्तिष्क में अवश्य ही मौजूद रहा होगा जिसके आधार पर इस संसार का प्रादुर्भाव हुआ। यदि यह सत्य है कि हमारा अस्तित्व, उस महान शक्ति के साथ, सीधा सम्बन्ध रखता है और हम अमृत-पुत्र हैं, तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि हम अपने आत्मिक साधनों के बल से निर्माण शक्ति की क्षमता रखते हैं।

सारांश में प्रत्येक वस्तु पहिले अपना अस्तित्व अदृष्ट में रखती है और इसके बाद उसका स्वरूप दृष्ट में प्रगट होता है। इसी भावना से हमें यह बात भली-प्रकार जान लेनी चाहिये कि जो अदृष्ट है, वही कारणभूत है, वही मूल सिद्धान्त है, वही सत्य है; जो दृष्ट में प्रगट होता है, वह परिवर्तनशील है; जो मूलभूत अदृष्ट पदार्थ है, वे कारण है और जो दृष्ट हैं, वे कार्य कहलाते हैं। जो अदृष्ट हैं, वे अनादि हैं और जो दृष्ट हैं; वे परिवर्तनवादी और अस्थायी हैं। शब्द की शक्ति अक्षरशः वैज्ञानिक रूप रखती हैं और तभी वह बिजली की

कल्पनाओं पर चढ़कर रेडियो के चमत्कार दिखलाती है। अपनी विचार शक्ति के द्वारा ही हममें रचनात्मक योग्यता उत्पन्न होती है, जो कुछ हम अपने अन्दर विचार करते हैं, जो मन में ध्यान करते हैं, वही केन्द्रीभूत होकर शब्द में प्रगट होता है। बोले हुये शब्द को ही अन्दर की विचार धाराओं का केन्द्र समझना चाहिये, जो किसी विशेष योजना को व्यक्त करता है। यह एकाग्रता द्वारा उत्पन्न भावना को शब्द द्वारा क्रियाशील बनाता है। वाह्य शक्तियों का प्रदर्शन, आन्तरिक क्रियाओं के बिना, कदापि नहीं हो सकता।

सभी लोगों ने शेख़चिल्ली की कथा सुनी होगी, जो घर में बैठा मन के मोदक खाया करता है। हम सब उसकी खिल्ली उड़ाते हैं और उसे ख्याली पुलाव पकाने वाला समझते हैं। परन्तु यह भली प्रकार स्मरण रखना चाहिये कि भूमि पर ठोस क़िले बनाने के पहले हमें अपने मस्तिष्क में ख्याली क़िलों की रचना करना अत्यावश्यक है—ऐसे क़िले, जिनमें हम रहना चाहते हैं, कदापि भी पहिले आन्तरिक नमूना हुए बिना नहीं बन सकते। अब प्रश्न यह उठता है कि हम सब शेख़चिल्ली की मसख़री क्यों उड़ाते हैं? वह केवल इसलिये कि शेख़चिल्ली महाशय बैठे बैठे फ़र्ज़ी मोदक ही खाया करते हैं और उन्हें असली रूप देने का पुरुषार्थ नहीं करते—ऐसे क़िलों के बनाने में, जो सामग्री-मसाला दरकार होता है, जो दौड़-धूप करनी पड़ती है, जो कष्ट सहने पड़ते हैं—शेख़चिल्ली उन्हें करने की तकलीफ़ नहीं उठाता। निस्सन्देह क़िले बनाने का जो पहला अत्यावश्यक कार्य है, हमारा शेख़चिल्ली केवल उसे ही पूरा करता है; शेष आधा जो वैसा ही महत्वपूर्ण है, वह उसकी

परवाह नहीं करता, यही उसका दोष है। संसार में जितने महा पुरुष हुए हैं, उन्होंने पहिले अपने आदर्शों के स्वप्न ही देखे थे—बहुत से तो स्वप्न लेते-लेते ही मर गये और उनका कार्य पीछे आने वालों ने पूरा किया। हमें यह बात भी भली प्रकार जान लेनी चाहिये कि जितनी विचार शक्तियाँ आकाश में काम कर रही हैं, उन्हें हम मनोबल द्वारा अपनी ओर खींच सकते हैं। यह विश्व का बड़ा ही महत्व-पूर्ण सिद्धान्त है, जिस पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये—Like attracts like—अर्थात् जैसी कोई चीज़ होती है मन अपनी वैसी विचार शक्ति द्वारा उसे अपनी ओर खींच लेता है। हमारी अपनी बोलचाल में हम इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि कबूतर कबूतर के साथ उड़ता है और बाज़ बाज़ के साथ। हम निरन्तर दृष्ट और अदृष्ट जगत से अपने अनुकूल—अपने संस्कारों के अनुरूप शक्तियों और अवस्थाओं को अपनी ओर खींच रहे हैं—जो हमारी मानसिक वृत्ति के साथ एकत्व रखते हैं। प्रकृति का यह अटल नियम अपना कार्य निरन्तर करता है, चाहे हम इसको जाने या न जाने। हम विचारों के एक महा-सागर में निवास कर रहे हैं, जहाँ हमारी विचार-तरंगों से वातावरण परिपूर्ण है और हम अपनी तरंगों को बाहर भेज रहे हैं या वह स्वयं ही विचार-तरंगों के रूप में अनुरूप तरंगों की ओर भागी चली आ रही हैं। इन विचार शक्तियों के द्वारा हम थोड़ा बहुत प्रभावित होते हैं, चाहे वह हमारी जागृत अवस्था में हो चाहे अज्ञानावस्था में—प्रकृति का कार्य बराबर होता रहता है—भेद केवल इतना ही है कि हम जितने दर्जे तक उसके प्रति चैतन्यता से संगठित हैं, उतने दर्जे तक वह हम पर प्रभाव डालती हैं अथवा जितने दर्जे तक हम उनसे प्रभावित नहीं होते, वे हम पर बाहरी प्रभाव डालते रहते हैं।

इसी से इस बात का निश्चय होता है कि हमारे विचार की दुनियां में किस प्रकार की विचार-धारयें प्रवेश करती हैं और कौन सी केवल बाहर ही टक्कर लगाकर लौट जाती हैं। हमारे समाज में कुछ स्त्री-पुरुषों में सूक्ष्म तरंगों को अनुभव करने की शक्ति बहुत होती है और उनके शरीर की बनावट उन्हें इस योग्य बना देती है कि वे सहज में ही बाहरी प्रभावों से प्रभावित हो जाते हैं। उन पर दूसरों का असर बहुत शीघ्र पड़ता है। जैसे लोगों के साथ वह उठते-बैठते हैं, उनकी संगति उन्हें वैसा ही बना देती है। हमें एक संपादक के विषय में स्मरण है कि उस पर बहुत शीघ्र दूसरों का प्रभाव होता था। वे एक बड़े प्रसिद्ध अखबार के संपादक थे, इसलिये उनके पास सभा-सोसाइटियों में जाने के निमन्त्रण आया करते थे। परन्तु वे सजीवता की मूर्ति थे इसलिये किसी बड़ी सभा में जाने से घबराते थे। किसी सामाजिक भोज अथवा स्वागत-सभा में, जिसमें उन्हें वक्तृता देनी हो अथवा बहुत लोगों से हाथ मिलाना हो—ऐसी सभाओं में जहाँ भिन्न भिन्न विचार रखने वाले लोगों की भरमार हो—हमारा संपादक इतनी जल्दी मुरझा अथवा पुलकित हो उठता था कि उसका मस्तिष्क ऐसा बिगड़ जाता था कि दो तीन दिन तक उसका असर उस पर रहता था, जिसकी वजह से वह अपना कार्य करने के सर्वथा अयोग्य हो जाता था।

कुछ लोग ऐसे शारीरिक संगठन को दुर्भाग्य ही समझते हैं, किन्तु हमारी ऐसी धारणा नहीं है। जानदार और सजीव होना व्यक्ति के लिये बहुत अच्छा है। क्योंकि ऐसे मनुष्य में ग्राह्य शक्ति बहुत अधिक होने के कारण वह अन्दर और बाहर के सभी प्रभावों को बड़ी आसानी से पकड़ सकता है। वे महान

शक्तियाँ, जो व्यक्ति को ऊपर उठाती हैं, सहज में ही उसे लाभ पहुँचा देती हैं और वह उनके बल से बड़े से बड़े कार्य कर सकता है। यह भी सत्य है कि इस प्रकार के स्वभाव वाला व्यक्ति बड़े घाटे में भी रहता है, जब कि पतन की ओर ले जाने वाली विचार शक्तियाँ उस पर हमला करती हैं और उन्हें रोकने की शक्ति उसमें न हो। लेकिन वह मनुष्य थोड़े से परिश्रम द्वारा उन्हें रोकने की शक्ति का अभ्यस्त हो सकता है। यह अभ्यास उसे मानसिक व्यायाम द्वारा सहज में ही प्राप्त हो सकता है। चाहे कोई व्यक्ति अपने शारीरिक संगठन से चैतन्य हो अथवा जड़ हो, इस बात का अभ्यास उसे अवश्य ही करना चाहिए कि वह स्वेच्छानुकूल अपने मन का ऐसा रुख कर सके कि वह जब चाहे तभी बुरे-भले संस्कार की रोक थाम अथवा स्वागत कर सके। यह अभ्यास प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए अत्यन्त लाभकारी होता है। जब हम अपना इच्छानुकूल शरीर में इस प्रकार का संयम ला सकेंगे तो हमारे लिए बुरे भले संस्कारों को चुनने की अद्भुत क्षमता आ जायगी। हमें अपना यह स्वभाव बना लेना चाहिए कि हम बुरे संस्कारों को अपने निकट न आने दें और उत्कृष्ट सुन्दर शक्तियों का स्वागत करें। इस प्रकार का अभ्यास हमें दृष्ट और अदृष्ट विचार तरंगों को रोकने या ग्रहण करने में पूरा सहायक बनेगा और उत्कृष्ट भावनायें हमारी ओर शीघ्र आकृष्ट होंगी तथा हम बड़ी आसानी से अपनी जीवन-यात्रा में सत्य, शिव और सुन्दर को पहिचान सकेंगे।

अच्छा अब हमें यह जान लेना चाहिए कि अदृष्ट जीवनावस्था से हमारा क्या अभिप्राय है? प्रथम विचार शक्तियाँ—मानसिक तथा भावुकता-पूर्ण अवस्था में जो उन व्यक्तियों द्वारा

उत्पन्न की जाती हैं, जो मानवीय शरीर द्वारा प्राकृतिक जगत में विचरते हैं। दूसरे वे 'विचार शक्तियाँ, जो उन व्यक्तियों द्वारा पैदा की जाती हैं, जिन्होंने देह का त्याग कर दिया है और जो अब भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीरों द्वारा उनका प्रदर्शन करते हैं। मनुष्य का व्यक्तिगत अस्तित्व इन्द्रियों के साधनों द्वारा सबसे पहले प्राकृतिक जगत में प्रगट होता है, किन्तु धीरे धीरे विकास-सिद्धान्त द्वारा दर्जा व दर्जा सूक्ष्म तथा लिंग शरीर की सहायता से ऊपर उठता हुआ आत्मिक तथा स्वर्गीय वातावरणों में विचरता है-वह दैवत्व गुणों से विभूषित होता हुआ फूल की कली की तरह खिलता चला जाता है—वह कहां जाता है ? उन योनियों में जिनमें अकथनीय विभूतियाँ तथा परमानन्द के साधन होते हैं। प्रत्येक आकाशीय जगत के साथ-साथ आत्मिक जगत की सृष्टि होती है—ऊपर और नीचे अन्दर और बाहर—इसी प्रकार आकाशीय ढांचे के साथ साथ आत्मिक शरीर भी अपना खेल खेलता है जिसका वाह्य रूप प्राकृतिक जगत है। इस आत्मिक सृष्टि में सभी विकसित आत्मायें प्राकृतिक शरीर को छोड़कर अपना उत्कृष्ट पद पाती हैं। इसी के अन्दर और ऊपर विकास की असंख्य सीढ़ियां हैं, जिन पर विकसित आत्मायें अपने अपने उत्कर्ष के अनुसार स्थान पाती हैं, जिनके उच्च स्थान के सम्बन्ध में साधारण गृहस्थ कुछ सोच ही नहीं सकता। ऐसे शरीर कई प्रकार के होते हैं। एक तो—भौतिक शरीर जो भुट्टे के ऊपर के छिलके की मानिन्द समझना चाहिए-जिसके अन्दर आत्मिक संगठन का व्यक्तित्व पूर्णरूप से स्थापित होता है और जो अपने पूर्ण विकास को सिद्ध करता है। इस भौतिक शरीर का काई उपयोग नहीं रह जाता यह केवल प्रथम विकास को सिद्ध करने में सहायक बनता है और जब इन्द्रियों के साथ मन, बुद्धि,

चित्त और अहंकार—इनके संस्कार स्थूल रूप में खत्म हो जाते हैं, तब लिंग शरीर इनके माया जाल से मुक्त होकर अनन्त की ओर अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। इस अविनाशी आत्मिक शरीर की मदद से और साथ ही इर्द-गिर्द के आत्मिक क्षेत्रों के सहारे, जिनमें आत्मा के सामाजिक तथा आत्मिक सम्बन्ध जुड़े रहते हैं, जीव का व्यक्तित्व अपने लिंग-शरीर के संस्कारों के साथ अमरत्व-पद को प्राप्त करता है। जीवन के असली तथ्य का अर्थ यह है कि चाहे किसी प्रकार के शरीर में इसका स्वरूप विकसित क्यों न हो, इसकी जीवन धारा लगातार गतिवान रहती है, चाहे शरीर का रूप कैसा ही क्यों न बदल जाये। विश्व का अनादि सिद्धान्त जीवन की यह अनवरत धारा है। इसके प्रादुर्भाव का साधन भले ही बदल जाए, किन्तु धारा का बहना कभी भी बन्द नहीं हो सकता। मेरे पिता के महल में बहुत से सुन्दर घर हैं—चूंकि जीवात्मा प्राकृतिक शरीर को छोड़कर चला गया है तो इसका यह अर्थ नहीं कि जीवन धारा सूख गई है। जीवन धारा तो बराबर बिना किसी रुकावट के बहती चली जा रही है और उसकी गति कभी बन्द नहीं होती। हाँ, यह जरूर है कि वह जीवन गति किसी दूसरे रूप में बहने लग जाय, किन्तु ठीक जहाँ से अपने शरीर को छोड़ा था, वहीं से वह निरन्तर गतिवान रहती है। जीवन-प्रवाह विकास का न रुकने वाला महान चमत्कार है, जो सीढ़ी दर सीढ़ी अपने पुरुषार्थ के अनुसार आगे बढ़ता चला जाता है, इसमें कहीं भी कूद-फाँद करने की गुंजाइश नहीं है और न घटाव-बढ़ाव के लिये ही कोई स्थान है—यह तो जीवन की अविरल धारा है।

तब, दूसरे स्वरूप में इस प्रकार की मानसिक अवस्थायें

हैं-- अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकार के दर्जों पर स्थित मानसिक दर्जे तथा प्रभाव हैं—ठीक जैसे कि प्राकृतिक शरीर में मौजूद हैं। अब यदि "Like attracts like" समान पदार्थ आपस में एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं का महान सिद्धान्त सदा कार्य करता है तो हम निरन्तर इस आत्मिक जगत से अपने अनुकूल विचार और जीवन रखने वाले प्रभाव और अवस्थाओं को आकर्षित करते हैं। यहां पर कोई यह शंका कर सकता है कि ऐसी विचार धारा तो बिल्कुल अनोखी प्रतीत होती है। उत्तर में हमारा निवेदन यह है कि जब सब जीवन-चेतनाओं का स्रोत एक ही है, तब हम स्वाभाविक ही एक साजी विश्व चेतना के अन्तर्गत बँधे हुए हैं और विशेषकर उस हालत में जब जीवन के सभी उतार-चढ़ाव का दारोमदार हमारे अपने हाथों में है और हम अपनी इच्छानुसार विकास-पथ पर जा सकते हैं। यह बात दूसरी है कि हम परिस्थितियों के गुलाम बन जायें और बेपेंदी के लोटे की तरह इधर-उधर मारे मारे फिरें, किन्तु तथ्य की बात यह है कि हम इन मानवीय शरीरों के अन्दर रहते हुए भी कर्म करने में स्वतंत्र है और जिस प्रकार की भी विचार धारा हम रखना चाहें, उसे हम अपनी इच्छानुकूल रख सकते हैं और अन्य प्रभावों तथा अवस्थाओं को अपनी ओर खींच सकते हैं--हमारे में पतन और उत्कर्ष दोनों की सामग्री मौजूद है।

अपने मानसिक जीवन में हमें पतवार को बड़ी दृढ़ता से पकड़ रखना चाहिए, जिससे हमें पता रहे कि हम किस ओर जा रहे हैं और कहां कहां हमारी जीवन नौका लगती जा रही है। यदि हम इसमें सफल न हों तो परिणाम यह होगा कि हम हवा के झोंके के अनुसार इधर से उधर और उधर से इधर

मारे मिरेंगे। इसलिए हम सबको इस निरोग विचार का स्वागत करना चाहिए क्योंकि इसी के द्वारा हम परम पवित्र और श्रेष्ठतम विचार-शक्तियों को अपनी ओर खींच सकेंगे और हम में यह भावना बड़ी दृढ़ हो जायगी कि संसार के जिन महा पुरुषों ने अपने समय में मानव समाज के उत्कर्ष के लिए घोर तपस्या और पुरुषार्थ किया था, वे देह त्याग करने के पश्चात् भी अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दूसरे शरीरों में पहिले से भी अधिक परिश्रम, तपस्या और पुरुषार्थ कर रहे हैं।

एक दिन एक मित्र के साथ सैर करते हुए आध्यात्मिक विषय की चर्चा चली। हम लोगों ने आपस में विचार परिवर्तन करते हुए बड़ा संतोष प्रकट किया कि आधुनिक सभ्य समाज आत्मा सम्बन्धी समस्याओं में बड़ी दिलचस्पी लेने लगा है और वह व्यग्रता तथा उत्सुकता इन रहस्य पूर्ण शक्तियों को जानने की शिक्षित समुदाय में पायी जाने लगी है, न केवल इस देश में बल्कि पृथ्वी के सभी देशों में अध्यात्म विषय की ओर चिन्ताशील लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। वे अपने आपको पहिचानने तथा अनन्त के साथ उनके सम्बन्ध के विषय में आकुल दिखाई देते हैं। आध्यात्म विषय पर बातचीत करते हुये उस अद्भुत जागृति के विषय में चर्चा चली जो आधुनिक युग में बड़ी तेज़ी से फैल रही है। मैंने कहा—"देखिये जागरूक आत्मा रखनेवाले भगवान बुद्ध तथा स्वामी विवेकानन्द आज कितने प्रसन्न होते जब वे अपने पुरुषार्थ के परिणामों को सारी सभ्य दुनिया में इस समय फैला हुआ देखते लेकिन वे अपने समय से बहुत पहले आये, उन्होंने बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से बड़ी निर्भीकता के साथ अध्यात्मवाद के सत्य सिद्धान्तों को संसार के सामने रखने का प्रयत्न किया और

सैकड़ों प्रकार की बाधाओं का सामना कर धर्म के यथार्थ स्वरूप का प्रचार जन साधारण में किया। आज उनकी आत्मा इस जागृति को देखकर कितनी प्रसन्न होती और उनका हृदय सत्य के प्रति विद्वानों में फैली हुई श्रद्धा को देखकर कैसा प्रफुल्लित होता"। मित्र ने हँसकर उत्तर दिया—"आप क्या कह रहे हैं ? उन महा पुरुषों की आत्मायें अब भी अपने उस पुरुषार्थ का परिणाम देख रही हैं। कौन कह सकता है कि इस अद्भुत जागृति में उनका हाथ काम नहीं कर रहा। मेरा तो यह ख्याल है कि इस समय परिस्थितियों के अनुकूल होने के कारण वे और भी अधिक सहायता कर रहे होंगे"। मैंने गद्‌गद् होकर अपने मित्र को धन्यवाद दिया क्योंकि उन्होंने मुझे उन महापुरुषों की आत्माओं के आशीर्वादों की याद दिलायी क्योंकि हम भी तो इस बात को मानते हैं कि मुक्तात्माएें बराबर अपनी प्रेरणा पहुंचाती रहती हैं और संसार के सत्कार्यों में सदा सहायक बनती हैं।

चूँकि साइंस ने आज बहुत अधिक प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि जो पदार्थ हम अपनी आँखों से देखते हैं, जिनका हमें प्रत्यक्ष भाव होता है वे वास्तव में बहुत ही अल्प हैं और जो हमारे सामने नहीं आते अथवा जिन्हें हम नहीं जानते उनकी संख्या बहुत अधिक है। हमारे जीवन में जो सत्य चैतन्य शक्तियाँ काम कर रही हैं और जो ताक़तें हमारे इर्द-गिर्द पृथ्वी पर काम कर रही हैं वे हमारे इन प्राकृतिक साधनों से दिखाई नहीं देतीं। लेकिन तिस पर भी हमें यह जान लेना चाहिये कि वे केवल कारण रूप हैं और दृश्य पदार्थ इन्हीं का कार्यरूप परिणाम हैं। विचार, महान शक्ति रखते हैं; समान पदार्थ समान वस्तुओं को आकर्षित करते तथा उनका निर्माण करते हैं। क्योंकि विचार धारा पर

आधिपत्य करना ही नव-जीवन का निर्माण करना है।

एक व्यक्ति, जो वस्तुओं के स्वभाव का भली प्रकार पारखी है, कहता है कि आध्यात्मिक पदार्थों का प्राकृतिक पदार्थों के साथ ऐसा अद्भुत घनिष्ठ सम्बन्ध है कि वह एक ही तरीक़े से अपने चक्र को चलाते हैं। वह मनुष्य, जो सदा मुहर्रमी सूरत बनाये रहते हैं, सदा मनहूस चीज़ों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वे लोग जो सदा निराशा में डूबे रहते हैं और हिम्मत छोड़ देते हैं, कभी भी किसी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते और वे दूसरों पर भार रूप होकर अपनी ज़िन्दगी के दिन काटते हैं। आशावादी, आत्मविश्वासी और सदा प्रसन्न रहने वाला, सफलता के तत्वों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। किसी गृहस्थ के घर का अगला या पिछला भाग उसके परिपक्व मनोभाव का विज्ञापन देता है। किसी गृहणी की पोशाक उसकी मानसिक अवस्था को व्यक्त करती है। फ़िज़ूल खर्ची की आदत मनुष्य के स्वभाव में अव्यवस्था, बेपरवाही और निराशा के दुर्गुणों को प्रगट करती है। चिथड़े, गन्दगी और मैल, प्रथम व्यक्ति के अपने अन्दर कारण रूप होनी चाहिये, तभी वह बाहर उसके जीवन में प्रगट होती है। अपने अन्दर से निकला हुआ विचार, अपने उसी ढंग के दृष्ट-तत्वों को खींचकर लाता है और वे तत्व आपके सामने अपने नंगे रूप में ज्यों के त्यों उपस्थित होते हैं और निश्चित रूप में प्रगट होते हैं, जैसे जल में हल किया हुआ अदृष्ट ताम्र-रस को ठोस तांबे के टुकड़े द्वारा खींचा जाता है। एक मनुष्य, जो सदा आशा से परिपूर्ण, दृढ़व्रती, साहसी और धुनी अपने संकल्प के पीछे हाथ धोकर पड़ने वाला, अपने इर्दगिर्द के वातावरण में से अपने संकल्प के अनुरूप साधनों और शक्तियों को अपनी तरफ़ खींच लेता है।

प्रत्येक संभव ढंग से आपका प्रत्येक विचार आपके लिये मूल्यवान है। आपका शारीरिक तथा मानसिक बल, आपके व्यापार में सफलता और आप के सत्संग से दूसरों की प्रसन्नता आपके विचारों पर निर्भर है। जिस मनोभाव में आप अपने मन को रक्खेंगे, उसी शैली से अदृष्ट पदार्थ उसी भावना के अनुकूल आपकी आत्मा उसे ग्रहण करेगी। जैसे रासायनिक जगत में यह सत्य सिद्धान्त प्रयोग में आता है, उसी प्रकार आत्मिक जगत में भी यह वैसा ही काम करता है। रसायन शास्त्र केवल दृष्ट पदार्थों के ही पोषक नहीं है, बल्कि वह आंखों से ओझल हजारों सूक्ष्म पदार्थों के विषय में भी वैसा ही सिद्धहस्त है और उनमें काम करने वाले नियमों को उसी प्रकार बताता है। भगवान बुद्ध का पवित्र उपदेश—"जो तुमसे घृणा करते हैं, तुम्हें उनसे नेकी करनी चाहिये"—वैज्ञानिक नियमों का उसी प्रकार द्योतक है जैसे भौतिक जगत में नियमों की व्यवस्था होती है। जब हम बुराई के प्रति भलाई करते हैं तब हम में इर्दगिर्द के वातावरण में से भलाई और शक्ति के तत्वों को पकड़ने की क्षमता हो जाती है; इसके विपरीत जब हम दूसरों के साथ बुराई करते हैं तो हम अपने इर्दगिर्द के वातावरण में से विरोधी शक्तियों और तत्वों को अपनी ओर खींचते हैं। जब हमारे अन्दर इस सम्बन्ध में आत्मरक्षा की ज्योति जगमगायेगी और हम यह समझ जायेंगे कि अदृष्ट शक्तियों और तत्वों का आक्रमण भी हमारे लिये उतना ही हानिकारक और संहारक है, तब हम भूलकर भी किसी के साथ बुराई करने की हिम्मत नहीं करेंगे। जो घृणा के सहारे जीवन व्यतीत करते हैं, घृणा ही उनके लिये मृत्यु का कारण बन जाती है, अर्थात् जो अपना जीवन निर्वाह तलवार के सहारे करते हैं उनका विनाश तलवार के सहारे ही होता है।

प्रत्येक बुरा विचार एक म्यान से निकली हुई तलवार की मानिन्द है, जो दूसरों पर तलवार जैसा घाव करता है। यदि प्रतिपक्षी भी उसके बदले में तलवार ही खींच लेता है तो दोनों बड़े घाटे में रहते हैं।

दूसरा विवेकी व्यक्ति इस विषय पर अधिकार से घोषणा करता है—"आत्मिक जगत की आकर्षण-शक्ति का नियम प्राकृतिक जगत में भी व्यापक रूप से कार्य करता है; प्राकृतिक जगत के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में यह समानरूप से कार्य करता है और हम अपनी आशा और इच्छा के अनुकूल पदार्थों को अपनी ओर खींचते हैं। जब हम इच्छा तो एक चीज़ की करें और आशा रक्खें दूसरी की, तो हमारी मानसिक अवस्था उस समाज की तरह होगी जो बुद्धि भेद के कारण तबाही की ओर जा रहा है। आप दृढ़व्रती होकर अपनी आशा के अनुकूल इच्छायें बनाइये, तभी आपको मनोवांछित पदार्थ प्राप्त होंगे। चाहे आप समुद्र पर भ्रमण करें, अथवा भूमि पर यात्रा करें लेकिन यह बात ध्रुव सत्य है कि जिस प्रकार के विचार आप अपने मस्तिष्क में रखकर विचरेंगे, ठीक उन्हीं के अनुरूप बुरे या भले पदार्थ जाने अथवा अनजाने निश्चित रूप से आपकी तरफ़ खिंचे चले आयेंगे। विचार-समूह हमारी निज की संपत्ति है और हम अपनी योग्यतानुसार उसे व्यवस्थित कर सकते हैं और शनैः शनैः अपने स्वभाव और शक्ति के अनुसार उसे उपयोगी बना सकते हैं।

हमने ऊपर मन की आकर्षण-शक्ति के विषय में ज़िक्र किया है। जिसे हम अन्धविश्वास कहते हैं। वह मन में उत्पन्न दृढ़ इच्छा, जिसमें इच्छापूर्ति और उद्देश्य प्राप्ति दोनों का समावेश हो, का परिणाम है। जिस दर्जे तक इस दृढ़इच्छा की

तरङ्गों को बाहर निकाला जाता है और साथ ही आशा से परिपूर्ण होकर उसके लिये पुरुषार्थ किया जाता है, उसी दर्जे तक हमें उसमें सफलता होती है। अदृष्ट में से हम उस दर्जे तक सहायक शक्तियों को अपनी ओर खींच लेते हैं, जिस प्रकार आत्मिक जगत के पदार्थ प्राकृतिक जगत के उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये ठोस शक्ति बनकर मददगार बनते हैं।

इसके विपरीत यदि जरा भी शंका अथवा भय हमें अपने उद्देश्य की सिद्धि में हो जाता है तो हमारी सारी योजना खटाई में पड़ जाती है। दृढ़ इच्छा की जो महान शक्ति इर्द गिर्द के आत्मिक सहायक तत्वों को अपनी ओर खींचने का सामर्थ्य रखती है, वह शंका और भय के अपने सारे प्रभाव को खोकर पराजय का मुँह देखती है। परन्तु जब हम दृढ़-इच्छा को आशा की पौद लगाकर आगे बढ़ेंगे तो यह दृढ़ इच्छा चुम्बक पत्थर की तरह शक्तिशाली बनकर अपने सहायक तत्वों को पकड़ लेती है और उसकी अदम्य सामर्थ्य के सामने सब बाधायें काफ़ूर हो जाती हैं और शुभ परिणाम उस दृढ़ इच्छा के बिल्कुल अनुकूल बनकर अपना प्रभाव दिखलाते हैं। हम आज इस सत्य तथ्य को समझने लगे हैं कि विश्वास के विषय में लम्बी चौड़ी बातें कही जाती हैं, वे भावुकता से भरी गपाष्टक नहीं, बल्कि अकाट्य वैज्ञानिक तथ्य हैं जो अटल नियमों के वशीभूत होकर कार्य कर रहे हैं। आज हम अपनी प्रयोग-शालाओं में इन शक्तियों के सम्बन्ध में कार्य करने वाले नियमों और व्यवस्थाओं को भली प्रकार समझने लगे हैं। पहले तो इन ताक़तों का प्रयोग आंखें बन्द करके किया जाता था, इसीलिये उसके परिणामों में बहुत बार गड़बड़ी भी हो जाती

थी, किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक युग में हम जागरूक होकर विश्वास की महिमा समझने लगे हैं और मनो-विज्ञान के नियमों का अध्ययन करने से इसकी महत्ता हम में भली प्रकार अवगत हो गई है।

अब इच्छा-शक्ति के विषय में सुनिये। विद्वान् लोग बलपूर्वक इसकी चर्चा करते हैं, मानो इच्छाशक्ति स्वयं ही कोई शक्ति हो, लेकिन इच्छा को जब हम वैज्ञानिक कसौटी से तोलते हैं तो हमें इस बात का पता लगता है कि विचार-शक्तियों को केन्द्रीभूत करने से ही इच्छा विद्युतमय हो सकती है और जब तक हम इस विद्युतमयी इच्छा को एक निश्चित उद्देश्य का साधन न बनायें, तब तक इसके सुन्दर परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होते। जिस दर्जे तक हम विचार-शक्ति को केन्द्रीभूत करके उन्हें दिशाबद्ध करेंगे, उसी के अनुसार वे उद्देश्य की सिद्धि करेगी।

इच्छा-शक्तियां दो प्रकार की हैं—ईश्वरीय और मानवीय। मानवीय इच्छा-शक्ति, मानवीय विकारों का परिणाम है। मानसिक प्रभाव-क्षेत्र में इच्छा-शक्ति ही इन्द्रियों द्वारा प्रभावित होकर उनके अनुकूल जीवन का रूप बनाती है। यह इच्छा-शक्ति उस व्यक्ति की है, जिसे आत्मा का जागरूक स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् जो बुद्धि और इन्द्रियों की जीवन धारा से बहुत नीचे दर्जे पर होता है। जब इस जीवन धारा के अनुसार व्यक्ति अपने आपको चलाता है तो वह अपनी बुद्धि और इन्द्रियों को भोग के ऊँचे दर्जे तक ले जाकर इन्द्रिय सुख में लगा देता है। उसके विपरीत ईश्वरीय इच्छाशक्ति जागरूक आत्मा की विकसित शक्ति है जो अपने आपको ईश्वर के साथ एकत्व का बोध कराती है और

जो अपनी इच्छा को ईश्वरीय इच्छा के अनुसार दैवी आदेशों का पालन करने के लिये उपयोग में लाती है।

मानवीय इच्छा की शक्तियाँ सीमित हैं, इसलिये वे सीमा के अनुकूल ही प्राकृतिक सुखों का उपभोग कर सकती हैं। ईश्वरीय इच्छा-शक्ति असीम है। यह सर्वोत्कृष्ट है। विश्व के सब पदार्थ और प्राकृतिक शक्तियाँ इसके आधीन हैं। जितने दर्जे तक मनुष्य ईश्वरीय इच्छा के अनुरूप कर लेता है, उसी के अनुसार उसे ईश्वरीय शक्तियों का लाभ मिलता है। जितने दर्जे तक उसका सम्बन्ध ईश्वरीय इच्छा के साथ निकटस्थ हो जाता है, उतना ही अधिक उसे ईश्वरीय प्रसाद मिलता है। इसीलिये प्रभु के भक्त कहा करते हैं—'हे ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

अतएव जीवन और शक्ति की सबसे बड़ी कुंजी यह है कि हम उस अनन्त शक्ति के साथ अपना जागरूक सम्बन्ध पैदा करें। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा शक्ति तथा उसके जीवन का माप उसके ईश्वरीय सम्बन्ध से जाना जा सकता है। ईश्वर, स्वभाव से सर्वव्यापी है और सर्वोत्कृष्ट भी है। वह सदा से मेरे और आपके जीवन में हर समय रचयिता संस्थापक और शासक का काम करता है। हम उसे अनुपस्थित स्वामी की तरह समझने के आदी हैं, मानों वह ब्रह्माण्ड की रचना कर तथा अपना शासन स्थापित कर कहीं दूसरी जगह चला गया हो।

यदि हम उसकी शक्तियों तथा इच्छाओं का पूरा लाभ लेना चाहते हैं तो हमें उसकी सर्वव्यापकता तथा सर्वोत्कृष्टता की अनभूति को सजीव बनाना चाहिये और जितने दर्जे तक हम इसमें सफल होंगे, उतने ही दर्जे तक हम उसकी शक्ति

तथा जीवन के भागीदार हो सकते हैं। वह वर्तमानकाल में भी प्रत्येक क्षण हमारे साथ तथा सब पदार्थों में व्यापक होकर अपनी महिमा का विस्तार कर रहा है। ऐसा चैतन्य ज्ञान जब तक हमें नहीं होगा, तब तक हमें उसके सद्गुणों का लाभ नहीं मिल सकता। जिस सीमा तक हम अपने आपको उस ब्रह्मधारा को स्नान करने के लायक बना सकेंगे, उसी सीमा तक उसकी सर्वव्यापकता तथा सर्वज्ञता के साधन हम बन सकेंगे। यह योग्यता हमें केवल अपने मन के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इसी साधन के द्वारा हम आत्मिक जीवन को शारीरिक शक्तियों के द्वारा प्रदर्शन कर सकते हैं। हमारी विचार-धारा को निरन्तर अन्तरात्मा की ओर से दैवी प्रकाश प्राप्त होना चाहिये। यह प्रकाश मन को जितने दर्जे तक ईश्वरीय एकता की अनुभूति करा देगा, उतने दर्जे तक वह शारीरिक साधनों की सहायता से उत्कृष्ट कार्य कर सकेगा, क्योंकि आत्मा व्यक्तिगत रूप से उसी अनन्त का प्रतिनिधि है।

यह हमें आन्तरिक पथ-प्रदर्शन का प्रकाश दिखलाता है, जिसे Intuition अथवा आन्तरिक ज्योति कहते हैं। जो कार्य इन्द्रियाँ प्राकृतिक जगत में करती हैं, जिनके द्वारा हम प्रकृति के दृश्यों का भान करते हैं—इन्द्रियों की जो प्रवृत्ति, उनकी जो क्रियाशीलता प्राकृतिक जगत में व्यवहार में आती है—ठीक वही उद्देश्य इस आन्तरिक ज्योति का आत्मिक जगत में सिद्ध होता है। यह आन्तरिक आत्मिक इन्द्रिय है। जिसके द्वारा मनुष्य आध्यात्मिक जगत के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करता है, उसकी, विश्व की आत्मा से, एकता हो सकती है और प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन होता है तथा जिसके द्वारा उसका परमात्मा के साथ साक्षात्कार और सीधा संपर्क हो

जाता है। इसी आन्तरिक ज्योति के बल से मनुष्य को अपने दैवत्व-स्वरूप की अनुभूति होती है और उसे अमृत पुत्र होने का सत्यज्ञान प्राप्त होता है। आध्यात्मिक प्रभुता और आन्तरिक प्रकाश की इस प्रकार प्राप्ति हो जाने से—जब आन्तिरिक ज्योति का विकास चतुर्मुख हो जाता है—ईश्वर की दैवी स्फूर्ति के बल से मुमुक्षु के हृदय-पट खुल जाते हैं, ग्रांथियाँ टूट जाती हैं. सब संशय दूर हो जाते हैं, और दुष्कर्मों के बीज दग्ध हो जाते हैं तथा उसे ऐसी अद्भुत दैवी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि जिस ओर वे अपने मन को एकाग्र कर ध्याना-वस्थित हो जाता है, तब संसार के सभी पदार्थों, नैसर्गिक रहस्यों और दुरूह विषयों का ज्ञान उसे सहज में ही होने लग जाता है। हम इस तथ्य को दुबारा कहते हैं। आन्तरिक ज्योति वह छठी इन्द्रिय है जो अन्दर की ओर खुलती है—जैसे भौतिक इन्द्रियाँ बाह्य जगत में व्यापार करती हैं और क्योंकि इस इन्द्रिय द्वारा सत्यज्ञान की प्राप्ति सीधे तौर से हो जाती है—उसमें किसी पैग़म्बर, मसीहा, गुरु अथवा अवतार की आवश्यकता नहीं रहती—बाह्य साधनों से वह बिल्कुल स्वतंत्र हो जाता है और उसकी सब प्रकार की निर्भरतायें दूर हो जाती हैं; इस प्रकार की शक्ति रखने वाली, देखने, सुनने और समझने की सामग्री से सम्पन्न यह आध्यात्मिक इन्द्रिय अन्तरात्मा अथवा आन्तरिक ज्योति के नाम से ब्रह्म-ज्ञान-क्षेत्र में प्रसिद्धि पाती है। प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों, ब्रह्म-ज्ञानियों और अवतारी महापुरुषों द्वारा जो चमत्कारिक कार्य जगत में हुये, जो स्फूर्तिदायक प्रवचन जीवनप्रद सूक्तियाँ और उत्कर्षयुक्त वाक्य हमें संसार के साहित्य में मिलते हैं, वे सब आत्मा की इसी क्षमता के आधार पर सत्य स्वीकृत हुये हैं। आत्मा, इसी इन्द्रिय के सहारे, दैवी शक्तियों को धारण कर उनका सदुपयोग करने की

सामर्थ्य प्राप्त करता है। मनुष्य का ईश्वर से जागरूक संयोग, उसके दैवी उद्देश्य के साथ सहयोग, जिसकी प्राप्ति उसे बलवती इच्छा और निर्विकल्प समाधि से होती है, उसकी आन्तरिक ज्योति को ब्रह्मज्ञान क्षेत्र में प्रविष्ट करा देती है। वह तब प्रभु की सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता का सहयोग पाकर ऋषि बन जाता है। ऐसा ही मनुष्य वीतराग होकर स्थितिप्रज्ञ बन जाता है।

आत्मिक जीवन के इस अनुभवपूर्ण शारीरिक स्थल पर मानसिक प्रवृत्ति तटस्थ हो जाती है—उसके इन्द्रिय सम्बन्धी संस्कार मिट जाने के कारण वह मनोविकारों से मुक्त हो जाता है। तब उसकी दृष्टि सब प्रकार के पक्षपातों से रहित होकर शारीरिक बन्धनों से ऊपर उठ निर्दोष ढंग से वस्तु स्थिति को समझने के योग्य बन जाती है। सत्य का सीधा ज्ञान, बाह्य पदार्थों की निर्भरता से मुक्त, यह मन तब दैवी दृष्टिकोण से वस्तुओं और प्राणियों का अध्ययन करने लग जाता है, तब उस प्रभु की सर्वज्ञता के चमत्कार उसे बोध होने लगते हैं। ईश्वर का उनके रचने में क्या उद्देश्य है और उनके निर्माण में किस सत्य तथ्य की भावना उस कर्ता के मन में छिपी हुई है—यह सब बातें सूर्य की रोशनी की तरह उस जागरूक आत्मा को प्रतीत होने लगती हैं। आत्मिक मन का ईश्वरीय मन के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण इस आन्तरिक ज्योति की सहायता से दोनों एक रस हो जाते हैं और तब दिव्य प्रकाश होने की वजह से सारा ब्रह्म-चक्र शीशे की तरह उसके सामने प्रगट हो जाता है। इसी अन्तरात्मा को कुछ लोग "ज़मीर" के नाम से पुकारते हैं, कुछ इसे ईश्वरीय आवाज कहते हैं, कुछ इसको छटी इन्द्रिय नाम धरते हैं, कुछ इसे अन्तर्ज्योति तथा अन्तरात्मा कहकर पुकारते हैं।

जितने दर्जे तक हमें अपनी आत्मा की अनुभूति होती है, उतने दर्जे तक अनन्त के साथ आत्म तत्व का साक्षात्कार हो जाता है—इससे जिज्ञासु जीवन मुक्त हो जाता है—और जिस दर्जे तक हम इस ब्रह्मधारा को ग्रहण करने के योग्य बन जाते हैं, उतने दर्जे तक यह दैवी इन्द्रिय, यह जमीर की आवाज, यह दैवी ध्वनि हमें स्पष्ट संदेश देती है; जितने दर्जे तक हम ध्यान से इसे सुनते हैं, उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, उसी दर्जे तक इसकी आवाज स्पष्टतर होती जाती है, यहां तक एक समय ऐसा आ जाता है कि जब इसका आदेश पथ-प्रदर्शन करने में नितान्त अचूक और निर्दोष हो जाता है।

एक बार जब मन-मंदिर में ब्रह्म-ज्ञान की धार बहे;
जन्म-जन्म के गन्द-फन्द, कुछ भी शेष न चिन्ह रहे।
वाह्य-जगत से मन हट जावे, अन्तर्नाद सुनाई दे;
हृदय-पटों के खुलजाने से, दिव्य-प्रकाश दिखाई दे।

—देवदूत

चौथा अध्याय

आरोग्यतापूर्ण स्वर्गीय जीवन

ईश्वर अनन्त जीवन की सजीव स्फूर्ति है। यदि हम इस ईश्वरीय अनन्त जीवन के भागीदार हैं और ब्रह्म धारा को पूर्णतया ग्रहण करते हैं तो इसका अर्थ यह है कि जहाँ तक प्राकृतिक शरीर का सम्बन्ध है, यह सात्विक शक्तियों को ग्रहण करने वाला बन सकता है। हम उस धारा से अपने माप से बहुत ज्यादा लाभ ग्रहण करते हैं, जितना कि हम प्राकृतिक जीवन द्वारा कर सकते हैं। क्योंकि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यह आत्मिक जीवन अधिक से अधिक किसी प्रकार की व्याधि को अपने अंदर प्रवेश होने नहीं देता। यदि यह तथ्य सत्य है तो आत्मिक तत्व के दर्शन करने वाले स्त्री और पुरुष के निकट कोई बीमारी नहीं आ सकती, क्योंकि ब्रह्म-धारा का बहाव बड़ी स्वतंत्रता पूर्वक ऐसे शरीरों में होता रहता है।

यह हमें प्रारम्भ से ही स्वीकार कर लेना चाहिये कि जहाँ तक प्राकृतिक शरीर का सम्बन्ध है, वहां मनुष्य का जीवन प्राकृतिक जगत से मिला रहता है। प्रकृति का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है—"जैसा अंदर, वैसा बाहर—अन्दर का जगत कारण रूप और वाह्य जगत कार्य रूप समझना चाहिये।" दूसरे शब्दों में, विचार-शक्तियाँ विभिन्न प्रकार की मानसिक अवस्थायें और भावनायें प्राकृतिक शरीर पर अपना प्रभाव डालती हैं।

एक मनुष्य यह कहता है—"मैं आजकल मानसिक

अवस्थाओं का जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है, उनकी बहुत चर्चा सुन रहा हूँ, लेकिन मुझे 'उन बातों पर विश्वास नहीं होता ” “उत्तर में हम यह पूछते हैं—क्या सचमुच आपको विश्वास नहीं ? अच्छा, आपको आकस्मिक किसी घटना की सूचना मिलती है, जिसे सुनकर आपका मुख पीला पड़ जाता है, बदन थर-थर कांपने लगता है, शायद आप मूर्छित भी हो जाते हों। यह खबर आपको मानसिक तत्वों द्वारा ही तो मिलती है। भोजन करते समय पास की कुर्सी पर बैठे हुए किसी मित्र ने आपके कान में कुछ फुसफुसा दिया, जो सुनने में कठोर था। प्रचलित भाषा में हम कहते हैं कि मित्र के शब्द सुनकर आप व्यथित हो उठे। आप बडे मजे में भोजन का रस ले रहे थे, किन्तु मित्र की थोड़ी सी फुस फुस ने आपकी भूख को भगा दिया। जो बात कही गयी थी, उसका मानसिक साधन द्वारा आप पर असर पड़ा।”

देखिये उस नौजवान को, जो सामने जा रहा है। वह पथ में थोड़ी सी बाधा आ जाने पर लड़खड़ाने लगता है। ऐसा क्यों है ? केवल इसलिये कि उसका मन निर्बल है, वह मानसिक व्याधि से पीड़ित होने के कारण होश-हवास खो बैठा है। अर्थ यह है कि यदि मनविकार युक्त हो जाय तो शरीर के विकृत होने में कोई संदेह नहीं। जिसका मन मजबूत है; उसकी चाल भी सुदृढ़ होगी। जिसका मन डग मगा रहा हो, उसकी जीवन चर्या अव्यवस्थित होनी ही चाहिये।

अच्छा, और सुनिये, एक अचानक घटना घटती है। इस घटना के घटित होने से आप थर थर कांपने लगते हैं। आप शक्तिहीन क्यों हो जाते हैं ? आपसे तो चला भी नहीं जाता ? जिस पर भी आप यह कहते हैं कि आपको मन की

शक्ति पर विश्वास नहीं। आप किसी कारण से क्रोध के आवेश में पागल हो जाते हैं और कुछ समय बाद सख्त सिर दर्द की शिकायत करते हैं। तिस पर भी आप विचारों और भावनाओं की जबरदस्त शक्ति पर विश्वास नहीं करते।

दो तीन दिन हुए, मित्र के साथ चिन्ता के सम्बन्ध में बातचीत हो रही थी। वे बोले—"मेरे पिता बहुत अधिक चिन्ता-सागर में गोते खाते रहते हैं।" मैंने धीरे से उत्तर दिया—"चिन्ता, चिता के बराबर मानी गई है, आपके पिताजी का शरीर निरोग नहीं।" मेरे साथी ने उत्तर दिया—"हाँ वे मोटे ताज़े, गठीले और फ़ुर्तीले नहीं।" तब मैंने ज़रा विस्तार से उसके पिता की बीमारी आदि की बातें उसे बतलाई। इस पर वह हैरान होकर बोला—"अरे! आपका मेरे पिता से बिल्कुल परिचय नहीं, फिर आप उनके विषय में सत्यता के साथ इतना अधिक कैसे जानते हैं?" मैंने हँसकर कहा—"मेरे प्यारे; आपने ही तो मुझे यह सूचना दी है कि आपके पिता चिन्ता में डूबे रहते हैं। जब आपने मुझे इतनी बात बतलादी तो मैंने सब व्याधियों का कारण समझ लिया, आपके पिता के विषय में बतलाते हुए मैंने कारण-कार्य सम्बन्ध जोड़कर यह सब परिणाम निकाल लिये।"

भय और चिन्ता शरीर के रसवाहक नस-समूह को सुखा देती है, यहाँ तक कि रक्त का प्रवाह मंद पड़ जाता है और जीवन-धारा सुस्त पड़ जाती है। इसके विपरीत आशा और चित्त की शान्ति जीवन-रस-धारा के अनेक ऐसे स्रोत को ऐसे सुन्दर ढंग से खोल देती है कि रक्त उछलता-कूदता हुआ बहने लग जाता है और शरीर की सब गंदगी बड़ी आसानी से बाहर निकल जाती है; जीवन-शक्तियाँ सुचारु रूप से काम करने

लगती हैं और परिणाम स्वरूप किसी प्रकार की व्याधि मनुष्य के निकट नहीं आती।

कुछ समय हुआ एक स्त्री अपने किसी सम्बन्धी के पास अपनी विकट बीमारी का हाल बतला रही थी। उस सम्बन्धी को यह पता था कि उस स्त्री का उसकी अपनी बहन के साथ बड़ा झगड़ा चल रहा है और वे दोनों एक दूसरे की जानी दुश्मन बनी हुयी हैं। उसने बड़े ध्यान से उसकी दुख वार्ता सुनी, तब उसकी आँखें गड़ाकर दृढ़ता के साथ वह पुरुष बोला—"अपनी बहन के सब अपरावों को क्षमा कर दीजिये।" उस स्त्री ने विस्मित होकर उत्तर दिया—"मैं अपनी बहन को कभी क्षमा नहीं कर सकती।" उस पुरुष ने उत्तर दिया—"बहुत अच्छा, तब ये व्याधियाँ आपका पिंड नहीं छोड़ेगीं।"

कुछ सप्ताह के बाद उस पुरुष की उस स्त्री से फिर भेंट हुई। वह युवती की तरह उसकी ओर बढ़ी और मुस्करा कर बोली—"मैंने आपका सत्परामर्श मान लिया मैंने अपनी बहन को क्षमा कर दिया। अब उसके और मेरे बीच में कोई मनो-मालिन्य नहीं रहा। मुझे यह पता नहीं कि मेरा रोग कैसे जाता रहा। लेकिन जिस घड़ी से मैंने अपनी बहन को क्षमा कर दिया, तभी से तमाम मेरे शरीर के सब दर्द काफूर हो गये, अब मैं बिलकुल नीरोग हो गयी हूँ। बहन के साथ मेरा प्रेम इतना बढ़ गया है। कि अब हम एक दूसरे से अलग नहीं हो सकतीं।" यहां कारण-कार्य सम्बन्ध बिल्कुल स्पष्ट है।

और सुनिये। हमारे पास सप्रमाण निम्नलिखित घटनाऐं मौचूद हैं जो इसी विषय को और भी अधिक स्पष्ट करती हैं। एक माता कुछ समय तक क्रोध के आवेश में इतना अधिक डूबी रही कि उसके स्तनों से दूध पीने वाला बच्चा एक घंटे

के अन्दर ही मर गया। माता का दूध क्रोध के आवेश के कारण ऐसा विषैला हो गया कि उसका बच्चा उस दूध के पीने के साथ ही चल बसा। यह प्रभाव शारीरिक नस-समूह में विष उत्पन्न हो जाने के कारण हुआ। दूसरे उदाहरणों में क्रोध के आवेश की वजह से व्यक्ति को उलटी होने लगी और सख्त सिर दर्द शुरू हो गया।

नीचे लिखा हुआ प्रयोग एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक द्वारा कई बार किया जा चुका है। कई आदमी एक तापमान कमरे में रखे गये। प्रत्येक मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकार के मानसिक विकारों का शिकार था। एक में यदि क्रोध की मात्रा भरपूर थी तो दूसरा कामदेव का भक्त था; तीसरा द्वेष का खाया और चौथा अव्वल दर्जे का घमंडी था। इस प्रकार मनोविकारों के इन रोगियों के पसीने की परीक्षा की गयी और एक एक विंदु को रासायनिक क्रियाओं द्वारा जांचने पर पता लगा कि इनके पसीने में भिन्न भिन्न प्रकार के जहरीले तत्वों का समावेश है और इसी प्रकार जब उनके थूक की परीक्षा की गयी तो उसके भी ऐसे ही परिणाम निकले।

एक प्रसिद्ध अमेरिकन लेखक का कथन है—यह लेखक अमरीका के अत्यन्त प्रसिद्ध मेडिकल कालिज का होशियार विद्यार्थी है, 'जिसने शरीर का विकास करने वाली तथा उसकी संहारक शक्तियों के विषय में बड़ी कुशलता पूर्वक अध्ययन किया है' —"मन शरीर का स्वाभाविक रक्षक है। प्रत्येक बुरा विचार मन के अन्दर उससे उत्पन्न होने वाली बीमारी का चित्र खींच देता है और शरीर में वैसे ही कृमि उत्पन्न हो जाते हैं; जो उन बीमारियों के जनक बनते हैं। क्रोध थूक के रासायनिक तत्वों को बदल देता है। यह बात जगत-

प्रसिद्ध है कि मनोविकारों के अचानक बढ़ जाने से न केवल हृदय कमज़ोर हो जाता है, बल्कि मृत्यु तथा पागलपन की उत्पत्ति भी हो जाती है। वैज्ञानिकों के द्वारा यह बात जानी जा चुकी है कि एक अपराधी के ठंडे पसीने की बूंद नीरोग आदमी के पसीने से बिल्कुल भिन्न प्रकार की होती है और किसी भयंकर अपराध के करने वाले की मानसिक अवस्था उसके पसीने की जांच करने से भली प्रकार विदित हो सकती है। जब उस पसीने को नमकीन दवाई (Saline Acid) से परीक्षा करते हैं तो उसका रंग स्पष्ट तौर से गुलाबी जाना गया है। यह बात सभी जानते हैं कि भय के कारण हजारों आदमी बेमौत मर जाते हैं, जब कि दूसरी ओर साहस नवजीवन और शक्ति प्रदान करता है।"

एक बच्चे की मृत्यु जो मां के स्तन से दूध पीता है, माता के क्रोध के कारण हो जाती है। रेरे (Reray) ने जो घोड़ों का एक प्रसिद्ध उस्ताद हुआ है, अपने अनुभव से यह बात कही है कि अश्व को यदि गाली दी जाय तो उसकी नब्ज़ एक मिनट में दस बार बढ़ने लगती है। यदि यह बात पशु के विषय में सत्य है तो मनुष्य का तो कहना क्या—विशेष कर एक बच्चे पर उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। मन में उत्पन्न हुआ विकार मनुष्य को उल्टी ला देता है। भय और क्रोध का भयंकर आवेश मनुष्य के नेत्रों में "पिलिया" उत्पन्न कर देता है। क्रोध के बवंडर से मनुष्यों को लकवा मार जाता है। बहुत से उदाहरणों में एक रात की मानसिक व्यथा ने जवानों को बूढ़ा कर दिया। बहुत दिनों से संग्रहीत ईर्ष्या और मानसिक कष्ट, पागलपन को पैदा करते हैं; रोगयुक्त विचार और अशान्त मानसिक दशायें बीमारी का वातावरण उत्पन्न करती हैं और

मन में नाना प्रकार की व्याधियों के बीज बो देती हैं।

आशा से परिपूर्ण स्वभाव द्वारा स्थायी आरोग्यता की जड़ जमने लगती है, जिसकी वजह से मनुष्य बिना दवाई के ही तन्दुरुस्त होने लगता है। सुन्दर मानसिक सुझाव, आरोग्यता के लिये, संजीवनी शक्ति हैं। यदि आप किसी व्यक्ति को यह कह दें—"आप तो बीमार मालूम होते हैं"— तो सुनने वाले के मन पर उस सुझाव का बुरा प्रभाव पड़ जाने के कारण वह भला चंगा व्यक्ति बीमारी की कल्पनायें अपने अन्दर पैदा कर लेता है। आप भली प्रकार जान लीजिए कि प्रसन्न चित्त और शान्त स्वभाव मन और शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं, इसी कारण मनुष्य चैतन्यता से भरी हुई गति को अपने अन्दर अनुभव करने लगता है। उसकी आशा-किरण आत्मा के लिए संजीवनी बनकर उसे मेधावी बनाती है।

उपरोक्त बातों से यह निष्कर्ष निकलता है, जिसे वैज्ञानिक तौर पर भी सिद्ध किया जा सकता है कि विविध मानसिक अवस्थाऐं, उद्विग्न कल्पनायें तथा मनोविकारों के आवेश काम क्रोध आदि) शरीर पर अपना भिन्न भिन्न प्रकार का प्रभाव डालते हैं और प्रत्येक विकार का यदि बहुत अधिक मात्रा में उपयोग किया जाए तो वह अपने अपने ढंग से भिन्न भिन्न प्रकार की बीमारियों को उत्पन्न करता है, जो समय बीत जाने पर असाध्य हो जाती हैं।

अब हम कुछ शब्द इनके प्रभावोत्पादक ढंगों के संबन्ध में लिखते हैं। यदि कोई मनुष्य एक मिनट के लिए क्रोध के आवेश में आ जाता है तो शरीर में भीषण तूफ़ान खड़ा हो जाता है, जिसके कारण शरीर में अमलतत्व उत्पन्न हो जाता है, जो शारीरिक यंत्र को जंग लगा देता है। शरीर में जो

निरोग जीवन-रस बहता है, वह इस प्रकार के आवेशों से विशैला बनकर जीवन-शक्ति देने की बजाय विनाशकारी तत्वों को पैदा कर देता है और यदि यह क्रिया, उस विष के अधिक संग्रह हो जाने के कारण, जारी रहे तो उसका परिणाम एक खास किस्म की व्याधि को जन्म देता है, जो आगे चलकर असाध्य हो जाती है। अब इसके विपरीत यदि हम अपने अंदर श्रेष्ठतम विचारों को स्थान देंगे, जैसे—दया, करुणा, प्रेम, उदारता, क्षमा, सहनशीलता आदि—तो उनके प्रभाव से निरोग, पवित्र, जीवनप्रद रस, तेजी से शरीर में बहने लगता है और हमारे प्रत्येक अंग प्रत्यंगों में स्फूर्ति देता हुआ बल प्रदान करता है। जीवन-शक्तियाँ कुदकियाँ लगाती हुई नस-समूह में से प्रवाहित होने लगती हैं और यही शक्तियाँ मनुष्य में कार्य करने की अद्भुत क्षमता प्रदान करती हैं। न केवल यही प्रभाव उनका होता है बल्कि वे विकार युक्त विषैली तरंगों का मुकाबला करती हुई, उनके ज़हरीले असर को मिटा देती हैं और मनुष्य में बीमारी का मुकाबला करने का बल भरती है। यही कारण है कि तन्दुरुस्त आदमी शीतोष्ण ऋतुओं का सामना आसानी से कर लेता है। व्याधियुक्त वातावरण उसका बाल बांका नहीं कर सकता और बीमारी के कीटाणु उसके जीवन-रस की शक्ति से भस्मीभूत हो जाते हैं।

देखिये, एक डाक्टर बीमार को देखने जाता है। वह कोई दवाई नहीं देता, लेकिन तिस पर भी उसके जाने मात्र से बीमार चंगा होने लगता है। इसका क्या कारण है? वह डाक्टर अपने साथ तन्दुरुस्ती का वातारण ले जाता है और उसके चेहरे की मुस्कराहट, उसकी वाणी का माधुर्य, उसकी आशाभरी चितवन, बीमार के हृदय में आशा का संचार करती

है और उसकी विचार-धारा में प्रसन्नता की लहर दौड़ा देती हैं। बीमार के मन पर डाक्टर के ऐसे स्वभाव से सूक्ष्म तथा स्थायी आरोग्यता की नींव पड़ने लगती है, जिसकी वजह से वह बिना दवाई के ही तन्दुरुस्त होने लगता है। सुन्दर मानसिक सुझाव, आरोग्यता के लिये, संजीवनी शक्ति हैं। यदि आप किसी व्यक्ति को यह कह दें—"आप तो बीमार मालूम होते हैं"—तो सुनने वाले के मन पर उस सुझाव का बुरा प्रभाव पड़ जाने के कारण वह भला चंगा व्यक्ति बीमारी की कल्पनायें अपने अन्दर पैदा कर लेता है। आप भली प्रकार जान लीजिये कि प्रसन्न चित्त और शान्ति स्वभाव मन शरीर को शक्ति प्रदान करता है, इसी कारण मनुष्य चैतन्यता से भरी हुई गति को अपने अन्दर अनुभव करने लगता है। उसकी आशा किरण आत्मा के लिये संजीवनी बन कर उसे मेधावी बनाती है।

हम बहुधा अपने किसी कमज़ोर साथी को यह कहते हुये सुनते हैं—"मित्र जब आप मुझे दर्शन देते हैं तो मेरा हृदय बाग़ बाग़ हो जाता है और मैं अपने आपको सबल अनुभव करने लगता हूँ।" इस कथन की तह में एक महान वैज्ञानिक सिद्धान्त काम करता है। विद्वान् यह कहते हैं– "ज्ञानियो के वचन आरोग्यता वर्धक होते हैं" सुझाव की शक्ति, जहाँ तक इसका मानवीय विकास से सम्बन्ध है, सचमुच मनोविज्ञान के क्षेत्र का एक अद्भुत और मनोरंजक विभाग है। सुझाव की सहायता से हम मनुष्यों के अन्दर अद्भुत क्रियाओं का संचालन करते हैं। संसार का एक जगत विख्यात वैज्ञानिक जो भूमण्डल में लब्ध प्रतिष्ठ शरीर विज्ञानी माना जाता है, कहता है कि उसने प्रयोग शाला में बैठ कर प्रमाणों द्वारा

यह सिद्ध किया है कि सारा मानव ढांचा एक साल के अन्दर न केवल पूर्णतया परिवर्तित किया जा सकता है, बल्कि उसकी श्रेष्ठतर रचना भी की जा सकती है और कुछ भाग तो सप्ताहों के अन्दर ही नये बनाये जा सकते हैं।

किसी ने विस्मित होकर मुझसे पूछा कि क्या सचमुच आपका यह अभिप्राय है कि बीमार शरीर का सारा ढांचा अन्दर की शक्तियों के सहारे नीरोग बनाया जा सकता है? निःसंदेह और इससे भी अधिक मेरा दावा तो यह है कि यही हक़ीक़त में सच्चा मार्ग हमारी व्याधियों के इलाज का है। बीमारियों के इलाज का मौजूदा तरीक़ा, जिसके द्वारा हम विषैली दवाइयों और बाहर के साधनों का प्रयोग करते हैं, बीमारी के इलाज का अस्वाभाविक तरीका है। जो कुछ थोड़ा बहुत इन दवाइयों का उपयोग है भी वह केवल तन्दुरुस्ती के रास्ते में आई हुई रुकावटों को हटाने मात्र के लिये है, जिससे संजीवनी शक्तियों को आरोग्यता देने का सुगम तर उपाय मिल सके। स्मरण रखिये कि सच्ची तन्दुरुस्ती लाने वाली शक्ति मनुष्य की आन्तरिक भावनायें हैं। संसार विख्यात एक चिकित्सक और डाक्टर ने अभी थोड़े दिन हुए अपने पेशे वाले साथियों के सामने यह घोषणा की थी— "पिछली कई शताब्दियों से शरीर का लालन-पालन करने वाले सब से अधिक पोषक प्रभाव के विषय में हम बेखबर रहे हैं और हमने इस धंधे में सदा प्राकृतिक पदार्थों के बुरे भले असर को ही प्रधानता दी है। प्रकृति पर मन का क्या प्रभाव पड़ता है और उसके द्वारा कैसे अद्भुत कार्य हो सकते है, इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान कभी खिंचा ही नहीं। इस भूल की वजह से डाक्टरी धन्धों के विकास क्षेत्र में बड़ी

भारी रुकावटें पड़ी रहीं और परिणाम स्वरूप मनोवैज्ञानिक शक्तियों का चमत्कारिक फल अभी तक भली प्रकार विकसित न हो सका। यह विज्ञान अभी बाल्यकाल की अवस्था में हैं। अब बीसवीं शताब्दी में मनोविज्ञान का सूर्य उदय हुआ है, इसलिये मानव समाज की उन्नति का चक्र प्रकृति के छिपे हुये रहस्यों और तथ्यों की ओर घूमने लगा है। अब डाक्टर लोग भी मनोविज्ञान के विद्यार्थियों की पंक्ति में बैठने लगे हैं और मानसिक शक्तियों के प्रभाव द्वारा जो नवीन विद्याओं की जानकारी होने लगी है, उसे समझने लगे हैं। अब इधर उधर बहकने का अवसर नहीं रहा और न ही शंकाओं के ढीले पन तथा दीर्घ सूत्रता के लिये ही समय है। अब तो अध्यवसाय से आगे से आगे बढ़ने का अवसर आ गया है। "चलती का नाम गाड़ी है; जो ठहरा सो मरा", क्योंकि संसार का मानवीय समाज अब मनोविज्ञान धारा में स्नान करने लगा है। मैं इस बात से भली प्रकार परिचित हूँ कि जिस विषय की हम चर्चा कर रहे हैं इसके सम्बन्ध में पिछले कई वर्षों में बहुत सी बेवकूफ़ियाँ हो चुकी हैं। बहुत से लम्बे चौड़े दावे विचार शक्तियों के विषय में अज्ञानी मनुष्यों ने किये थे, लेकिन इनके कारण प्राकृतिक नियमों के ऊपर किसी प्रकार की मिट्टी नहीं पड़ सकती और न मनोविज्ञान का अपमान ही हो सकता है। प्रत्येक आन्दोलन की प्रारम्भावस्था में ऐसी भूले बराबर होती रही हैं, चाहे वह आन्दोलन धार्मिक रहा हो अथवा दार्शनिक, चाहे चरित्र सम्बन्धी हो संसार की उन्नति का इतिहास हमें पुकार-पुकार कहता है कि प्रारम्भावस्था में मनुष्य बालक की तरह भूलें करता है और धीरे धीरे विकास द्वारा वह सचाई को पकड़ता जाता है। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, अनुभव,

मनुष्य को उसकी बेवकूफ़ियों और असंभव विश्वासों से हटाता जाता है और प्रकृति के अटल सिद्धान्त अपनी शान शौकत के साथ हमारे सामने आकर प्रकट होते हैं, तब हम उनकी सहायता से सत्य ज्ञान की प्राप्ति करते हैं।

मैं व्यक्तिगत तौर पर ऐसे बहुत से मामलों के विषय में जानता हूँ, जहाँ पूर्ण तौर से इन शक्तियों द्वारा बीमारी का इलाज थोड़े समय में ही हो गया। कुछ तो इस प्रकार के बीमार थे, जिन्हें डाक्टरों ने असाध्य कह कर निराशा के समुद्र में छोड़ दिया था। ऐसी घटनाओं के उदाहरण सभी धर्मों के इतिहास में प्रत्येक युग में पाये गये हैं। भला वर्तमान समय में इन आंतरिक शक्तियों द्वारा व्याधियों का इलाज क्यों नहीं हो सकता! इलाज करने वाली शक्ति हमारे अन्दर पहिले युगों की भाँति अब भी मौजूद है, किन्तु जितने दर्जे तक हम उन शक्तियों के साथ साक्षात्कार करेंगे उतने ही दर्जे तक हमें व्याधियों को दूर करने में सफलता प्राप्त होगी। जैसे पहले युगों के लोग इन आँतरिक शक्तियों के द्वारा बीमारों की सेवा किया करते थे, वैसे आज भी किया जा सकता है, केवल शर्त ये है कि हम उन प्राचीन महापुरुषों की भाँति प्राकृतिक नियमों के साथ अपना वैसा ही सम्बन्ध स्थापित कर लें।

एक मनुष्य दूसरे का इलाज करने में उसकी बहुत बड़ी सहायता कर सकता है, लेकिन यह बहुत दर्जे तक बीमार के अपने सहयोग पर अवलम्बित है। जब हजरत ईसा मसीह, अथवा कोई साधू-सन्त किसी बीमार व्यक्ति का इलाज प्रारम्भ करता था तो उसका पहला प्रश्न यह होता था—"क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास है?" इस ढंग से ये कलाकार बीमार के अंदर अपनी शक्तियों के जीवन प्रभाव का संचार करते थे। यदि कोई

बीमार अत्यन्त निर्बल होजाता अथवा उसका नस-समूह कमजोर पड़ जाता या उसका मन व्याधि के दुष्प्रभाव के कारण ग्राह्य शक्ति खो बैठता तो ऐसी अवस्था में उसे शक्तिशाली मनुष्य का सहयोग प्राप्त करता किन्तु ऐसे व्यक्ति के लिए सर्व श्रेष्ठ मार्ग यह है कि वह अपने अन्दर की सर्वव्यापक शक्ति प्रदायिनी ताकतों को चैतन्य करे।

एक आदमी दूसरे का सहयोग प्राप्त कर अपनी बीमारी का इलाज कुछ समय के लिए भले ही कर ले, किन्तु स्थायी तौर पर आरोग्यता प्राप्त करने का मार्ग उसके अपने ही हाथ में है। ऐसी अवस्था में दूसरा व्यक्ति उस्ताद का काम कर सकता है, जो बीमार के अन्दर की छिपी हुई शक्तियों को जागरूप कर उसे स्वावलम्बी बनाता है, लेकिन प्रत्येक अवस्था में स्थायी आरोग्यता की प्राप्ति तो बीमार के अपने पुरुपार्थ पर ही निर्भर है। महात्माजन बीमार का इलाज करते समय यही आशीर्वाद दिया करते हैं--"जाओ, पापों के मार्ग को छोड़ दो तभी तुम्हारा परित्राण होगा।" इस प्रकार वे प्रकृति के इस अटल सिद्धांत की घोषणा करते थे कि जो मनुष्य ज्ञान अथवा अज्ञान से, स्वेच्छा से या अनिच्छा से प्राकृतिक नियमों को तोड़ेगा, प्रकृति माता उसे अवश्य डंडा मारेगी।

याद रखिये, दुःख उस समय तक मौजूद रहेगा जब तक कि नियम के उल्लंघन का फल "पाप" उपस्थित है। यहाँ पर पाप शब्द से अभिप्राय उसकी दार्शनिक परिभाषा से है, मजहबी अर्थों में नहीं—यद्यपि बहुत सी अवस्थाओं में पाप शब्द का उपयोग दोनों विचार धाराओं में होता है, अर्थात् दार्शनिक और धार्मिक परिभाषाओं में--जिस क्षण में कोई व्यक्ति कुदरत के नियम के साथ एकता स्थापित कर लेता है, उसी क्षण दुख

की निवृत्ति हो जाती है, भले ही संग्रहित पापों के फल किसी अंश में मौजूद रह जांय किन्तु जब कोई व्यक्ति अपने आप को प्रकृति माता के अनुशासन में कर लेता है तो वह दयालु जननी उसके पापों के फल को धोना प्रारम्भ कर देती है और वह भाग्य शाली व्यक्ति जीवन के स्वाभाविक पथ का यात्री बन जाता है। जब कारण मिट गया तो कार्य स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

कोई शक्ति किसी असाध्य रोगी को पूर्णतया भला चंगा बनाने में इतनी शीघ्रता से सफल नहीं हो सकती, जितनी कि उस अनन्त शक्ति के साथ एकता की अनुभूति हो सकती है। यह एकता की चैतन्यता सभी व्याधियों के लिए रामबाण का काम करती है। इस संजीवनी शक्ति के स्रोत से सम्बन्ध कर लेने वाला सभी व्याधियों से मुक्त हो जाता है। शरीर के अन्दर की बनावट और उसके ढाँचे में बैठे हुए बीमारी के कीटाणु इस अमृत रस धारा से खतम हो जाते हैं और चारों ओर की जीवन प्रद शक्तियाँ बड़े वेग से शरीर को आरोग्यता देने लग जाती हैं वे बाधाएँ, जो वर्षों से पीड़ा पहुंचाती थी, इस संजीवनी धारा के सम्मुख चकनाचूर हो जाती हैं, जबकि मनुष्य अपने मन को उस ब्रह्म ज्ञान की धारा से प्लावित कर लेता है। ऋषि मुनि अपने आश्रमों में ऐसी ही ज्ञान धारा के बल से गृहस्थों के दुखों का त्राण किया करते थे और अपनी आध्यात्मिक शक्ति उन में भर देते थे।

जिस क्षण में कोई स्त्री या पुरुष उस अनन्त शक्ति के साथ अपनी एकता स्थापित कर लेता है वह उसी क्षण से अपने अध्यात्मिक स्वरूप को पहचान लेता है और प्राकृतिक शरीर की मोह ममता से वह छुटकारा पा जाता है। तब वह अपने आप को शरीर की मिथ्या भावना से मुक्त पाता है और उसकी

विचार धारा अन्तर्मुखी हो जाती है। प्राकृतिक दुःख और व्याधियां उस का पिंड छोड़ देती हैं और वह आत्मतत्व की ज्योति को पहचानने लगता है। "वह आत्मा है शरीर नहीं"— यह जागृति उसके लिए बिजली के प्रकाश का काम करती है और तब उसके ज्ञान नेत्र खुल जाते हैं और वस्तुओं का असली रूप उसके सामने प्रकट होता है। अब तक वह शरीर का क्रीतदास बना हुआ था किन्तु अब उसे पता लगजाता है कि वह शरीर का निर्माता और शासक है। इसी क्षण से उसका नया अध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ होता है और फिर वह प्रकृति के माया-जाल में नहीं फँसता और शरीर को अपना दास बना कर आत्मिक स्वाधीनता प्राप्त करता है। पंच भूत उसके लिए सुखदायक हो जाते हैं और अब उसे उनका कोई भयंकर रूप दिखाई नहीं देता। अब तक वह उन से डरता रहा, उनके साथ सदा झगड़ता रहा, किन्तु जिस क्षण से वह उन्हें अपने वश में कर लेता है, वह महान् शक्तिशाली बन कर बिचरने लगता है। अब उसका उनके साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित होजाने के कारण वे उसके सहायक और मित्र बन जाते हैं। जिस समय हम प्रेम से ओत-प्रोत हो जाते हैं, हम में दूसरों को प्रेम-पाश में बांधने की शक्ति आजाती है।

संसार में असंख्य प्राणी इस प्रकार के हैं जो अज्ञान के वश में होकर दुख उठा रहे हैं। वे ईश्वर को कोई भी अवसर सहायता करने का नहीं देते; वे इधर-उधर सहायता के लिए भटकते फिरते हैं किन्तु वे मूर्ख यह नहीं जानते कि सहायता का स्रोत उनके अन्दर मौजूद है। ऐसे अभागों को हम सत् परामर्श देते हैं कि वे कभी भूल कर भी अन्दर की ब्रह्मधारा के मुँह को बन्द न करें। बाहर भटकने की बजाय उन्हें ब्रह्म-

शक्ति का दरवाज़ा खटखटाना चाहिए, तब वे देखेंगे कि उनके सब दुःख कितनी शीघ्रता से दूर हो जाते हैं। उपनिषदों के पवित्र शब्द उन्हीं लोगों को नवजीवन प्रदान करते हैं जो अपने आप को उनके योग्य बनाते हैं। पात्र हुए बिना कोई श्रेष्ट वस्तु प्राप्त नहीं होसकती।

और देखिए। आप के सामने एक नाली में से कीचड़ भरा वर्षा का पानी बहता जा रहा है। कीचड़ की मिट्टी उस नाली के किनारों पर जमती चली जा रही है, लेकिन जब वह गन्दा पानी निकल जाता है और सुन्दर निर्मल जल-धारा बहने लगती है तो वह धीरे-धीरे नाली के गन्दे किनारों को साफ़ करना प्रारम्भ कर देती है और धीरे-धीरे सब मिट्टी वह जाती है और वह नाली साफ़ सुथरी होजाती है यही दशा हमारे शरीर की है। उस की नालियों से विषयों के गन्दे विचार वर्षा का रूप धारण कर इन्हें कीचड़ मय बना देते हैं और हम उन्हीं संस्कारों के वशीभूत होकर गन्दगी की ओर भागे जाते हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि हम निर्मल जल धारा को शरीर की नालियों से प्लावित करना प्रारम्भ करें जिससे सारी गन्दगी धुल जाय और हमें नीरोग मन का वरदान मिले। तभी हम सच्चे आनन्द की अनुभूति कर सकते हैं।

हाँ, जितने दर्जे तक आप अपनी एकता उस अनन्त शक्ति के साथ अनुभव करेंगे, उतने दर्जे तक आप के अन्दर की छिपी हुई आत्मिक ताकतें अपना बल प्रदर्शित करेंगी और इस प्रकार आपके उत्कर्ष और उज्वल भविष्य का रास्ता खोल देंगी; तब आप के शरीर के अन्दर की बीमारी के स्थान पर आरोग्यता का प्राधान्य हो जायेगा, कटुता का स्थान माधुर्य ग्रहण करेगा, चंचलता दूर भाग जायेगी और मानसिक शान्ति आप को

प्राप्त होगी; वेदना तथा व्यथा की जगह पर आप में सुखद शक्ति का प्रादुर्भाव होगा और जितना अधिक आप का सम्पर्क उस परमात्मा के साथ होता चला जायेगा उतनी ही अधिक आप में तन्दुरुस्ती की धाराएँ बहने लगेंगी और शरीर के रोम-रोम में आशा किरणें व्याप्त होकर आपको प्रतिभावान बनायेंगी। तब जिस किसी के साथ आपका सम्पर्क होगा, जिस सभा-सोसाइटी में आप चले जायेंगे, वहीं आध्यात्मिक ज्योति की किरणें जगमगाने लगेंगी और आप की उपस्थिति इर्द-गिर्द के लोगों के लिए आदित्य का काम देगी। हमें सदा यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार बीमारों के पास बैठने से बीमारी के कीटाणु मनुष्यों को पकड़ लेते हैं, उसी प्रकार आरोग्यता और आशा की किरणें दूसरों पर अपना असर डालती हैं। यदि आप व्याधि ग्रस्त, दुश्चरित्र, दुर्व्यसनी और निराशा में डूबे हुए साथियों में रहेंगे तो निश्चय ही उन की बुराईयां आप को चिपट जायेंगी, जैसे प्लेग और हैजे की छूत होती है, उसी प्रकार तन्दुरुस्ती और सचरित्रता का भी आकर्षण होता है।

हम प्रायः लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं— "आप हमें कोई सीधा नुस्खा व्यवहारिक रूप में ऐसा बतला दीजिए, जिसके द्वारा हम आपके उपदेशों को अमली जामा पहना सकें और उनका पूरा लाभ उठा सकें।" लोग बीमारियों से छूटना चाहते हैं, उनकी इच्छा है कि उनके क्लेशों की निवृत्ति किसी न किसी प्रकार हो जाय और ऐसे ही लोग दो टूक में इस सत्य सिद्धान्त का असली नुस्खा जानना चाहते हैं। जिससे वे सदा नीरोग बने रहें और जीवन का आनन्द ले सकें। ऐसी शंकाओं के उत्तर में हमारा निवेदन यह है कि हम बल पूर्वक इस बात की ओर अपने प्रेमियों का ध्यान खींचना चाहते हैं कि वे सब

से पहले इस बात को भली प्रकार हृदयंगम करलें कि प्रत्येक दुःखी हृदय को अपना इलाज स्वयं करने के लिए उद्यत हो जाना चाहिए; निर्भरता को त्याग कर स्वावलम्बी बनने की आवश्यकता है, क्योंकि हमारे इस नुस्खे की पहली शर्त यही है कि हम में आत्म विश्वास का होना निहायत जरूरी है—आप दूसरों पर निर्भर रह कर अपने आप को नीरोग, सचरित्र, साधू, महात्मा और महापुरुष नहीं बना सकते। आप का अपना पुरुषार्थ, अपनी तपस्या, अपना भगीरथ प्रयत्न और अपनी आत्मिक शक्ति ही सब व्याधियों का इलाज कर सकती है। कोई पैग़म्बर, कोई मसीहा, कोई अवतार और कोई गुरु आपको स्वर्ग नहीं ले जा सकता—इसे अध्यात्म विद्या का यह ककहरा समझिए।

दूसरी बात यह है कि आप सब प्रकार के व्याधियुक्त संस्कारों को परे फेंक कर आरोग्यता देवी की आराधना कीजिए और कभी मत कहिए कि आप बीमार हैं। इस प्रकार का मानसिक रुख व्यक्ति को बीमारी के वातावरण से ऊपर उठा देता है और व्याधि के कीटाणु उसके निकट नहीं जा सकते। जब हम किसी के घर में जाते हैं और हम उसके छोटे बच्चे को बुखार से पीड़ित देखते हैं तो हम हँस कर उससे यही कहते हैं—"बच्चे! बुख़ार को दो लातें लगा दे और उसे दूर भगा दे।" यह सलाह उस बालक के लिए ब्रह्मास्त्र बन जाती है और वह समझने लगता है कि उसमें बीमारी को भगाने की शक्ति मौजूद है, इसलिए सब से पहले इस मानसिक-परिवर्तन की आवश्यकता है। इस महान, सिद्धान्त के दो पहलू हैं—दृढ़ प्रतिज्ञा और अनुभूति। दृढ़ प्रतिज्ञा का रूप यह है कि आप बीमारी के विरुद्ध युद्ध करने पर दृढ़व्रती हो जायें। यह

दृढ़व्रती होना बीमारी को भगाने में सहायक होता है, किन्तु असली तत्व अर्थात् मुख्य बात तो अनुभूति की है। आप ने प्रतिज्ञा तो करली, किन्तु उसके अनुसार उपचार नहीं किया तो कोरी प्रतिज्ञा क्या कर सकती है। इसलिए दृढ़व्रती होने के बाद उस निश्चय की पूर्ति के लिए साधन जुटाना चाहिए और साधक को अनन्त शक्ति के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करना उचित है—यह उसकी अनुभूति है।

जब आप को यह चैतन्य अनुभूति हो जाय कि उस अनन्त स्रोत से ही सब प्रकार की जीवन शक्तियां प्रस्फुटित होती है और भविष्य में भी होती रहेगी, जब आप यह जान जायें कि जिस स्थान पर किसी प्रकार की भी जीवन ज्योति दृष्टिगोचर होती है वह सब उसी अनन्त जीवन धारा के कारण है। हम सब उसी अनन्त धारा से जीवन ग्रहण करते हैं और वह अनादि काल से अनन्त की ओर बही चली जा रही है तब ऐसी अनुभूति हो जाने पर उस अनन्त शक्ति के साथ एकता स्थापित करना आसान हो जाता है और तब हम जीवन पथ पर आरूढ़ हो जाते हैं यह प्राकृतिक शरीर उस अनुभूति के हो जाने पर आप का सच्चा सहायक बन जाता है और सब प्रकार के नस समूह उसी अध्यात्म आदर्श की ओर गतिवान होने लगते हैं। शरीर तब यह समझ जाता है कि उसे कोई प्राकृतिक व्याधि छू नहीं सकती और उस अनन्त शक्ति का सम्पर्क उसके लिए कवच बन जाता है।

हमें इस प्रकार के भी उदाहरण मिलते हैं कि जिन आत्माओं ने पूर्ण तौर से अपने आप को अनन्त के प्रति आत्म समर्पण कर दिया उनकी बीमारियों का इलाज तत्काल हो गया। लेकिन इसमें तीव्र इच्छा शक्ति की आवश्यकता है—वह ऐसी

प्रगाढ़ होनी चाहिए कि उसके मुकाबिले में आपको कोई वस्तु जचे नहीं, तभी आपकी ईश शक्ति मानसिक एकाग्रता केन्द्रीभूत होकर अपना चमत्कार दिखला सकेगी। यह रहस्य है जिसे भली प्रकार समझ लेना चाहिए। तीव्रता भी दो प्रकार की होती है—एक तो वह प्रचुरता जो व्यक्ति को अशान्त, उद्विग्न और निराश बना देती है और दूसरी तीव्रता वह है, जिसमें धैर्य, अध्यवसाय, शान्त और आशा का बाहुल्य होता है; यह पिछली तीव्रता ही व्यक्ति में आनी चाहिए, तभी उसका मुँह अनन्त की ओर हो सकता है और वह सब प्रकार के दुःखों से छूट सकता है। तीव्रता के कारण समय की बड़ी बचत हो जाती है और प्रबल भावना के बिना सफलता के दर्शन तत्काल नहीं हो सकते, जितने कम दर्जे तक तीव्रता होगी, उतना ही अधिक समय बीमारी के इलाज में लगेगा।

बहुत से मनुष्यों को निम्नलिखित ढंग से अपनी बीमारी को दूर करने में बहुत शीघ्र सहायता मिल सकती है—मन को शान्त रख, सब के प्रति अपने हृदय में प्रेम-भाव की स्थापना कर आप अपने आन्तरिक जगत में प्रवेश कीजिए और आगे लिखे भावों को अपने में भली प्रकार लाइये—"मैं अनन्त प्रभु के साथ एकता रखता हूं, जो मेरे प्राणों का प्राण है। मैं आत्मा हूं और आत्मा होने के नाते मुझ में कोई व्याधि नहीं रह सकती मेरे शरीर में व्याधि को भावना ने प्रवेश कर लिया है, जिसे दूर करने के लिए मैं अपने आपको प्रभु के समर्पण करता हूँ; प्रभु की अनन्त ज्ञान धारा मेरे तन में दाखिल हो रही है; वह मेरी बीमारी को भगा रही है।" आप इन भावों को इस तल्लीनता से अनुभूति में लावें कि तन्दुरुस्ती का चित्र आपके सामने खिंच जाय और आप नीरोगी तरंगों की उष्णता को अपने अन्दर

अनुभव करने लगें। आप यह धारणा कर लें कि आप नीरोग हो रहे हैं और वह अनन्त धारा आप का इलाज कर रही है। बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जो अन्दर से चाहते तो कुछ और हैं लेकिन आशा किसी दूसरी चीज़ की करते। उनमें बुराई की तरंगों पर विश्वास अधिक होता है जिसकी वजह से वे मन गढ़न्त बुरी बाधाओं की रचना करते रहते हैं, इसी कारण वे बीमार रहते हैं।

मन के रुख पर भी बहुत कुछ निर्भर है। यदि आप ध्यानावस्थित होकर बीमारी की तरंगों को दूर भगा देंगे और मन को उनसे खाली कर लेंगे तो बहुत जल्दी आपको अपने मानसिक रुख का सुखद फल चखने को मिलेगा। हम में निराशा और कम हिम्मत की तरंगे इतनी अधिक हैं कि वे हमारे आदर्श की सिद्धी में सदा रोड़े अटकाती रहती हैं, इसलिए हम अपने बहुत से कामों में सफलता प्राप्त नहीं करते। यदि हम पुरुषार्थी बन कर सफलता प्राप्त करने की कोशिश करते भी हैं तो भी मन का वैसा रुख होने के कारण इच्छित वस्तु हमें प्राप्त नहीं होती, क्योंकि खाली उद्योग ही काफ़ी नहीं है, उसके साथ वैसा ही मन का रुख भी बनाना चाहिए जिससे उस वस्तु का स्वागत करने के लिए मन तैयार रहे—जब दोनों का मेल होजाता है तब हमें कामयाबी हो जाती है। मन के रुख से इस प्रकार की सफलता की सिद्धी हो जाना कोई विस्मय जनक बात नही क्योंकि सर्वशक्तिमान प्रभु अपनी सर्वव्यापकता के बल से कार्य करता है और जब हमारे हृदय में किसी प्रकार की शंका तथा संदेह नहीं रह जाता तो वह दयालु हमारी पूरी सहायता करता है।

यदि आप के शरीर में कोई ऐसा विशेष स्थल है, जिसका

इलाज आप ख़ास तौर से करना चाहते हैं अथवा कोई विशेष अंग है जिसे आप मज़बूत बनाना चाहते हैं तो आपको चाहिये कि अपनी मानसिक तरंगों को बड़े ध्यान से उसी ओर लगाइये। तब आपके रक्त की धारा बड़ी तेज़ी से उसी ओर दौड़ने लगेगी और शरीर के नस समूह उसी विशेष अंग का पोषण करने लगेंगे जैसे किसी देश के किसी हिस्से में अकाल पड़ जाय और वहाँ के लोग भूखों मरने लगें तो शेष भागों के लोग अकाल पीड़ितों की सहायता को दौड़ते है और अपने संग्रह किये हुए अन्न को उस भाग में पहुंचाते है, इसी प्रकार जब मन शरीर के बाक़ी भागों को यह सूचित करता है कि अमुक भाग में निर्बलता छायी हुई है, हड्डी कमज़ोर है अथवा रक्त की कमी है तो अपने सरदार का हुक्म पाकर शरीर के बाकी हिस्से उसकी सहायता को दौड़ते हैं और वह दुर्बल भाग सहायता पाकर नीरोगी हो जाता है। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि किसी भी व्याधि का पूर्णतया इलाज तभी सम्भव है जब उसका उपचार करने में परहेज़ का पूरा ख्याल रखे। जब तक कारण को नहीं मिटा दिया जाता तब तक कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। बद परहेज़ी बीमारी का मुख्य कारण है उसके हटाये बिना व्याधि कैसे दूर हो सकती है ?

यह आवश्यक नहीं है कि अध्यात्मवाद का यह इलाज केवल बीमारी होने पर ही किया जाना चाहिए बल्कि यह तो नीरोग स्त्री-पुरुषों के लिए भी उतना ही लाभकारी है। जब हमें ईश्वर से मिलाप की अनुभूति होने लगेगी, जब हम ब्रह्म-ज्ञान की धारा को पकड़ने में समर्थ हो जायेंगे, जब हम अपनी इच्छानुसार वाह्य जगत से मन हटा सकेंगे, तब हमारे शरीर और मन में उत्तरोत्तर आत्मिक बल का संचार होगा, हम दीर्घ

दर्शी बनेंगे और हममें वस्तुओं को समझने की अद्भुत क्षमता आ जायेगी।

सभी देशों और सभी युगों में हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब बीमारियों का इलाज बाहरी साधनों की अपेक्षा आत्मिक साधनों द्वारा हुआ है। नाना प्रकार के तरीके उन साधु-सन्तों ने अपने काल में इस्तेमाल किये और उनके भिन्न-भिन्न नाम रखे गये किन्तु सब की तह में वही मूल सिद्धान्त काम करता था और वही आज भी करता है और भविष्य में भी करेगा। जब भगवान बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को प्रचारार्थ बाहर भेजा और उन्हें इस बात का आदेश दिया कि दुःखी व्याधि-ग्रस्त और निराशा में डूबे हुए लोगों को उबारें और साथ ही बौद्ध-धर्म के पवित्र सिद्धान्त सिखलावें तो उनके भिक्षुओं ने जहाँ एक ओर उन्होंने अपने गुरु के बतलाये हुए धर्म से लोगों को दीक्षित किया वहाँ दूसरी ओर उन व्याधियों से भी मुक्त कर दिया। जब तक ये दोनों चीज़ें साथ नहीं चलतीं तब तक उपदेश की कोई क़ीमत नहीं रह जाती।

क्या उस काल के वे बौद्ध साधु-सन्त अथवा हज़रत ईसा के शिष्य दैवी शक्तियों से सुसज्जित थे जो आज हम उनकी तरह बीमारियों का इलाज नहीं कर सकते? नहीं, ऐसी बात नहीं है। प्रकृति के नियम तो अटल हैं। जैसे वे उस समय मौजूद थे वैसे अब भी हैं।

जो चमत्कार उस समय हो सकता था, वह अब भी हो सकता है। उस युग से और आधुनिक युग में अन्तर यह है कि आजकल हम उपदेश में केवल शब्दों का व्यवहार करते है उनके अर्थों में व्यवहारिक ढंग से नहीं घुसते। शब्द तो बेजान हैं, उनमें जान तभी पड़ सकती है, जब उसे सजीव बनाया जाय। कोयला उसी

समय जलने की शक्ति धारण कर लेता है जब उसमें अग्नि प्रवेश कर जाती है। यही दशा उपदेश दिये हुए शब्दों की है। वे निर्जीव होते हैं जब तक उनमें चेतना न भरी जाए। बोलने वाला यंत्र की तरह बोलता है और सुनने वाले भी जानते हैं कि वे ग्रामोफोन को सुन रहे हैं। प्रत्येक आत्मा जो शाब्दिक जंजाल से निकल कर अर्थों के क्षेत्र में प्रवेश करती है और शब्द के असली रूप को देखने लग जाती है वही शक्ति शालिनी और सामर्थ्यवान होती है। पिछले युगों में जिन लोगों ने जन साधारण में क्रान्ति की धारा बहाई वे ऐसे ही लोग थे जो मुंह से निकलने वाले कोरे शब्द नहीं कहते थे बल्कि अंगारे उगलते थे, जिनमें पापों को भस्म करने की शक्ति होती थी। वे मनसा-वाचा-कर्मणा अर्थात् मन वाणी और कर्म में एकता कर जब प्रजा के सामने कोई बात कहते थे तो वह श्रोताओं के हृदय को पकड़ लेती थी और उनकी सोई हुई आत्मा चैतन्य होकर क्रांति का रूप धारण करती थी। ऐसे ही लोगों ने पुराने युग को खतम कर नये युग की स्थापना की थी और उन्हीं में पुराने कचरे को अपनी प्रचण्ड धारा से बहा देने की शक्ति होती थी।

यह बात हम बड़ी शीघ्रता से जानने लगे हैं कि प्रत्येक बीमारी का मूल कारण मस्तिष्क में विकृत भावों की वजह से स्थान पाता है। जिस प्रकार का मानसिक रुख हम किसी वस्तु के प्रति रखेंगे ठीक उसी तरह का परिणाम हमें उससे मिल सकेगा। यदि हम वस्तु से डरते हैं अथवा विरोधात्मक भाव धारण करते हैं तो हमें उससे किसी प्रकार के लाभ की आशा न रखनी चाहिये। उल्टा उसकी प्रतिक्रिया से हमें हानि पहुँचने की संभावना अधिक हो जाती है और उससे

हमारा अहित हो जाता है। यदि हम विरोधी भाव छोड़ कर अपनी अध्यात्मिक शक्ति के सहारे उच्च सद्‌गुणों का प्रदर्शन करेंगे और अपनी श्रेष्ठता की अनुभूति से उसी प्रकार का मानसिक रुख बना लेंगे तो वह वस्तु हमारे अनुकूल होकर हमें लाभ पहुँचायेगी।

कोई व्याधि हमारे शरीर में प्रवेश नहीं कर सकती, जब तक कि उसे अपने अनुकूल वातावरण न मिले। शरीर में उसके अनुरूप सामग्री होनी चाहिये, जो बीमारी का स्वागत करे, तभी व्याधि वहाँ पनप सकती है। इसी प्रकार जब तक हमारे अन्दर बुराई का स्वागत करने वाली आदतें न हों, बीमारी हमारे निकट फटक नहीं सकती। भलाई भी जहाँ अपना स्वागत देखती है, जहां उसे आदर मिलता है, वहीं दौड़ी जाती है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं—"Like-attracts like" जैसा जो होता है वैसा ही उसको मिलता है। कहा है कि कोढ़ी को दस मील का चक्कर काट कर भी कोढ़ी मिलने जाता है। हमें अपने आपको ऐसा बना लेना चाहिये, हमारा स्वभाव ऐसा सात्विक हो जाय के भलाई के सिवाय दूसरी कोई वस्तु हमारे अन्दर प्रवेश न कर सके।

हमें अपनी आत्मियता के कारण प्रकृति को अपना दास बनाना चाहिये था, अब उल्टा हम उसके दास बन गये हैं और इसीलिये नाना प्रकार के दुःख, क्लेशों, और व्याधियों का शिकार बन रहे हैं। यह सब हमारे अज्ञान के कारण होती है।

अपने सुन्दर हवादार कमरे में बैठे हुये खिड़की के आने वाले शुद्ध पवन के झोंके से हम भय खाते हैं और डर कर कहते हैं—"खिड़की बन्द करो, नहीं तो हमें जुकाम हो जायगा"—ईश्वर प्रदत्त निर्मल हवा का झोंका हमें इसीलिये सताता है

न कि हम उसका आदर करने की बजाय उसका निरादर करते हैं। जो शुद्ध पवन हमारे फेफड़ों में जाकर शरीर के मल को धो देती है, हम में बल का संचार करती है, उसके झोंके से हम डरें! यह हमारा दुर्भाग्य ही तो है। हमें कारण-कार्य के सम्बन्ध को भूलना नहीं चाहिये। पवन के झोंके में हानि करने वाली कोई वस्तु नहीं, केवल हमारे अन्दर बैठा हुआ भय ही हमारा शत्रु है, जो जुकाम को उत्पन्न करता है।

अब आप देखिए। दो मनुष्य बैठे हैं, उसी पवन के झोंके के सामने—एक तो डर से कांप रहा है और दूसरा मस्ती से उसका मजा ले रहा है। दोनों में क्या अन्तर है? जो डरपोक है उसने तो अपने अन्दर पवन से डरने का वातावरण बना लिया है, वह डर के मारे कांपता है और सदा बीमारी के स्वप्न देखता है; इसके विपरीत दूसरा शुद्ध पवन का सहर्ष स्वागत करता है और उसका आदर कर उसे मित्र बना लेता है। दो भिन्न प्रकार की मानसिक स्थितिओं के कारण एक ही वस्तु के दो रूप हो जाते हैं। यदि पवन के झोंके में बीमारी लाने के कीटाणु होते और वही कारण सत्य होता तो दोनों पर बराबर का प्रभाव होना चाहिए था, किन्तु ऐसा नहीं होता, इस से पता चलता है कि पवन का झोंका जुकाम का कारण नहीं है, वह तो केवल एक अवस्था है। एक व्यक्ति परिस्थितियों का गुलाम नहीं बनता, वह बहाव के साथ नहीं बहता, वह लोक प्रियता का गुलाम नहीं, वह एक शक्तिशाली इच्छा रखने वाला व्यक्ति है, जिसे कोई चीज डरा नहीं सकती, इसलिये वह वस्तुओं को अनुकूल बना कर उनका पूरा लाभ उठाता है। दूसरे डरपोक लोग—"गंगा गये गंगादास और जमुना गये जमुना दास" बन कर सब जगह निरादर पाते हैं।

कमज़ोर मनुष्य कैसा अभागा है! किसी ने सच कहा है —

"हंसी आती है मुझे इस हज़रते इन्सान पर,
फ़ेल बद तो ख़ुद करे लानत करे शैतान पर।"

बेचारा पवन का झोंका लाखों ऐसे कायर मनुष्यों के द्वारा बदनाम हुआ है, जिन्होंने अपनी बीमारी का कारण उसे बता कर उसे बदनाम कर डाला है। अज्ञानी मनुष्य अपनी भूलों, अपनी ग़लतियों को तो देखता ही नहीं—दूसरों के गले अपनी भूलों को मढ़ने की बीमारी उसकी बहुत पुरानी है। यदि उसमें अपनी ग़लतियों को देखने की क्षमता आजाय तो संसार कितनी जल्दी सुधर जाय।

प्रभु ने जिसे अजर, अमर बनाया है, जिसे प्रकृति का स्वामी बना कर राज्य सिंहासन पर बिठलाया है, वह आत्मा शारीरिक निर्बलताओं का गुलाम बन कर दूसरों के सामने गिड़गिड़ाता, हाथ जोड़ता, सिर झुकाता और दीनता के वचन कहता हुआ ज़रा भी लजाता नहीं। जिसे प्रभु ने अमृत पुत्र बना कर ब्रह्मांड का शाहनशाह बनाया था, वह अपने स्वरूप को न पहचानने के कारण छोटी छोटी चीजों से भय खाता हुआ कैसी निर्भरता की जिन्दगी बिता रहा है। उसे चाहिए तो यह था कि वह ईश्वर के दिये हुए पदार्थों का सच्चा स्वरूप पहचान कर उनका पूरा लाभ लेता और उनके द्वारा नयी शक्तियां प्राप्त कर अपने पिता के साम्राज्य में आनन्द लाभ करता, किन्तु ऐसा न कर, वह उन्हीं चीजों से भय खा रहा है, जो उसके कल्याण के लिए प्रभु ने बनायी है।

हवा के ठंडे झोंके को अपने अनुकूल बनाने का सर्व श्रेष्ठ मार्ग यह है कि हम अपने अन्दर नीरोग मानसिक स्थिति उत्पन्न करें, हमें उस शीतल पवन के झोंके के प्रति अपना अनु-

कूल भाव बना लेना चाहिए। इस सत्य तथ्य को भली प्रकार हृदयंगम कर लीजिये कि उस ठंडे झोंके में हानि पहुँचाने की कोई भा सामिग्री नहीं, इसमें तो प्रकृति-प्रदत्त आरोग्यता बर्द्धक शक्ति ही है ऐसा भाव बना लेने से आपके अन्दर का डर निकल जायेगा और आप इस प्राकृतिक वरदान के अनुरूप हो जायेंगे। अपने आप को विरक्त भाव से हटाकर आप इस झोंके के सामने लाइये—एक बार नहीं कई बार उसे सहन करने की आदत डालिए! तब आपका शरीर शीतल पवन को सहन करने लगेगा। अपने से शक्तिशाली प्राकृतिक तरंगों का विरोध दूर करने का तरीका धैर्य और अध्यवसाय से प्राप्त होता है। अच्छा यदि कोई व्यक्ति दुर्बल शरीर वाला हो तो उसे अपनी सहज बुद्धि द्वारा धीरे धीरे पवन के झोंके को सहन करने का अभ्यास करना चाहिए—वह घमण्डी बन कर उनके सामने खड़ा न हो, बल्कि प्रेम और विनय से उनका स्वागत करे। कभी भूल कर भी कठोर झोंके के सामने खड़े होना उचित नहीं, विशेष कर ऐसी अवस्था में जब कि आप के दिल में लेश मात्र भय अथवा विरोध मौजूद हो। प्रत्येक अवस्था में मानवी बुद्धि का प्रयोग करना अत्यावश्यक है।

स्मरण रखिए कि प्रभु के ब्रह्मांड में रियायत नाम की कोई वस्तु नहीं। वहाँ तो न्याय, केवल न्याय ही सर्वत्र व्याप रहा है! जब एक मनुष्य किसी चमत्कार को कर सकता है तो समझ लेना चाहिए कि सब स्त्री पुरुष उस कठिन कार्य को कर सकते हैं। प्रभु के नियम अटल हैं, वे सब युगों में एक जैसे रहते हैं। यह कभी न मानना चाहिए कि कोई भूत-प्रेत, जन्त्र-मन्त्र, डाकिनी-शाकिनी का प्रभाव किसी व्यक्ति विशेष पर पड़ता है और दूसरे पर नहीं; यदि पड़ेगा तो सब

पर, यदि नहीं तो किसी पर भी नहीं; हाँ, भेद केवल मानसिक स्थिति का है। जिसने अपने अन्दर भय को स्थान दिया है उसे सब प्रकार के भूतों का रूप दिखायी पड़ता है; जो विजयी बनकर निर्भय और निर्द्वन्द्व रहता है, प्रभु उसे अभय दान दे देते हैं। अपने अन्दर की शक्तियों को जितने दर्जे तक की अनुभूति आपको होगी, उतने दर्जे तक प्राकृतिक प्रभुत्व आपको प्राप्त होगा, जितने दर्जे तक हम अपनी इन शक्तियों से अनभिज्ञ रहेंगे, उतने दर्जे तक ये हमें प्राकृतिक शक्तियां डराती रहेंगी। यह युद्ध प्रकृति और पुरुष का है। पुरुष प्रकृति का स्वामी है किन्तु भूल से उसका दास बना हुआ है। अन्दर के कारण जगत अनुरूप ही हम बाह्य जगत को देखते हैं। आध्यात्मिक जगत प्राकृतिक जगत से भिन्न नहीं, दोनों का कारण कार्य सम्बन्ध है।

सारा मानव जीवन कारण कार्य के अनादि सिद्धान्त में बँधा हुआ है। संयोग (chance) नाम की कोई चीज़ दुनियां में है नहीं। सब घटनाएँ कारण कार्य के नियम के अनुसार घटती है। अनजान लोग जब किसी वस्तु को समझते नहीं, जब उस पर दिमाग़ नहीं लड़ाते, घटनाओं को समझने के लिए दौड़ धूप नहीं करते तो अपने आलस्य और प्रमाद को छिपाने के लिए एक नया शब्द 'संयोग' गढ़ कर अपने मन को सान्त्वना दे लेते हैं। हमें चाहिए कि हम व्यर्थ के बहाने बनाना छोड़कर ख्याली भूतों को गालियां देने के बजाय प्रत्येक घटना का कारण तलाश करें। ईश्वर ने इस सृष्टि को अटल कानूनों में बद्ध किया है, इसलिए कोई घटना संयोगवश नहीं बल्कि कारण वश घटती है यदि हम उन कारणों को मिटा दें तो उसका कार्य कदापि नहीं हो सकता। यह हमारे वश की बात है। तकदीर या भाग्य नाम की कोई शक्ति-

हमारे जीवन में खेल नहीं खेलती। कायर लोगों ने इन शब्दों की रचना की है, जो कारण कार्य के नियम को नहीं समझते और न समझने का यत्न ही करते हैं। पुराने जर्जरित रूढ़ियों के दास, लकीर के फ़कीर बनने में ही अपने जीवन की इतिश्री समझते हैं। वे अन्वेषण करने, घटना के कारण कार्य सम्बन्ध को समझने तथा वस्तुओं के रूप को पहचानने का पुरुषार्थ नहीं करते, इसीलिए हमें अपने उद्देश्य की सिद्धि में बड़ी कठिनाईयां उठानी पड़ती हैं। चूँकि हमारा स्वभाव पुरानी आदतों की ग़ुलामी करने का होगया है, इस कारण नवीनता हमको बुरी लगती है और हम शीघ्र उसका विश्वास नहीं करते। भेड़ की तरह आँखें मूँद कर पीछे चलने में हमें सुख मिलता है। जब हम यह कहते हैं कि अपने भाग्य के हम स्वयं निर्माता हैं तो उसका अभिप्राय यह है कि कारण कार्य सम्बन्ध को समझने वाला व्यक्ति बड़ी आसानी से जीवन की घटनाओं को बदल सकता है, वह उन्हें स्वाधीन कर सकता है, वह उन्हें अपनी इच्छानुकूल बना सकता है। उसके लिए शर्त यही है कि उसका सम्बन्ध अनन्त स्रोत के साथ होना चाहिए। सृष्टि में कार्य करने वाले वे उच्च नियम और जीवन शक्तियां हमें सहायता देने के लिए सदा तैयार रहती हैं। हम बाहर की शक्तियों पर निर्भर न रह कर आत्मिक चैतन्यता के सहारे अपने मन को चलाने का अभ्यास करें। प्रारम्भ में यह कार्य कठिन मालूम होता है किन्तु जब हम अपने स्वरूप को पहचान लेते हैं, शरीर की गुलामी से छूट जाते हैं, इन्द्रियों को अपने इच्छानुकूल चलाने की क्षमता हममें आजाती है, तब हम स्पष्ट तौर से इन शक्तियों को पहचानने लग जाते हैं—अपनी इच्छानुसार उसका आवाहन कर सकते हैं।

फ़र्ज करो कि कोई चीज़ आपको सताती है, आपकी शान्ति को भंग करती है जिसके कारण आप व्यग्र हो उठते हैं, ऐसा क्यों है ? इसलिए न कि आप उस चीज़ को अपने ऊपर प्रभाव डालने देते हैं और अपने संयम को उसके हवाले कर देते हैं। यदि आप अपनी इन्द्रियों के दरवाज़े बन्द कर लें और सब पर्दे गिरादें तो वाह्य जगत के अशांत करने वाले कारण आपको चोट नहीं पहुंचा सकेंगे और उनकी तरंगें टक्कर मार कर पीछे हट जायेंगी। सदा कमज़ोर ही बलवान से मार खाता है; क्रिया प्रतिक्रिया बराबर चलती रहती है; आप अपने आपको स्वामी बनाइये और संयम की ढाल पहन लीजिए, जिसके द्वारा बाहर के आक्रमणों का आसानी से सामना किया जा सके।

इर्द-गिर्द की घटनाओं से बिल्कुल प्रभावित न होना, उनका असर अपने ऊपर न आने देना, यह आपके अपने मन के रुख पर निर्भर करता है। हमें पहले अपना केन्द्र अथवा गढ़ तलाश कर लेना चाहिए जिसमें बैठ कर हम बाहर के शत्रुओं का मुक़ा-बला कर सकें। जब तक हम अपने अन्दर एक दृढ़ शांति-केन्द्र स्थापित न कर लेंगे तब तक हमें इधर उधर भटकना ही पड़ेगा और छोटे से छोटा अशांति का कारण हमारा संतुलन बिगाड़ देगा। वह जो इर्द गिर्द के झोंकों, लहरों और तूफ़ानों से ढकेला जा सकता है, जिसे छोटे छोटे धक्के इधर से उधर और उधर से इधर कर सकते हैं, जो अवस्थाओं के असर में शीघ्र आ सकता है, उसकी दशा दयनीय हो जाती है। हमें हिमालय की तरह अचल रहना सीखना चाहिए, तभी हम प्रकृति को अपना दास बना सकते हैं।

यदि हम से कोई पूछे कि अन्दर गढ़ की स्थापना कैसे की जाती है और हम किस प्रकार अपना केन्द्र निश्चित कर सकते

हैं तो इस प्रश्न के उत्तर में हमारा निवेदन यह है कि जिस व्यक्ति ने अपने स्वरूप को पहचान कर अनन्त के साथ एकता स्थापित कर ली है, जिसने आत्मा की आवाज़ को सुनना सीख लिया है, जो ईश्वरीय दरवाज़ा खट खटाना जानता है और जिसे अपनी आत्मिक शक्ति पर पूरा विश्वास है, वही मनुष्य अपना संतुलन रख सकता है और उसी के सामने उसका केन्द्र-स्थान स्पष्ट होता है। लेकिन यदि आप अपने अन्दर दृढ़ इच्छा शक्ति नहीं रखते और आपको कोई भी डरा, धमका और बहका सकता है तो फिर आप की दशा उस पत्थर की सी हो जाती है, जो इधर से उधर मारा मारा फिरता है और सब की ठोकरें खाता है। अंग्रेजी में एक कहावत है—'The rolling stone gathers no moss" अर्थात् लुढ़कने वाला पत्थर बेपेंदी के लोटे की तरह कोई समर्थ कार्य-सिद्धि नहीं हो सकता। आप में कम से कम इतना तो अवश्य आ जाना चाहिए कि आप अपनी भूल को पहचान लें और बाह्य कारणों को गालियां देना छोड़ दें, जिससे कम से कम आप के उत्थान की सम्भावना हो सके।

यदि आपके घर की खिड़कियों के शीशे मैले और गन्दे हैं और उन पर मिट्टी पड़ी हुई है तो आपको बाहर के पदार्थ साफ़ कैसे दिखाई दे सकते हैं। आप अपनी खिड़कियों को तो साफ़ नहीं करते, उन पर जमे हुये मैल को हटाते नहीं और बुरा भला कहते हैं बाहर के पदार्थों को—यह कहाँ तक युक्ति संगत है जिस रंग का चश्मा मनुष्य अपनी आँखों पर पहन लेता है, बाहर के पदार्थ उसे उसी रंग के दिखाई देने लगते हैं। जिसके अन्दर गाली-गलौज नहीं है, वह कभी अपशब्द नहीं कह सकता। हमारे अन्दर कारणरूप चीज़ मौजूद हो, तभी

उसका कार्य रूप बाहर दिखलाई देता है। आप का पड़ोसी अपनी खिड़कियों को साफ़ सुथरा रखता है, सूर्य की किरणें उन साफ़ सुथरे शीशों द्वारा उसके कमरे को प्रकाशित करती हैं, वह व्यक्ति आपसे भिन्न संसार में रहता है। उसका दृष्टिकोण भी आप से भिन्न हो जाता है। इसलिए जब आप उसके साथ बात करते हैं तो आप उसमें और अपने में बड़ा भेद देख कर विस्मित हो जाते हैं। यह सब भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों के कारण होता है। सबसे अच्छा ढंग संसार को स्वर्ग बनाने का यह है कि हम अपने यहाँ का कचरा साफ़ करें, अपनी खिड़कियों को धो डालें, चारों ओर नीरोग वातावरण बनावें, तब हम देखेंगे कि बाहर के पदार्थ हमें कैसा दैवी सन्देश देने लगते हैं। यह सब कुछ हमारे अपने ही पुरुषार्थ पर निर्भर करता है।

हम भय के विषय में पहले वहुत कुछ लिख चुके हैं। भय और चिन्ता हमारे दोनों शत्रु हैं। ये हमारे अन्दर सन्देह और शंका की सृष्टि करते हैं; जिनके कारण हमारा जीवन कंटकाकीर्ण बन जाता है। जो मनुष्य सन्देह का शिकार बन जाता है, उसकी दृष्टि में सब चीज़ें विकृत रूप धारण कर लेती हैं। शंका हमारा द्रोही है, जो हमें दुनियां की अच्छी वस्तुओं को ग्रहण करने से वंचित करता है। न जाने कैसी कैसी उपयोगी चीज़ें हमारे सामने से निकल जाती हैं, जिन्हें हम सन्देह के वातावरण में डूबे रहने के कारण देखते भी नहीं। जिन वस्तुओं को हम थोड़े से परिश्रम से हासिल कर सकते हैं, उन्हें हम संदेह के वशीभूत होने के कारण छूने से घबड़ाते हैं। साहसी पुरुष ही, संसार की बरकतों को ग्रहण कर सकता है। जो साहसहीन होकर भय के वशीभूत हो जाता है, वह मन की कल्पनाओं द्वारा बड़ी बड़ी ख़ौफ़नाक दीवारें अपने मार्ग में खड़ी कर लेता

है। अपने जीवन-संग्राम में हमें भयंकर बाधाओं से लड़ना तो पड़ता ही है किन्तु यदि हम ग़ौर से सोचकर देखें तो बहुत-सी रातें हमने केवल उन्हीं फर्जी भूतों के कारण घड़ियां गिन-गिन कर बितायी हैं, जो केवल बाद में हमारे ख्याली घोड़े ही सिद्ध हुए। बहुत सी मातायें अपने बच्चों के प्रेम में ऐसी तल्लीन हो जाती हैं कि उनके ज़रासा घर में देर से आने के कारण बैठी बैठी मनगढ़न्त ख़तरों में उलझी रहती हैं और इस प्रकार अपनी तन्दुरुस्ती को बिगाड़ लेती हैं। भय हमारा महान-शत्रु है।

यह भय तथा इसका साथी अविश्वास साथ ही साथ चलते हैं। अविश्वास भय के कारण से होता है। आप मुझे यह बतलाइये कि आप किसी मनुष्य से कितने डरते हैं और मैं उसी के अनुसार आप में अविश्वास की मात्रा बता दूँगा। डर बड़ा ख़र्चीला पाहुना है। ऐसी ही उसकी बहन चिन्ता भी है। वे दोनों इतने अधिक ख़र्चीले अतिथि हैं कि कोई भी गृहस्थ अपने यहां उनका स्वागत नहीं कर सकता। जिस प्रकार के प्रभाव और अवस्थाएँ हम चाहते हैं, उन्हीं के अनुसार हम भय को निमंत्रण देते हैं। डर से प्रभावित मन वैसे ही ख़तरे को अपने लिए खड़ा कर लेता है—वह उसी प्रकार के ख़तरों से भरी हुई वस्तुओं के लिए दरवाज़ा खोल देता है, जिन के कारण वैसी ही चीजें सजीव प्रगट हो जाती हैं।

एक दिन एक विचित्र घटना घटी। महामारी प्लेग स्त्री का रूप धारण किये बग़दाद की ओर जा रही थी। उसको कोई भलामानस रास्ते में पूछ बैठा—"प्लेग रानी कहाँ जा रही हो"? प्लेग ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"मैं बग़दाद में ५ हज़ार आदमियों को मारने जा रही हूँ"। कुछ दिनों के बाद बग़दाद

नगर में प्लेग से पचास हज़ार आदमी मरने के कारण हाहाकार मच गया। जब महामारी प्लेग उसी मार्ग से फिर लौटी तो वह व्यक्ति अपने घर के चबूतरे पर बैठा हुआ था। उसने ज़रा गुस्सा होकर प्लेग को कहा—'तुम तो कहती थीं कि मैं ५ हजार स्त्री-पुरुषों को मारने के लिए बग़दाद जा रही हूँ, मगर तुमने वहाँ पचास हज़ार मार दिये"! इस पर महामारी प्लेग खिल खिला कर हंस पड़ी और बोली—"भाई, मैं तो ५ हज़ार को ही मारने को गई थी, किन्तु क्या करूँ, पैंतालीस हजार मेरा आना सुन कर डर के मारे ही मर गये"!

यह है डर की करतूत जो स्त्री-पुरुषों के अन्दर विचित्र ढंग से ज़हर पैदा करता है और उनके जीवन रस को सुखा देता है। डर शरीर के प्रत्येक पट्ठे को निकम्मा कर देता है। डर, रक्त प्रवाह पर गहरा प्रभाव डालता है और उसी प्रकार जीवनप्रद नस समूह को हानि पहुंचाता है। बहुत से आदमी जब किसी चोर को देख लेते हैं अथवा शेर उनके सामने आजाता है तो डर के मारे कांपने लगते हैं; उनके शरीर की गति बन्द हो जाती है और वे लकड़ी के लट्ठे की तरह खड़े के खड़े रह जाते हैं। इस प्रकार न केवल हम डरावनी वस्तुओं को ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं, बल्कि दूसरे लोगों के लिए भी भयावह वातावरण बना देते हैं। यह कार्य हम अपने विचार की ताकत के अनुसार करते हैं और उस हद तक हमें सफलता मिलती है, जिस दर्जे तक हमारे शरीर की बनावट सूक्ष्म प्रभाव को पकड़ने की शक्ति रखती है। भले ही दोनों ओर की क्रियाएँ अज्ञानवश हो जाएँ और हमें उन का पता भी न लगे।

यह देखा जाता है कि बड़े आदमियों की अपेक्षा छोटे बच्चे

बड़ी आसानी से इर्द-गिर्द के हालत से प्रभावित हो जाते हैं, क्योंकि इनकी अवस्था कोरे काग़ज़ की तरह होती है जिस पर आसानी से लिखा जा सकता है। कुछ तो फ़ोटोग्राफ़ी के इन प्लेटों की तरह होते हैं, जिनपर सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रियाएँ भी असर डाल देती हैं, जिनसे इर्द-गिर्द के प्रभावों का पता लग सकता है। वही असर बड़े होने पर उसका स्वभाव बनजाता है। जिनकी संरक्षता में बच्चों को संभाला जाता है, कैसी गम्भीर ज़िम्मेदारी है उनके कंधों पर और विशेषकर माता का उत्तरदायित्व तो इस समय तक बहुत ही महत्व पूर्ण है, जब तक कि वह बच्चे को गर्भ में रखती है। यह वह नाज़ुक समय, जब छोटी से छोटी तरंग, सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोविकार तथा आवेश गर्भ के बच्चे पर असर किये बिना नहीं रहते। माता पिता को अपनी छोटी या बड़ी उम्र के बच्चों की शिक्षा में बहुत सावधान रहना चाहिए, ख़ास कर डर के सम्बन्ध में तो बड़े ही होशियार रहें और कभी भूलकर भी ऐसी कहानी, ऐसा चित्र अथवा भयोत्पादक भर्त्सनात्मक शब्द न कहें, जो उनकी संतान के हृदय में भय का भूत खड़ा करदे। वे बहुत बार अनजाने ही ऐसा कर बैठते हैं। वे अपनी समझ में बच्चे की बहुत अधिक सम्हाल रखते हैं किन्तु होता उसके विपरीत है।

मैं बहुत से ऐसे बालकों के विषय में जानता हूँ जिनके दिलों में भिन्न भिन्न अवस्थाओं के विषय में डर का भूत मौजूद रहता है, परिणाम स्वरूप भय दिलाने वाले पदार्थ उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं, जो शायद किसी अवस्था में भी उन तक न पहुंचते। बहुत बार तो इन पदार्थों से डरने का कोई कारण विशेष भी नहीं होता। फ़र्ज़ करो, इसके लिए कोई कारण विशेष

हो भी जाय तो सदा इसकी विरोधी भावनाओं को हृदय में स्थान देना चाहिए, जिससे उसका बुरा प्रभाव नष्ट हो जाय—साथ ही बच्चे में सत्य ज्ञान और शक्ति का संचार हो सके। जिससे वह भयावनी परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए तैयार हो जाय—वे तब उनसे डरने की अपेक्षा उन्हें डाटने लगेंगे।

दो तीन दिन हुए एक मित्र इसी किस्म की बात के सम्बन्ध में अपना अनुभव बतला रहे थे। एक समय जब वे अपने अन्दर की बुरी आदत के साथ भीषण युद्ध कर रहे थे, वे उस समय अपनी माता और प्रेमिका की ओर से भी चिन्तित थे। उसकी सगाई शीघ्र होने वाली थी, जिसके कारण उसे शीघ्र उस बुरी आदत पर विजय प्राप्त करनी थी। विजय प्राप्त करने की बजाय उसने अपने आपको उस बुरी आदत के सामने बिल्कुल शक्ति हीन पाया। जो माता उसे प्राणों से प्यारा समझती थी, जिस प्रिया के दिल में उसके लिए प्रेम उमड़ रहा था और जो हर तरह उसकी सहायता करने के लिए उद्यत थी, उन्हें उसके इस युद्ध के विषय में कुछ भी मालूम न था, इस कारण वे उसकी कुछ भी मदद न कर सकीं। उसके विपरित उसके अन्दर उनसे बैठा हुआ डर उसके लिए शत्रु सिद्ध हुआ, जिसने उसकी विरोधात्मक ताकतों को घुन लगा दिया और वह अपनी बुरी आदतों को न छोड़ सका।

जो मनुष्य कंजूस होता है, जिसमें पैसे को जमा करने की आदत होती है और जो मक्खी-चूसों की तरह जीवन व्यतीत करता है, वह भी व्याधियों का शिकार बन जाता है। उसमें भी भय और चिन्ता अपना घर बना लेती हैं और उसके जीवन को नरक बना देती हैं। वह अपने पैसे को देखता भर ही है,

चौकीदार की तरह उसकी रक्षा करता है, किन्तु उसके अन्दर नाना प्रकार की दारुण दुःख देने वाली लहरें चलती रहती हैं, जो उसके जीवन को जंग लगा देती हैं।

किसी वस्तु के खो जाने से अथवा किसी प्यारे की मृत्यु से जो शोक होता है, वह भी मनुष्य का बड़ा बैरी है। उसके कारण भी जीवन प्रद शक्तियां छिन्न भिन्न हो जाती हैं। उसके अन्दर का जीवन रस सूख जाता है और सारे शरीर को दीमक की तरह शोक के कीड़े चाट जाते हैं। इस कारण कभी भी अपने निकट रंज को नहीं आने देना चाहिए। यह तरुणाई को शीघ्र समाप्त कर मनुष्य में बुढ़ापा ला देता है।

क्रोध, ईर्षा, द्वेष, छिद्रानुवेषण, सदा कामेन्द्रिय सुख की इच्छा—इन सब का अपना अपना अलग जहरीला असर होता है और नानाप्रकार के रोगों को ये बुराइयां जन्म देती हैं और शरीर को जर्जरित कर देती हैं।

हमें यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिए कि जीवन की पवित्रता न केवल शान्ति और वैभव लाती हैं, बल्कि शारीरिक आरोग्यता और बल को भी बढ़ाती है, इसलिए हमें श्रेष्ठतर नियमों के अनुकूल अपनी जीवनचर्या बनानी चाहिए। यहूदी पैग़म्बर ने बहुत ही ठीक कहा है—"जिस प्रकार पवित्र जीवन-शक्तियों में गति भरता है, उसी प्रकार जो मनुष्य बुराई के पीछे दिवाना है, वह अपनी मृत्यु को स्वयं आकर्षित करता है। यदि मृत्यु से अमरत्व की ओर जाना है, यदि असत से सत की ओर बढ़ना है, यदि अन्धेरे से प्रकाश की ओर पग बढ़ाने की इच्छा है तो जीवन को पवित्र बनाने का व्रत लीजिए। ऐसा जीवन रखने वाला मनुष्य समय आने पर देखेगा कि उसे प्रभु ने कैसी कैसी बरकतें दी हैं। यह मनुष्य के अपने हाथ

में हैं कि यदि वह सुन्दर सुसज्जित महल में रहना चाहता है, यदि उसकी इच्छा सुख शान्ति लाभ करने की है, यदि वह अपने शानदार कमरे में बैठकर सच्चा आनन्द लाभ करना चाहता है तो उसे अपने जीवन को श्रेष्ठतम बनाना चाहिए। ऐसी पवित्र आत्मा का पग सदा उत्कर्ष की ओर जायेगा और यदि उसने विषय भोग की ओर मुंह किया, इन्द्रियों का गुलाम बना तो उसकी शरीर रूपी झोंपड़ी सड़ गल जायेगी और बदबू दार होकर कीड़ों का भोजन बनेगी।

हजारों मनुष्यों के शरीर उनके अपने दुर्गुणों के कारण भीषण व्याधियों के शिकार बनते हैं और समय से पहले वे मृत्यु के गाल में चले जाते हैं। कोई उनकी दुर्दशा पर आँसू नहीं बहाता। जिन घरों को वे सुन्दर परिष्कृत बना सकते थे, उनके वे घर बर्बाद हो जाते हैं और पांच भूतों में मिल कर सदा के लिए खतम हो जाते हैं।

हमने बड़े बड़े विद्वानों के मुख से यह बात सुनी है, जो सप्रमाण उसे सिद्ध कर सकते हैं कि यदि मनुष्य प्रकृति के नियमानुसार अपनी जीवनचर्या बनावे और सदाचारी होकर रहे तो उसकी आयु एक सौ बीस वर्ष तक चल सकती है। विकास सिद्धान्त के अनुसार पशुओं के शरीर की बनावट का अध्ययन करने तथा उसकी तुलना मनुष्य शरीर की वृद्धि के रहस्यों को समझने से यह बात सप्रमाण सिद्ध की जा सकती है कि साधारण मनुष्य भी दीर्घ जीवी रह सकता है, यदि वह प्रकृति के नियमों के अनुकूल अपनी चाल ढाल रखे और खाने पीने के नियमों में संयम को बरते।

यहाँ पर हमारी स्मृति में एक ऐसी स्त्री की बात याद आती है, जिसकी अवस्था अस्सी वर्ष की थी, किन्तु उसका एक दाँत

भी नहीं गिरा था और न उसके बाल सफ़ेद ही हुए थे। वह नवयुवतियों की तरह चलती थी और उसके चेहरे पर झूरियों का नाम नहीं था। वह पच्चीस वर्ष की सी तरुणी मालूम होती थी। उसके जीवन का मुख्य सिद्धान्त था कि वह कभी भी दूसरों में अवगुण तलाश नहीं करती थी, बल्कि गुण ग्राहक बन कर हंस की तरह सद्गुणों का सञ्चय करती थी। इस कारण उसकी दृष्टि में कोई बुरा आदमी नहीं था। उसकी आवाज़ में माधुर्य भरा हुआ था, जिसे सुनते ही लोग उसकी ओर आकर्षित होते थे। उसकी भव्य मूर्ति जहाँ चली जाती थी, वहीं स्त्री-पुरुष उस पर मुग्ध हो जाते थे। उसने अपने अस्सी वर्ष के जीवन में लाखों मनुष्यों तक आशा, बल, तेज और प्रसन्नता का सन्देश पहुंचाया और अब भी वह एक युवा स्त्री की तरह अपने पड़ौसियों के हृदयों में आह्लाद उत्पन्न करती थी। उसे देख कर सब लोग शिक्षा ग्रहण करते थे। उसके मन में कभी भी किसी के विरुद्ध ईर्षा द्वेष की भावना जागृत नहीं हुई और न किसी कमीने विचार ने उसके मस्तिष्क में स्थान पाया। सबके भले में अपना भला मानती हुई वह रमणी सब का हृदय पुलकित करती थी। न कोई उसे चिन्ता और न कोई उसे भय ही था न वह किसी की निन्दा करती थी, न चुगली ही खाती—उसके जीवन का लक्ष्य यही था कि उसके शरीर से किसी का उपकार हो सके। इन्हीं सात्विक गुणों ने उसके अन्दर दिव्य प्रकाश की ज्योति को जगमगा दिया। इसी कारण उसके शरीर में किसी प्रकार की व्याधि प्रवेश न कर सकी—ऐसी व्याधियाँ जो लोगों को बुढ़ापे में घेरती हैं और जिनके कारण वे जवानी में ही बूढ़े हो जाते हैं। ये सब ईश्वरीय अनादि नियमों के वरदान हैं। उसका जीवन सब प्रकार के अनुभवों से भरा हुआ रहता है,

इसलिए अच्छे गुण बड़ी आसानी से उसमें प्रवेश करते हैं और दुर्गुण कभी भी उसके अन्दर घुस नहीं सकते।

महाकवि शेक्सपीयर ने जिस समय यह बात कही थी— "मन ही शरीर को सर्वगुण सम्पन्न बनाता है", तब शायद उसको पता नहीं था कि उसने कैसी सच्ची बात कह दी थी। संस्कृत के एक विद्वान ने ऐसी ही एक बड़े पते की बात कही है—"मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयोः"—मन ही मनुष्यों की पराधीनता और स्वाधीनता का कारण है। जब हम अपनी इन्द्रियों के वशीभूत होकर उनके गुलाम बन जाते हैं, तभी हमारा जीवन दुःखदायी हो जाता है और जब हम संयम के साथ इन्द्रियों पर काबू पा लेते हैं, तभी हम स्वाधीन होकर सच्चा सुख लाभ करते हैं। परवशता ही दुःख की जननी है और आत्मवशी पुरुष ही स्वाधीनता का सुख भोगता है। जो स्त्री-पुरुष प्रारंभ से ही अपने मनोविकारों को काबू कर लेते हैं उन्हें बुढ़ापा कभी नहीं सताता और वे अस्सी वर्ष की उम्र में भी नौजवानों की तरह हँसते खेलते और व्यायाम करते हैं। उनकी रजत-हंसी, उनके मजेदार ठहाके सुनने वालों का हृदय पुलकित करते हैं और उनकी उपस्थिति सूर्य की किरणों की तरह प्रकाश देती है, ऐसे मनुष्यों के इर्द गिर्द रहने वाले मज़दूर किसान उनके पड़ौस का स्वर्गीय सुख प्राप्त करते हैं और जब भी कभी उन पर कोई कठिनाई आ पड़ती है तो वे उन्हीं के पास दौड़े हुए जाते हैं और आश्रय पाते हैं। किसी भी समाज में ऐसे नरनारी उस समाज का मुख उज्वल करती हैं और ऐसी ही आत्माएँ नरक को स्वर्ग बना देती हैं।

मन के सम्बन्ध में आज इतना विस्तृत ज्ञान, मनोविज्ञान

के पंडितों को प्राप्त हुआ है कि वे यह दावे के साथ कहने लगे हैं कि मन ही सचमुच हमारी प्रारब्ध का निर्माता है। जिसने मन को जीत लिया, उसके लिए कोई चीज़ असंभव नहीं। लाखों स्त्री-पुरुष आज डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों के दरवाज़े खट खटाते फिरते हैं और अपनी गाढ़ी कमाई उन्हें देकर आरोग्यता लाभ करने के इच्छुक रहते हैं, किन्तु वे अभागे यह नहीं जानते कि सब बीमारियों की जड़ बीमार मन ही है। वे यदि अपने मन को नीरोग बनालें तो उनकी सब बीमारियां धुन्ध की तरह काफ़ूर हो जांय।

अतएव आज मनोविज्ञान के सम्बन्ध में सब प्रकार की वाकफ़ियत प्रजा में फैलानी चाहिए और लोगों को यह समझाना चाहिए कि उनके दुःखों का हल उनकी मुट्ठी में है। मिथ्याभिमान हमें कैसे कैसे नाच नचाता है, झूठी ख्याति की चाह हममें कैसा डाह, कैसी ईर्षा उत्पन्न करती है। धन, यौवन, सम्पत्ति और प्रभुता का मद हमारे लिए कैसे कैसे कांटे बोता है और हमारी रातें कैसी पीड़ा से कटती हैं। यदि हम अपने अन्दर विनय, क्षमा, शील और प्रेम को भर लें तो हमारी समस्याऐं कैसी सहल हो जांय और हमारे जीवन में कैसा मिठास आजाय। अफ़सोस! इस अभागे मनुष्य ने कभी भी अपनी भूलों पर गहरी दृष्टि डालना नहीं सीखा और यह सदा छिद्रानुवेषी बन कर अपने लिए काँटे बोता है।

जो लोग ईश्वर पर श्रद्धा रख, उसके साथ एकता स्थापित कर, प्रकृति के स्वामी बन कर अपने जीवन को चलाते हैं, उनकी ओर जगत की बरकतें आप ही आप भागी चली आती हैं। जो लोग विषयों के गुलाम बन कर इन्द्रिय सुखों में फंसे रहते हैं, जिन्हें ईश्वर की दया पर विश्वास नहीं और शरीर को

आत्मा समझ कर इसकी गुलामी करते हैं, उनके लिए यह संसार नरकसम हो जाता है और वे जीवन की घड़ियां गिन गिन कर पूरी करते हैं।

क्या आप अपने जीवन में सदा तरुण रहना चाहते हैं? क्या आप की इच्छा सत्य, शिव और सुन्दर के दर्शन करने की है? क्या आप चाहते हैं कि हमारी आनन्द की घड़ियां सदा बनी रहें और आरोग्यता का नशा कभी न उतरे? तब एक मुख्य बात का ध्यान रखिए और वह बात यह है—"आप किस प्रकार की विचार-दुनियां में रहते हैं"? यही बात आपके जीवन का निश्चय करती है। आत्मिक स्फूर्ति से परिपूर्ण उस भगवान बुद्ध ने यह प्यारे शब्द कहे थे—"मन ही सब कुछ है। तुम जैसे विचार रखोगे, वैसे तुम बन जाओगे"। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक श्रीमान् 'जान रस्किन' महोदय ने भी इसी प्रकार के शब्द कहे हैं—"अपने मन को सुन्दर नीरोग विचारों का घोंसला बनाइये।" हम में से कोई यह बात नहीं जानता कि कैसे कैसे भव्य महलों की रचना हम अपने विचारों द्वारा कर सकते हैं, क्योंकि किसी ने भी हमें बालकपन में विचार शक्तियों की महत्ता के विषय में कुछ बतलाया नहीं—सब प्रकार की मुसीबतों का सामना करने वाली इस विचार शक्ति के सम्बन्ध में हमें किसी ने कुछ भी शिक्षा नहीं दी। क्या आप अपनी जवानी के दिनों की फ़ुर्ती, सब प्रकार की शक्ति और सब प्रकार का सौन्दर्य कायम रखना चाहते हैं? तब आप को चाहिए कि कभी बुढ़ापे के विचार अपने मन में न आने दें। निराशा और मायूसी कभी आपके निकट ना फटके, डर और चिन्ता को आप दूर भगा दें। प्रकृति के इस सुन्दर उद्यान में राजकुमारों की तरह विचरिए, प्राकृतिक नियमों के अनुसार जीवन बना कर

आनन्द लेना सीखिए, तब आप देखेंगे कि जो कुछ भी सत्य, शिव और सुन्दर ब्रह्मांड में मौजूद है, वह आप की ओर आकर्षित होगा और आप उसकी ओर खिंचे चले जायेंगे। जितने दर्जे तक तरुण विचारों को आप अपने अन्दर स्थान देंगे, उतने दर्जे तक आप तरुणाई के वातावरण का लाभ ले सकेंगे। यह विचार आप के मन के सहायक बन कर उस में आरोग्यता की कणिकाओं को उत्पन्न करेंगे, जिससे आपके शरीर की नवीन रचना हो सकेगी।

जो लोग बहुत अधिक बनाव शृंगार में डूबे रहते हैं, जो शरीर को ही पालते पोसते हैं, जिनका ध्यान अधिकतर अपने शरीर की ओर ही रहता है, ऐसे लोग शरीर का विकास नहीं कर सकते। हजारों स्त्री-पुरुष भले-चंगे रहें, यदि वे शरीर के लाड़-प्यार में अपना समय अधिक न खोवें। देखा यह गया है कि जो शरीर के शृंगार का कम ख्याल रखते हैं, कर्तव्य परायण अधिक रहते हैं, जीवन को नियमपूर्वक चलाते हैं, उनके शरीर सदा नीरोग रहते हैं। बहुत से लोग जो तेल की मालिश में कई घण्टे खर्च करते हैं, जिनका बहुत सा समय अपने शरीर की चिन्ता में ही जाता है, वे प्रायः व्याधि ग्रस्त रहते हैं। आरोग्यता का नियम यह है कि शरीर को नीरोग रखने वाला भोजन इसे दिया जाय, नियम पूर्वक व्यायाम किया जाय। ताजी हवा खाई जाय, सूर्य-स्नान हो और शरीर शुद्ध रहे—बस इतना करने के बाद आप को निश्चय रखना चाहिए कि आपने अपने शरीर के प्रति अपना कर्तव्य पालन किया।

शरीर एक साधन है, साध्य नहीं। हमें इसके द्वारा अपने आदर्श की पूर्ति करनी है, इसलिए भगवान बुद्ध के मध्यम पथ के अनुसार न तो--"खाओ-पीओ और मौज करो" के असूल

पर चलिए और न उपवासों के द्वारा शरीर को सुखा डालिए, बल्कि इसे ऊपर लिखे अनुसार नीरोग रखिए, तब आप देखेंगे कि निर्मल विचारों की सहायता से आप में कार्य करने की कैसी अद्भुत क्षमता आती है। अपने विचारों और वार्तालाप में कभी विनाश कारी बातों की ओर ध्यान न दीजिए बल्कि रचनात्मक योजनाओं की चर्चा करिये--इस प्रकार की बातें जिन में निर्माण करने की शक्ति हो—क्योंकि हम संसार में रचनात्मक कार्य करने के लिए आये हैं, इसलिए हमें निर्माता बनना है। बीमारी, बुढ़ापा और अश्लील बातों का विचार करने से हम अपने शरीर में संघार कारी कीटाणुओं का संग्रह करते हैं, जो थोड़ी सी खाद पाकर हमारे अन्दर रोग उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार की बातचीत न केवल हमें ही हानि पहुंचाती है, बल्कि दूसरे लोगों को भी बुराई की ओर ले जाती है। हमें संसार को अच्छा बनाना है, समाज में श्रेष्ठतर विचार उत्पन्न करने हैं, हम आये हैं निर्माण करने के लिए, अतएव हमें अपने आदर्श को ओझल न कर सदा उसके अनुकूल साधन पैदा करने चाहिए।

बुरी चीजों का चिन्तन विनाश कारी भावना पैदा करता है। इस सम्बन्ध में हम एक ऐसे विद्वान् का उद्धरण नीचे लिखते हैं, जिसने अपने सारे जीवन में उसी प्रकार की खोज की है, जिसने अध्ययन और निरीक्षण द्वारा आंतरिक शक्तियों के मूल्य को समझा और जिसकी सम्मति हमारे लिए बहुमूल्य और उपयोगी है—"हम कभी भी बीमार ख़्यालात सोचने से आरोग्यता लाभ नहीं कर सकते। जैसे अपूर्णता का ध्यान करने वाला पूर्णता को नहीं पा सकता, इसी प्रकार गंदे विचार रखने वाला चरित्रवान् नहीं बन सकता। हमें अपने मन के सामने तन्दुरुस्ती और संतुलन का ऊँचा आदर्श रखना चाहिए।"

इसलिये हमारा यह कर्तव्य है कि हम बच्चों को बचपन से ही बीमारी के विरुद्ध भावनाएँ सिखलावें और उनके तथा बीमारी के बीच एक दीवार खड़ी कर दें। यह कार्य सच्चरित्रता की गरिमा तथा त्याग और तपस्या के गुणों का बखान करने से हो सकता है। हमें उनके हृदय से मौत का भय निकाल देना चाहिए और बीमारी के सभी चित्रों, सभी मनोविकारों (क्रोध, ईर्षा, द्वेष, मैथुन की इच्छा आदि) को दूर भगा देना चाहिए, जिससे उनके अन्दर बुराई करने का प्रलोभन उत्पन्न ही न हो। हमें उन्हें यह सिखाना चाहिए कि खराब भोजन, गंदा पानी और विशैली हवा शरीर में ज़हरीला लहू उत्पन्न करती है, जिससे शरीर के नस-पट्ठे विषयुक्त हो जाते हैं। हमें उन्हें स्पष्ट तौर पर यह समझाना चाहिए कि शारीरिक व्यायाम फुटबाल, क्रिकेट, टेनिस, कबड्डी आदि खेल ही उनके लिए आवश्यक नहीं बल्कि उनके साथ साथ निर्मल विचारों और शुद्ध जीवन का होना भी निहायत जरूरी है। हमारे कालेजों के लड़के खेलों आदि में तो शौक से भगे जाते हैं, किन्तु इर्द गिर्द के सिनेमाओं गीतों, कहानियों और विचारों से बचने का तनिक भी उद्योग नहीं करते, बल्कि उल्टा उनमें सुख मानते हैं, तभी तो उनके शरीर जल्दी वीर्यहीन हो जाते हैं और उनके चहरे पर तेज नहीं रहता। हमें उनमें दृढ़ इच्छा शक्ति की आदत डालनी चाहिए, जिससे वे दुष्टों द्वारा आसानी से बहकाये न जा सकें और सब प्रकार के शत्रुओं के विरुद्ध मोर्चा ले सकें। हमें बीमारों के अन्दर आशा और विश्वास का संचार करना चाहिए, जिससे वे कभी भी जीवन से निराश न हों। किसी मनुष्य की सफलता उसके विचार तथा विश्वास से आगे बढ़ नहीं सकती, इसलिए हमारा आदर्श सदा उच्च रहे और हम अपने विश्वास में हिमालय की तरह दृढ़ रहें।

आने वाले युग में डाक्टरों के धन्धे में अद्भुत क्रान्ति होगी। उनका विश्वास दवाईयों पर कम हो जायेगा और निर्मल विचारों की शक्ति में अधिक श्रद्धा होगी। वे अपने बीमारों के मन में आशा और शान्ति के विचार भरेंगे, उनको प्राकृतिक नियमों के अनुकूल रहना सिखलाएंगे, उन्हें ईश्वर की बरकतें बतलाएंगे और प्रभु के इस सुन्दर उद्यान में होने वाले फलों के गुणों का बखान करेंगे, जिससे बीमार बहुत शीघ्र तन्दुरुस्ती लाभ करेगा और थोड़े ही खर्च से उसका बीमारी से पिंड छूट जायेगा।

इसी प्रकार भावी माता अपने बच्चे को क्रोध की बुराइयों से अवगत करेगी। वह उसे ईर्षा, द्वेष के दुर्गुणों से परिचय करायेगी और भली प्रकार यह समझा देगी कि घृणा और द्वेष की अपेक्षा सब से प्रेम करने में ही प्रत्येक बच्चे का कल्याण है। वह उसे यह सिखलाएगी कि जो दूसरे की हानि करता है, वह पहले अपनी हानि कर लेता है। प्रत्येक प्रकार के अश्लील विचारों से वह अपने बच्चे की रक्षा करेगी और उसके कानों में पवित्र जीवन का संदेश सुनाएगी। वह भय, ईर्षा, द्वेष, चिन्ता, निंदा तथा शत्रुता आदि दुर्गुणों की बुराइयां अपनी संतान को भली प्रकार बतलाएगी। इन मनोविकारों से शरीर में जो व्याधियां उत्पन्न होती हैं तथा प्रकृति के नियमों को तोड़ने से बदन में जो गड़बड़ी पैदा हो जाती है उसकी सविस्तार हानियों की शिक्षा वह उनको देगी। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में बड़ी भारी क्रान्ति हो जायेगी और मनोविज्ञान में जो अद्भुत आविष्कार होंगे, उनका लाभ प्रारंभ से ही प्रजा को मिलने लगेगा, तब दुःखों की निवृत्ति आसानी से हो सकेगी और हम प्राकृतिक नियमों के अनुसार जीवन बनायेंगे। ईश्वर की सृष्टि में जो उच्च कारण काम कर रहे हैं वे हमारे साथ सहयोग करेंगे

और सब प्रकार की सात्विक वृत्तियां हमें अपना संदेश सुनाएगी।

अच्छा, अब हम इस अध्याय की मुख्य मुख्य बातों पर दृष्टि डालते हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के विषय में थोड़ा और समझाते हैं सबसे पहिले उस अनन्त प्रभु की आरोग्यता के रूप में जानने का अभ्यास हमें करना चाहिए और अपने हृदय पर खचित कर लेना उचित है कि ईश्वर के साथ एकता रखने वाला कभी बीमार नहीं होता। बीमारी के कारण हमारे अन्दर बीमारी की भावनाओं की वजह से उत्पन्न होते हैं। हमें प्राकृतिक नियमों के अनुकूल रहना सिखलाया नहीं गया और शीत, उष्ण से व्यर्थ में ही डरते रहते हैं। डर और चिन्ता हमारे बड़े भयकर शत्रु हैं, जिनके कारण असंख्य आत्माएँ समय से पहले ही देह छोड़ देती हैं। काम और क्रोध का आवेश सिर दर्द तथा लकवा आदि बीमारियों को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार आंखों में पीलिया, संग्रहणी तथा पागल पन आदि रोग भी ईर्षा द्वेष के कारण हो जाते हैं। जो मनुष्य जितने दर्जे तक प्रभु के साथ एकता स्थापित कर लेता है, जितने दर्जे तक ब्रह्मज्ञान की धारा को अपने अन्दर बहाता है, उतने दर्जे तक वह ईश्वरीय शक्तियों की ओर आकर्षित होता है और आकाश में फैली हुई ताकतें उसकी ओर आकर्षित होती हैं। "Like attracts like" अथवा समान तत्वों का आपस में आकर्षण, प्रकृति का अनादि नियम है और यह सर्वत्र एक सा काम करता है। यदि हम अपने अन्दर अश्लील विचार लाएँगे तो इर्द गिर्द की अश्लीलता हमारी ओर खिंची चली आएगी और सात्विक विचार अपने अन्दर धारण करने से हम सात्विकता की ओर आकर्षित होंगे।

जो व्यक्ति अपने अन्दर दृढ़ इच्छा शक्ति रख कर सत्य, शिव और सुन्दर संकल्पों को सोचता है उसे वैसे ही पदार्थ मिलने लग जाते हैं। विचार अमूर्त पदार्थ नहीं, बल्कि सजीव चैतन्य मूर्तिमान शक्तियां हैं जो क्रियाशील बन कर साकार पदार्थों को जन्म देती हैं, इसीलिए विचारों को कार्यों का जनक कहा जाता है।

काम और क्रोध तथा उनके साथियों के विषय में काफी कहा जाचुका है किन्तु लोभ मनुष्य में कैसी बीमारी उत्पन्न करता है, इसकी भी चर्चा कंजूस आदमी के विषय में कहते समय कर दी गयी है, पर मोह और अहंकार एक प्रकार से अछूते से रह गये हैं। मोह और प्रेम में दोनों पर्याय वाचक शब्द नहीं। प्रेम एक विशुद्ध निर्मल भावना का द्योतक है, जिसमें स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं। अंगरेजी में प्रेम के लिए love नामक शब्द है, इसलिए God is love अर्थात् ईश्वर प्रेम रूप है ऐसा भी कहा जाता है। यद्यपि आजकल प्रेम के बहुत गलत अर्थ ले लिए गये हैं और लोग विरह की भावना को प्रेम बतलाते हैं, किन्तु असल में वह मोह का एक रूप है। जिस स्त्री या पुरुष में मोह की भावना चैतन्य होती है, उसके अन्दर एकांगापन आ जाता है उसमें दूसरे का दृष्टिकोण देखने की योग्यता नहीं रह जाती और उसकी अपनी सहज बुद्धि उसकी सहायता नहीं करती। मोह एक प्रकार का ऐसा नशा है जो मनुष्य को अन्धा कर देता है और उसमें तर्क करने की शक्ति नहीं रहती। यह प्रेम का विकृत रूप है। प्रेम में उपकार और बलिदान की भावना निहित है, उसमें सेवा और त्याग के सद्गुण विद्यमान रहते हैं किन्तु मोह में निपट स्वार्थ रहता है। जिसके प्रति मोह किया जाता है, उसके कल्याण की भी परवाह नहीं की जाती। प्रेम में आत्मिक सम्बन्ध रहता है, किन्तु मोह में प्राकृतिक सम्बन्ध की पराकाष्ठा होतो है।

प्रेम आत्मा को आनन्द पहुंचाता है, मोह इन्द्रियों को सुख देने वाला है।

जब हम किसी के मोह में वशीभूत हो जाते हैं तो अपने आपको उसके प्रति आत्म समर्पण कर देते हैं। परिणाम होता है कि हम सब प्रकार की बीमारियों के आक्रमणों का कारण बन जाते हैं। जिस के साथ मोह हो, उससे पृथकता को विरह कहते हैं। मोह में चिन्ता और भय दोनों साथ साथ रहते हैं, इसलिए मोह मनुष्य का भयानक शत्रु है। लोगों को अपने कमरों से मोह हो जाता है। वे उसे छोड़ते हुये मानसिक निर्बलता अनुभव करते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें अपने कपड़ों तथा दूसरी काम में आने वाली जड़ चीज़ों से भी मोह हो जाता है। मोह एक प्रकार का माया जाल है। इसमें फँसा हुआ मनुष्य दुनियां की भूल भुलैयां में फंस जाता है। हम मोह के वश में होकर दीवानों की तरह भटकते फिरते हैं और अपनी खोई हुई चीज के न मिलने से तड़पते रहते हैं। प्रेम जहाँ मनुष्य में शीतलता उत्पन्न करता है, मोह उसके विपरीत अग्नि प्रज्वलित करता है। इस कारण मनुष्य को प्रेम की ओर आकर्षित होना चाहिए और मोह से सदा बचना उचित है।

अब आइये अहंकार की ओर। जितने मनुष्य घमण्डी होते हैं, जिनमें विनय की नितांत कमी होती है, जो उच्च पद पाकर फूल कर कुप्पा हो जाते हैं, जिनमें शारीरिक बल होने पर झूठा नशा हो जाता है, जो धन की शक्ति पाकर मदांध हो जाते हैं—इन सब चिन्हों को हम अहंकार के अन्दर सम्मिलत करते हैं। अहंकार मनुष्य का विकट शत्रु है। यह व्यक्ति को शैतान का अवतार बना देता है और हर प्रकार के अत्याचारों को करने पर उतारू करता है। अहंकारी मनुष्य अव्वल दर्जे का स्वार्थी

होता है। उसे अपने सिवाय कोई दूसरा दिखाई नहीं देता। उसकी इच्छा पूर्ति खुशामदी आदमी कर सकता है। अहंकारी को अपनी स्तुति, अपनी खुशामद मधुसम जान पड़ती है। जो कोई उसे उसके अवगुण बतलाता है, उसका वह घोर दुश्मन हो जाता है। तन-मन, धन-मद और राज-मद, यह अहंकारी के भूषण हैं। बल पाकर वह किसी को कुछ नहीं समझता, पद पाकर वह अत्याचारी हो जाता है और धन पाकर वह महा घमण्डी बन जाता है। "खुदी" अर्थात् "मैं" उसका प्यारा शब्द रहता है और वह सदा अपनी तारीफ़ के ही पुल बांधता है। ऐसे मनुष्य सदा खतरे में रहते हैं और थोड़ी सी भूल हो जाने पर धड़ाम से नीचे गिरे जाते हैं। उनमें सतुलन नहीं रहता, इस कारण वे डगमगाते रहते हैं और उनके मस्तिष्क में जहरीला मादा भरा रहता है, जिसके कारण उन्हें कभी शान्ति नहीं मिलती।

अतएव अहंकार से छूटने का एक मात्र मार्ग विनय को धारण करना है। जो खुदी से निकलना चाहता है, उसे चाहिए कि वह सेवा का व्रत ले। जो सेवा में रत रहता है, जो विनयी हो जाता है, अहंकार उसका पिंड छोड़ देता है। तब उस व्यक्ति का दृष्टिकोण सर्वांग पूर्ण होने लगता है और वह अंधेरे से प्रकाश में जाने लगता है। उसकी आँखों का नशा उतर जाने के कारण, उसे वे चीजें दिखाई देने लगती हैं, जिन पर उसकी दृष्टि पहले टिकती नहीं थी। विद्वान का विनय भूषण है। जिसमें विनय नहीं उसका पांडित्य दो कौड़ी काम का नहीं। विनय के द्वारा ही मनुष्य इर्द-गिर्द मधुर वातावरण पैदा कर लेता है और लोग उसकी ओर खिंचे चले आते हैं। विनयी पुरुष के पास जादू की एक ऐसी छड़ी है, जिसकी सहायता से वह सब दरवाज़े खोल सकता है और कहीं कोई बाधा उसे दिखाई नहीं देती।

संक्षेप में जीवन में उत्कर्ष की ओर जाने के लिए तथा शरीर को नीरोगी बनाने के लिए, अहंकार का त्यागना अत्यावश्यक है। मानव इतिहास उन उदाहरणों से भरा हुआ है जो अहंकारी पुरुषों की दुर्गति की कथा सुनाते हैं। बड़े बड़े ऊँचे महलों के खंडरात उन खुदी में डूबे हुए मदांध लोगों के अपयश की कथा बतला रहे हैं। अहंकार के वशीभूत होकर बड़े बड़े आक्रमणकारियों ने नगरों के नगर जला दिये और मनुष्यों की खोपड़ियों के मीनार बनवा दिये, किन्तु काल ने जब उन्हें पछाड़ दिया तो संसार के सामने उनकी मूर्खता की कलई खुल गयी।

अंत में हम अपने पाठकों से यह निवेदन करते हैं कि आनन्द के स्रोत उस प्रभु में तल्लीन हो जाने से सब तमोगुणों की इतिश्री हो जाती है। हमें शीघ्रातिशीघ्र उस अनन्त शक्ति के साथ सम्बन्ध कर उसकी पवित्र धारा को अपने अन्दर बहा कर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार इन मनोविकारों को धो डालना चाहिए और अपनी शुद्ध विचार-शक्तियों के साथ जीवन का संचालन करना उचित है। जब हमारा मन, जब हमारी वाणी - जब हमारा कर्म—यह तीनों एक पंक्ति में आ जायंगे और इनका एक फोकस हो जायगा, तब हम आत्म तत्त्व के, तब हम मानव जीवन के, महान् तथ्य को समझ सकेंगे और तभी हमें पूर्ण आरोग्य लाभ होगा और सत्य ज्ञान की प्राप्ति का मार्ग मिलेगा। पूर्ण आरोग्यता लाभ करने का यही सीधा, सच्चा और सरल मार्ग है। जो लोग इस मार्ग को पकड़ते हैं, वही अनन्त पथ के पथिक बन जाते हैं। उस अनन्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए सब से पहले शारीरिक आरोग्यता की आवश्यकता है, इसीलिए—"शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्" की सूक्ति धर्माचारियों ने बतलाई है। अनन्त

ईश्वर के साथ एकता स्थापित करने के लिए, जीव के हाथ में शरीर ही एक साधन है। इसी कारण हमने अपने इस ग्रन्थ में आरोग्यता की विवेचना कर प्रचुर सामग्री मुमुक्षु जनों के हेतु जुटायी है और मनोविकारों के द्वारा किस प्रकार की भीषण व्यधियां मानव-देह में हो जाती हैं, इस की विस्तृत व्याख्या की है। आशा है हमारे पाठक इस अध्याय का पूरा लाभ उठाकर अगले अध्याय में प्रभु के प्रेम-सरोवर में डुबकियां लगाने के लिए तैयार हो जायेंगे।

"*The (real) treasure is that laid up through charity and piety, temperance and self-control. The treasure thus hid is secure, and passes not away. Though he leaves the fleeting riches of the world, this a man carries with him—a treasure that no wrong of others, and no thief, can steal.*"

भावार्थ—मानव की सबसे बड़ी निधि उसकी दयालुता, धर्म-निष्ठता, इन्द्रिय निग्रह और आत्मा-संयम है। ऐसी संग्रहीत-निधि सदा सुरक्षित रहती है और कभी भी मानव का साथ नहीं छोड़ती। वह भले ही इस संसार में इकट्ठे किये हुये पदार्थ, धन-दौलत और जायदाद को छोड़ दें, किन्तु वह निधि उसके साथ जाती है, दूसरे उसको हानि नहीं पहुँचा सकते और कोई चोर उसे चुरा नहीं सकता। धार्मिक पुरुष अपनी इसी स्थायी निधि को नये जन्म में साथ ले जाता है।

—निधिकांड सूक्त

पांचवां अध्याय

प्रेम का अद्भुत माधुर्य और उसकी चमत्कारिक शक्ति

वह अनन्त शक्ति आदर्श प्रेम की खान है। जिस क्षण हम इस प्रेम मयी शक्ति के साथ अपना एकता का सम्बन्ध जोड़ लेते हैं, तब हमें अपने इर्द गिर्द प्रेम के दर्शन होते हैं—कोई बुरी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती–हम सब में गुण ही गुण देखते हैं। जब हमें इस बात की अनुभूति हो जाती है कि हमारा इस प्रेम मयी शक्ति के साथ एकता का सम्बन्ध है, तब हम में से द्वेष की भावना निकल जाती है। जब यह सत्य तथ्य स्पष्ट हो जाता है। तब दूसरों को हानि पहुंचाने की भावना हमारे अन्दर से नष्ट हो जाती है। क्योंकि तब हम विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में देखने लग जाते हैं और भली प्रकार समझ लेते हैं कि बिना अपने को हानि पहुँचाए हम दूसरे का नुकसान नहीं कर सकते, क्योंकि हम सब एक ही कुटुम्ब के अंग हैं।

जब हम ब्रह्मांड में व्यापक एक जीवन धारा के तथ्य को पूर्ण तया जान लेते हैं अर्थात् हम सब एक ही स्रोत से जीवन शक्ति लेते हैं—एक जीवन धारा ही सब प्राणियों के अन्दर बहती है—इस बात को जान लेने के बाद हमारे सब प्रकार के पक्षपात मिट जाते हैं और हम में घृणा का कोई चिह्न बाकी नहीं रहता। तब हम में प्रेम की सर्वोपरि प्रभुता व्यापक हो जाती है। जहाँ कहीं हम जाते हैं और जिसके साथ हम जब कभी भी सम्पर्क में आते हैं, तब हम सब के भीतर उस प्रभु की शक्ति को

पाते हैं। उस समय हमें प्रत्येक स्थान पर अच्छी बातें ही देखने में आती हैं और हमारा दृष्टिकोण प्रेम रंजित हो जाता है।

उस सच्चाई की तह में विज्ञान का महान सिद्धांत काम कर रहा है—"वह जो तलवार के सहारे जीता है, उसकी मृत्यु तलवार के द्वारा ही होती है।" जिस क्षण में हम विचार-शक्तियों की सूक्ष्म ताक़तों को अनुभव करने लग जाते हैं, तब हम बहुत शीघ्र इस बात को देखने लगते हैं कि जिस क्षण में हम किसी दूसरे भाई, मनुष्य के प्रति घृणा के भाव अपने मन में भर लेते हैं, तब उस व्यक्ति के हृदय में भी हमारे राक्षसी भावों का असर पहुंच जाता है और उसके अन्तःकरण में उसी प्रकार की घृणा युक्त तरंगें पैदा होने लगती हैं, जो अन्त में उलट कर भेजने वाले के पास पहुंचती हैं। जब हम काम, क्रोध और घृणा के द्वारा शरीर पर होने वाले परिणामों को समझ जाते हैं, तब हमें उसके हानिकारक प्रभावों की असलियत मालूम हो जाती है। इन मनोविकारों के सभी सम्बन्धियों और सन्तति के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। अन्त में हमें यह पता लग जाता है कि राग, द्वेष, निन्दा और घृणा के भाव अपने हृदय में रखने से हम दूसरे की हानि बहुत कम करते हैं, किन्तु अपना नुक़सान बहुत ज्यादा कर लेते हैं।

अन्त में जब हमें यह बात विदित हो जाती है कि स्वार्थ ही सब पापों की जड़ है और इसी के द्वारा सब पाप होते हैं और अविद्या, स्वार्थ की जननी है, तब हममें दूसरों के बुरे भले कामों के सम्बन्ध में उदारता आजाती है। यह मूर्ख आदमी का ही काम है कि वह दूसरों को हानि पहुँचा कर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं, इसलिये यह बात सब को जान लेनी चाहिये कि बेवकूफ़ आदमी ही स्वार्थ का शिकार बनता है। सच्चा ज्ञानी

कभी भी स्वार्थ में नहीं डूबता। वह ऋषि बन जाता है और दीर्घ दर्शी होने के कारण उसे वह भली प्रकार मालूम हो जाता है कि विश्व के कुटम्ब का सदस्य होने के नाते सब के भले में ही उसका भला हो सकता है। समष्टी के भले में ही व्यक्ति का भला छिपा हुआ है। इसलिये वह ऐसी किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं करता, जिसे वह सब के लिये न चाहे।

यदि पाप, जुर्म और भूल के मूल में मनुष्य का स्वार्थ ही काम करता है और अविद्या सब प्रकार की बुराइयों की जननी है तो जब कभी भी हम किसी व्यक्ति में इन दुर्गुणों को देखें, तब यदि हम अपने अन्दर स्थित सर्वोत्कृष्ट भावों के पुजारी हैं, तब हम प्रत्येक व्यक्ति में श्रेष्ठ भावों की तलाश करेंगे। जब ऋषि, ऋषि के साथ बात करता है, तो अपनी अपनी योग्यता के अनुसार उनके अतिरिक्त भावों का प्रदर्शन होता है। इसी प्रकार जब शैतान की शैतान से भेंट होती है तो वे एक दूसरे के प्रति राक्षसी चालें चलते हैं।

मैं कभी कभी लोगों के मुख से यह भी सुनता हूं—"मैं अमुक पुरुष में कोई अच्छी बात नहीं देखता"—"क्या सचमुच ? तब आप ऋषि नहीं हैं"। जरा गहरे जाकर मानवीय प्रकृति का अध्ययन कीजिए, तब आप को प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर-तत्त्व दिखाई देगा। स्मरण रखिए कि जवाहरात को जौहरी ही जान सकता है और देवता को पहचानने के लिए स्वयं देवता बनना पड़ेगा। प्राचीन काल के ऋषि मुनि प्रत्येक स्त्री-पुरुष में ब्रह्म के रूप को देखते थे, क्योंकि उन्होंने स्वयं ब्रह्म को पहचाना था, इसलिए वे बड़ी आसानी से दूसरों में भी उसका दर्शन करते थे। समाज में विचरते हुए जब वे पापी और पतित स्त्री-पुरुषों को देखते तो उन्हें यही कहते—"तू शुद्ध है, तू बुद्ध है,

तू निरंजन है"। जैसा कि मंदालसा ने अपने शिशु को सिखलाया था। जंगलों में विचरने वाले ऐसे महापुरुष जब बस्ती में चले जाते तब स्वार्थी गृहस्थों के अपराधों को देखकर उनका हृदय दया से परिपूर्ण हो जाता और वे उनकी सोई हुई आत्मा को चैतन्य करने के लिये प्रेम और सहानुभूति के शब्दों में उनसे बातचीत करते और उनमें छिपी हुई ब्रह्म-शक्ति की ओर उनका ध्यान खींचते थे।

जितने दर्जे तक आप किसी व्यक्ति को पापी अथवा अपराधी समझते हैं, उसी दर्जे तक आप बातचीत के द्वारा उस में उन दुर्गुणों को जाग्रत करते हैं। वह भी अपनी शारीरिक बनावट के अनुसार आप के भावों, गुणों को ग्रहण करेगा। तेज़ बुद्धि-वाला पुरुष जल्दी से प्रभावित हो जाता है और जड़ बुद्धि के मन पर बहुत समय के बाद असर पड़ता है। इस प्रकार हम अनजान में ही उस व्यक्ति के हृदय में सुझाव द्वारा पापों का बीज बो देते हैं। इसी प्रकार जब हम किसी व्यक्ति को पवित्रता और सत्य भाषण की बातें समझाते हैं तो उसमें इन्हीं सद्गुणों की तरंगें लहराने लगती हैं। इस प्रकार हम उसके जीवन तथा आचार पर अत्यन्त लाभदायक असर डालते हैं। यदि हमारा हृदय, सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति का प्रेम की भावना द्वारा स्वागत् करता है, तब हम दूसरे में प्रेम का संचार करते हैं और उसकी प्रतिक्रिया के फल स्वरूप उसके अन्दर से भी प्रेम तरंगें उमड़-उमड़ कर हमारी ओर आने लगती हैं। एक वैज्ञानिक विद्वान् इस प्रकार घोषणा करता है—"यदि आप चाहते हैं कि सब लोग आप से प्रेम करें तो आप को सब से प्रेम करना चाहिए।" अतएव जिस दर्जे तक हम दूसरों से स्नेह करेंगे, उसी दर्जे तक हमें दूसरों का प्रेम भी मिलेगा। प्रत्येक

विचार अपना अनुरूप उत्पन्न करता है और दूसरों के ऐसे ही भावों से लदा हुआ आप को आकर मिलता है। आप को चाहिए कि आप अपने आन्तरिक विचारों को शुद्ध रक्खें, क्योंकि उनमें क्रिया शीलता की अद्भुत क्षमता है। वे प्रारब्ध के बनाने तथा भविष्य के निर्माण करने की शक्ति रखते हैं।

मैं एक ऐसे मित्र को जानता हूं, जो बराबर अपने मन के द्वारा प्रेम भरे भावों को संसार में भेजता रहता है। उसका यह ढंग व्यावहारिक है। वह अपने मन की भावना सदा ऐसी बना लेता है कि उस के द्वारा शुभ संकल्प दूर दूर भेजे जा सकते हैं। जब यह बात हमें भली प्रकार विदित हो चुकी है कि मन में उठा हुआ विचार अथवा जिह्वा से कहा हुआ शब्द अपना प्रभाव डाले विना लौटता नहीं तो हमें जान लेना चाहिए कि स्नेह के भावों से सना हुआ मन, जब प्रेम की तरंगे आकाश में उत्पन्न करता है तो उसके कैसे नीरोग नतीजे निकलते होंगे। ऐसे व्यक्ति को अपने उस प्रेममय मानसिक रुख के बदले में वैसे ही श्रेष्ठतम भाव आकाश के दूर-दूर भागों से प्राप्त होते हैं और इस प्रकार उसके सुन्दर विचारों की निधि दिनों दिन बढ़ती जाती है।

इसी प्रकार पशु भी इन शक्तियों के प्रभाव को अनुभव करते हैं। कुछ ऐसे पशु भी हैं जो भले बुरे भावों का प्रभाव जल्दी पकड़ लेते हैं और परिणाम स्वरूप वे हमारी विचार तरंगों, मानसिक कल्पनाओं और मनोविकारों के असर को आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। जब हम किसी स्थान पर किसी पशु के सम्पर्क में आते हैं तो हमें चाहिए कि हम अपने प्रेम मय भावों को उस की ओर चलता करें। वह हमारे हृदय के भावों को जल्दी समझ लेगा। यह भी एक बड़ी मारके की

बात है कि वह पशु बड़ी शीघ्रता से हमारे द्वारा प्रदर्शित बुरी-भली तरंगों को समझ लेता है और उन्हीं के अनुसार अपना व्यवहार बना लेता है।

वह संसार कैसा मनोहर है, कैसा दर्शनीय और कैसा सुन्दर होगा जिसमें देवता स्वरूप मनुष्यों की बस्ती होगी और जहाँ लेश मात्र भी बुराई देखने में न आयेगी। ऐसी दुनियाँ रहने के क़ाबिल होगी। ऐसी जगत् में मैं भी रहना चाहता हूँ, ऐसा राम राज्य जहाँ सब प्राणियों को हम आत्मवत् देखेंगे और सब मनुष्यों के प्रति हमारे में प्रेम भावनाएँ रहेंगी, जहाँ मनुष्य, मनुष्य को भाई समझेगा; जहाँ स्त्री जाति का हृदय से आदर होगा, ऐसा ही संसार रहने के काबिल हो सकेगा।

जब हम इस प्रकार प्रत्येक स्त्री-पुरुष में उस विश्वात्मा का दर्शन करेंगे, तब हम बड़ी आसानी से सात्विकता के वातावरण को उत्पन्न कर सकेंगे और किसी प्रकार की अशान्ति समाज में न रहेगी। अहा! ऐसा राम राज्य सचमुच रहने के योग्य होगा और तभी भूतल पर स्वर्ग की स्थापना हो सकेगी। ऐसे स्वर्ग में उस अजर, अमर और अविनाशी आत्मा के स्वरूप का हमें ज्ञान हो सकेगा, उसके विकास की सीढ़ियों को हम भली प्रकार समझ सकेंगे, उसकी शक्तियों का चमत्कार हमें मालूम हो जायेगा और हमें यह पता लगेगा कि ब्रह्मांड के किन साधनों द्वारा आत्मा के सद्गुणों का प्रस्फुटित होता है। तब हमें इन व्यवहार कुशल धूर्त लोगों की सम्मति की कुछ परवाह न होगी। हम व्यापार-युग के गोरख धन्धों से छूट जायेंगे और आत्मा के यथार्थ स्वरूप को पहचान कर अनन्त की ओर बढ़ सकेंगे। तब हम यह समझ जायेंगे कि जब हम किसी दूसरे

को फटकारते हैं अथवा धिक्कारते हैं तो हम अपने आपको पहले धिक्कार लेते हैं।

यह अनुभूति हमारे में प्रेम का ऐसा अद्भुत संचार करती है कि हम में उसकी तरंगे उछल उछल कर बाहर निकलने लगती हैं और उस की एकता के प्रभाव को ग्रहण किये बिना रह नहीं सकते। तब हमें चारों ओर से प्रेम संदेश मिलने लगते हैं और क्लेश के लिए कोई स्थान रह नहीं जाता। यदि अन्य मुझे यह बतला सकेंगे कि अमुक मनुष्य में प्रेम की इतनी मात्रा है तो मैं उसकी ईश्वरीय अनुभूति के विषय में ठीक-ठीक निर्णय कर सकूँगा। आप मुझे बतलाइये कि वह मनुष्य कितने दर्जे तक प्रेम द्वारा प्रभावित हुआ है, तो मैं आप को बतला सकूँगा कि उसने कहाँ तक ईश्वर के राज्य में प्रवेश किया है, क्योंकि प्रेममय हृदय में ही ईश्वर निवास करता है और इसी से ईश्वरीय आज्ञा पालन की सूचना मिलती है।

संक्षेप में प्रेम ही ईश्वर है। यही जीवन की कुंजी है। इसी के द्वारा संसार के हृदय को हिलाया जा सकता है और समाज में क्रान्ति की जा सकती है। प्रेम से सने हुए विचारों को मन में रखिए, तब आपको सब का प्रेम मिलेगा। जब भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व पद की प्राप्ति की और उन्हें ज्ञान हो गया, तब उनके हृदय में पापों में ग्रस्त संसार को मार्ग-प्रदर्शन कराने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने देखा कि स्वार्थ में डूबा हुआ संसार विनाश के गर्त में जा रहा है, इसे किस प्रकार बचाया जाय। उन्होंने अपने संघ की स्थापना कर पवित्र जीवन का प्रचार प्रारम्भ किया। देखते-देखते उनके अनुयायियों की संख्या हजारों तक पहुँच गयी। कोई श्रोता उनके प्रभाव से न बचा और उनका प्रेम से भरा हुआ हृदय दूसरों को चुम्बक की तरह

खींच लेता था। बुद्धि का चमत्कार हृदयों को नहीं हिला सकता, लेकिन हृदय स्थित प्रेम की अद्भुत शक्ति समाज में बाढ़ ला देती है, जिससे लाखों मनुष्य प्लावित हो जाते हैं। प्रेम की शक्ति की बलिहारी है।

कहते हैं कि शस्त्र के घाव मिल जाते हैं किन्तु शब्दों के घाव बड़ी कठिनाई से नीरोग होते हैं। हृदय में द्वेष रख कर आप किसी को अपना नहीं बना सकते। जहाँ क्रोध की अग्नि जलती है, जहाँ ईर्षा की भट्टी प्रज्वलित है, वहाँ बड़े गहरे घाव हो जाते हैं और चारों ओर उस भट्टी में जलने वालों के चीत्कार का शब्द सुनाई देता है। घृणा, घृणा से शान्त नहीं होती, प्रेम ही उसके लिए रामबाण का काम देता है। जिस मनुष्य के हृदय में प्रेम होता है, जो किसी के साथ द्वेष नहीं करता, उसका चेहरा तेज से चमकने लगता है। उसकी सौम्य मूर्ति और शान्त मुद्रा सब पर प्रभाव डालती है। शरीर के प्रत्येक अंग पर इस दैवी प्रेम का प्रभाव पड़ता है। उसकी आवाज़ बड़ी मधुर हो जाती है, आंखें ज्योति-पूर्ण हो जाती हैं और चेहरे पर एक अजीब आलोक आ जाता है। ऐसा मनुष्य न केवल अपने शरीर के सौंदर्य को बढ़ाता है, बल्कि उसका आत्मिक ख़ज़ाना भी रत्नों से भरने लगता है। उसके मुख से निकले हुए शब्द सब को प्यारे लगते हैं और लोग आप ही आप उसकी सेवा में जुट जाते हैं। प्रेममय भावों से ओत-प्रोत हृदय मनुष्य को बलशाली बना देता है और उसके इर्द-गिर्द रहने वाले लोग उसके हुकुम के बन्दे हो जाते हैं। ऐसे ही लोगों ने युग परिवर्तन किये हैं और मानव समाज को ऊँचा उठाया है। इस कारण घृणा से घृणा उत्पन्न होती है और प्रेम, प्रेम को जन्म देता है। प्रेम और शुभेच्छा की तरंगें शरीर

का बल बढ़ाती हैं और उसे सुडौल करने में सहायक होती हैं। इसके विपरीत घृणा और द्वेष शरीर के प्रत्येक अंक को जंग लगा देती है और इसे जर्जरित करने में सहायक बनती हैं। प्रेम जीवनप्रद शक्तियों को खाद देता है और घृणा मनुष्य के अन्दर मृत्यु-कीटाणुओं को जन्म देती है।

"There are loyal hearts,
There are spirits brave,
There are souls that are pure and true;
Then give to the world the best you have,
And the best will come back to you
Give love, and love to your heart will flow,
A strength in your utmost need;
Have faith, and a score of hearts will show,
Their faith in your word and deed."

अर्थात्— संसार में विश्वास-पात्र हृदयों का अभाव नहीं और वीर आत्माएँ भी उत्पन्न होती हैं, ऐसी आत्माएँ जो शुद्ध और सत्यनिष्ठ हैं, तब आपको चाहिए कि श्रेष्ठतम दत्तांश संसार को दीजिए और आपको सर्वश्रेष्ठ फल उसके बदले में प्राप्त होगा; ऐसा फल जो आपके अत्यावश्यक समय पर काम देगा। आप के हृदय में प्रेम का स्रोत उमड़ने लगेगा, जो आगे चल कर आपका बड़ा सहायक सिद्ध होगा। विश्वास रखिये, बहुत से लोग आपके प्रति प्रेम प्रगट करेंगे और वे आपके शब्द और कर्म पर विश्वास करेंगे।

हम यह शंका सुनते हैं कि ऐसे मनुष्य भी हैं जो हमारे प्रति घृणा का भाव रखते हैं और हम से ईर्षा-द्वेष करते हैं; जिनके प्रति हमने कभी भी घृणा की भावना अपने मन में नहीं रखी।

ऐसी अवस्था में हमें क्या करना चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि आप अपने अन्दर शत्रुता पूर्ण भावों को स्थान न दें और सदा अपने हृदय को दूसरों के प्रति प्रेममय बनाए रखें, तब आप के विरोधियों की संख्या बहुत कम हो जायेगी और एक दिन ऐसा आयेगा, जब आपका कोई विरोधी नहीं रहेगा। निश्चय रखिए कि स्वाभाविक तौर पर घृणा का स्वभाव रखने वाले लोग बहुत कम होते हैं। बिना कारण के कार्य नहीं होता। आप की किसी गतिविधि को दूसरे ने ग़लत समझ लिया, जिस के कारण उसके अन्दर द्वेषाग्नि भड़क उठी, किन्तु यदि आप उसकी दूषित मनोवृत्ति के प्रति अपनी प्रेममयी भावना रखेंगे तो आपका बलिष्ट प्रेम विरोधी की निर्बल तरंगों को मिटा देगा। ऐसा करने से कोई विरोधी तरंग आपके पास नहीं फटकेगी और आपका बाल बाँका नहीं होगा। घृणा संहारकारी है, उसमें विनाश के बीज हैं; इसके विपरीत प्रेम में रचनात्मक शक्ति है और उसमें निर्माण के बीज होते हैं। आप घृणा को सदा प्रेम से जीत सकते हैं।

यदि आप घृणा को प्रेम से जीतने का प्रयत्न करेंगे तो न केवल आपका ही अभ्युत्थान होगा, बल्कि आप अपने विरोधी को भी ऊँचा उठावेंगे। इसके विपरीत यदि आप घृणा का घृणा से सामना करेंगे तो आप अपने विरोधी के समान पतन के गड्ढे में चले जायेंगे।

यदि आपको किसी 'झक्की' से काम पड़े जो ज़रा-ज़रा बात पर झुँझला उठे, तो ऐसे व्यक्ति के उग्र स्वभाव का सामना आप नम्रता से करें। विनय और नम्रता बड़े-बड़े क्रोधियों को शान्त कर देती है और आप फिर उनसे मनमाना काम ले सकते हैं। जो दुराग्रही या हठीला है, उसके प्रति आप का बर्ताव बड़ा

शान्ति का होना चाहिए, तब आप उसको अपनी ओर खींच सकेंगे। एक दया से पूर्ण हृदय मस्त हाथी को भी आसानी से काबू में ला सकता है। जो आपका विरोधी है उसे नम्रता से उत्तर दीजिए। शान्ति का विरोध करना महान अपराध है। बौद्ध धर्म की शिक्षा यह सिखलाती है कि यदि कोई मनुष्य किसी की मूर्खतावश बुराई करता है तो हमें उसके प्रति शुद्ध प्रेम का बर्ताव करना चाहिए; जितना अधिक वह आपके साथ बुराई करे, उतना ही ज़यादा आपको उसके साथ नेकी करनी चाहिए। जो अपने लिए कांटे बोता है उसे कांटे ही मिलेंगे और जो फूल लगाता है उसे सुगन्धि ही प्राप्त होगी। किसी चीनी विद्वान ने कहा है—"बुद्धिमान, विरोधी के प्रति भलाई का बर्ताव करता है, बदी का उत्तर नेकी से देता है और क्रोध को प्रेम से जीतता है तो उसकी आत्मा विकास के पथ पर द्रुतगति से बढ़ती चली जाती है।"

बहुत बार हमारे कान में ये शब्द पड़ते हैं—"क्या हुआ मैं उसे मज़ा चखाऊँगा!" क्या आप सचमुच मज़ा चखाएंगे? बताइये तो सही उसका उपाय क्या है? इसके दो ही रास्ते हो सकते हैं—एक तो यह कि आप अपनी इच्छानुसार विरोधी के ढंग से बदला चुका दें और जैसा उसने आपके साथ किया है, वैसा ही आप उसके साथ करें। यदि आप यह रास्ता इख़्तयार करते हैं तो आप में और उसमें कोई भेद नहीं रह जाता। जैसा बुरा वह है, वैसे बुरे आप बन गये और आप दोनों को बराबर की हानि होगी; इसके विपरीत यदि आप शत्रुता के दुर्भावों के बदले में प्रेम और दया से भरी हुई तरंगे उसके प्रति भेजेंगे तो आप की महत्ता तो बढ़ेगी ही, साथ ही आप के दुश्मन का भी कल्याण हो जायेगा। इसलिए मज़ा चखाने का सच्चा ढंग यह है कि

आप उससे ऊपर उठें और अपनी सात्विक वृत्ति से उसकी तमोगुणी तरंगों को मार भगावें। ये भी आप याद रखिए कि सात्विक वृत्ति का स्वभाव मनुष्य को सदा ऊपर उठाता है और उसकी आत्मा को शान्ति प्रदान करता है।

एक बार भगवान बुद्ध नदी के किनारे बैठे हुए अपने प्रेमी श्रोताओं को उपदेश दे रहे थे, इतने में एक विरोधी व्यक्ति उन्हें गालियाँ देता हुआ वहाँ आया और सबके सामने बड़े ज़ोर ज़ोर से अपशब्द बकने लगा। श्रोता अचम्भे में आकर भगवान के मुँह की ओर देखने लगे। बुद्ध भगवान बड़ी शान्ति से उसकी गालियां सुनते रहे। जब वह अपशब्द कहता कहता थक गया तो उन्होंने मधुर स्वर में उससे कहा—"मेरे प्यारे, तुम्हारे पास जो भेंट थी, तुमने उसे दे डाला, किन्तु मैं यह भेंट बड़े स्नेह से तुम्हीं को वापिस देता हूँ"। वह मनुष्य पानी-पानी हो गया और लज्जा के मारे सिर नीचा कर उसने भगवान से अपने अपराध की क्षमा माँगी

इसी प्रकार संत सुकरात अपने मित्रों के साथ बैठे हुए अपनी बैठक में बातें कर रहे थे। उनकी स्त्री झुंझलाती हुई क्रोध से भरी हुई वहाँ आयी। अपने पति की भर्त्सना कर बोली—"अरे निठल्ले, तू सारा दिन घर में बैठा गप्पें मारता रहता है। कुछ कमा के नहीं लाता; तुझे कुछ भी घर की चिन्ता नहीं; तुझे हराम की रोटी चाहिए!" इस प्रकार वह कुछ समय तक बकती-झकती रही। संत सुकरात के साथी सन्नाटे में आगये और वे उस औरत की इस गुस्ताखी को देखकर सुकरात के चेहरे की ओर निहारने लगे। वह स्त्री जल्दी से वापस चली गयी और मुँह में पानी भर कर अन्दर से लौटी और उस पानी को पिचकारी की तरह उस महापुरुष

के ऊपर फेंक दिया। तब संत सुकरात अपने साथियों से हँस कर बोले—"मैं जानता था कि बादल बड़े ज़ोर से गर्ज रहा है, अवश्य ही बरसेगा।" स्त्री शरमिंदा होकर अन्दर चली गयी और इन साथियों ने अपने गुरु की सहनशीलता को देख कर उसे नत-मस्तक होकर प्रणाम किया। ऐसी स्त्री के साथ यूनान का वह महापुरुष, जिसने संसार को सत्यज्ञान का रास्ता दिखलाया वह युग परिवर्तन करने वाला अमर शहीद, अंत काल तक शांत चित्त से गृहस्थ धर्म का पालन करता रहा। अपनी कठिन परीक्षा के समय मृत्यु से पहले उस ऐतिहासिक दिन, जब विष का प्याला पीकर यूनान का वह सूर्य अस्त होगया तो यही गाली गलौज़ करने वाली स्त्री उसके शव को देख कर धाड़ें मार मार कर रो रही थी और समस्त संसार के सामने यह घोषणा करती थी कि उस आदर्श पति के खो जाने से उसके हृदय में कैसा अन्धकार छा गया है।

जो मनुष्य क्रोध का जवाब क्रोध से देता है, गाली के बदले में गाली देता है, वह इस बात का साक्षी है कि उसके अन्दर की छिपी हुई बुरी आदतों ने विरोधी की बुरी आदत को अपनी ओर खींच लिया है। ऐसी अवस्था में तुम्हें शिकायत के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता, क्योंकि तुम्हें वही मिला, जिसके तुम पात्र थे। यदि तुम बुद्धिमान होगे तो कभी भी उसकी शिकायत नहीं करोगे।

प्रेम की भावनाओं को प्रदर्शित करने से तुम विरोधी के सहायक बनते हो और डाक्टर बनकर उसकी बीमारी का इलाज करते हो। इस प्रकार तुम उसके मुक्ति दाता बन सकते हो और वह व्यक्ति तुम्हारा संदेश लेकर दूसरे ऐसे ही बीमारों को पापों से छुड़ा सकेगा और उनका इलाज करेगा। बहुत बार ऐसा

देखा गया है कि पापी मनुष्यों के प्रति दया और क्षमा की बड़ी आवश्यकता होती है। उन बेचारों ने कभी भी ऐसे सात्विक गुणों का अनुभव नहीं किया, इसलिए वे जंगली जानवरों की तरह जीवन व्यतीत करते हैं। जब उन्हें दया और करुणा के दर्शन हो जाते हैं तो उनकी सोई हुई आत्मा चैतन्य हो उठती है। जीवन एक यात्रा है, हम सब मुसाफिर हैं उसके। अपनी इस यात्रा में यदि हम एक दूसरे को सांत्वना देते चलेंगे, एक दूसरे के दुखों में सहायक होंगे, मधुर तथा नम्र भाषा में आपस में बातचीत करेंगे तो हमारी विकट यात्रा बड़ी सुखद हो जायेगी। थके-हारे मुसाफिर अपनी थकावट को आसानी से मिटा सकेंगे, भूख-प्यास उन्हें सतायेगी नहीं। उतार-चढ़ाव उनके लिए कोई बाधा उपस्थित नहीं करेंगे। जीवन की इस यात्रा में हमें लड़ना-झगड़ना नहीं है, बल्कि प्रेमपूर्वक एक दूसरे की सहायता करते हुए अपनी मंज़िलें मारना है। जो निर्बल हैं, जिनके पास बड़ा बोझ है, जिनकी बड़ी ज़िम्मेदारियां हैं, जो ऋण के बोझ से दबे हुए हैं, जिनको बीमारियों ने सताया है—ऐसे सभी साथी यात्रियों की हमें सहायता करनी है। निर्बल को स्वावलम्बी बनाइये; बीमार के प्रति सहानुभूति प्रकट कीजिए; थके हारे को सांत्वना दीजिए। जिनके ऊपर बोझ लदा है, उनकी भी समय-समय पर सहायता कीजिए। हम सबका आदर्श एक है और हमें उसी अनन्त की ओर जाना है। यह यात्रा बड़ी लम्बी है। मनोविकारों के वशीभूत होने से, हम सब का जीवन नरकमय बन गया है, तब हम किसी तरह से भी अपनी यात्रा समाप्त नहीं कर सकेंगे। हमारा असली जीवन ही दूसरों को हमारी ओर आकर्षित करेगा। जब हमारे अन्दर सात्विकता के गुण मौजूद होंगे, तभी हम दूसरों को सात्विकता प्रदान कर सकते हैं। एक जला हुआ

दीपक लाखों दीपकों को जला सकता है, किन्तु जिनके अन्दर अंधकार है, वे दूसरों को प्रकाश कहाँ दे सकते हैं। पहले अपने अन्दर आत्मिक ज्योति का प्रकाश होना चाहिए, तभी हम दूसरों का मार्ग-प्रदर्शन कर सकते हैं। यह मार्ग प्रदर्शन कोरे शब्दों से नहीं होता, बल्कि इसके लिए बलिदान करना पड़ता है और वह बलिदान ही आत्मिक सूर्य की रश्मियों को चारों ओर फैलाता है। ऐसे प्रकाश से अज्ञानियों का अन्धकार दूर होता है और उन्हें रास्ता सूझने लगता है। तप, सेवा, त्याग और बलिदान जिस मनुष्य के अन्दर अपना घर कर लेते हैं, उसके रोम-रोम से प्रकाश की किरणें फूटने लगती हैं; जिनके प्रभाव से लाखों आत्माओं को शान्ति मिलती है और वे अपने जीवन-पथ में आसानी से अग्रसर हो जाते हैं। अरे ओ सिद्धान्तवादी! जरा ध्यान से हमारी बात सुनिए!. आप सिद्धान्त का भय दिखला कर लोगों पर अपना असर जमाना चाहते हैं; किन्तु यह आपकी भयंकर भूल है। दुनियां आज चैतन्य हो गयी है। असली जीवन ही एक महान् शक्ति है। जब तक आप अपना उत्तम उदाहरण दुनियां को नहीं दिखलायेंगे, तब तक आपके सिद्धान्त की पुकार केवल पत्तेबाजी समझी जायेगी। आप लोगों को उपदेश देते हैं, किन्तु स्वयं उस पर नहीं चलते। सोचिए तो सही, ऐसे उपदेशों की क्या क़ीमत है। कोरे उपदेश की अपेक्षा इस जीवन की सब से अधिक क़ीमत है। धर्म मानने की चीज़ नहीं, वह तो करने की चीज़ है। धार्मिक ग्रन्थों को कण्ठाग्र करने से आप धर्मात्मा नहीं बन सकते—यह काम तो ग्रामोफ़ोन भी कर सकता है। धर्म तो नक़द चीज है, उधार नहीं। दया, करुणा और प्रेम का तो आप उपदेश देते हैं, किन्तु दूसरों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते हैं, तो आप का उपदेश हम पर कैसे प्रभाव डाल सकता है। दुनियां तो नक़द धर्म को

पूजती है, उधार को नहीं। अमली जीवन के बराबर कोई दूसरी शक्ति नहीं। यदि आप विद्वानों का संग करेंगे तो विद्वान बन जायेंगे; मूर्खों में रहेंगे तो मूर्खता के भागीदार होंगे। बुरों का संग मनुष्य में बुराई लाता है और सत्पुरुषों के संग से नेकी मिलती है। जैसा हम बोते हैं, वैसा ही हम काटते हैं। तलवार से ही दूसरों की हत्या नहीं होती, हम विरोधी भावों के द्वारा भी दूसरों की हत्या कर सकते हैं। बहुत से आदमी दूसरों की बुरी भावनाओं के केन्द्रियभूत होजाने के कारण व्याधिग्रस्त हो जाते हैं और बहुतों की इसी कारण मृत्यु भी हो जाती है। संसार में घृणा फैलाइये तो संसार नरक बन जायेगा और प्रेम-तरंगों के फैलाने से हम संसार को स्वर्ग बना सकते हैं। यूरोपीय देशों की बड़ी शक्तियां अपने समाचार पत्रों में एक दूसरे के प्रति घृणा के भाव फैलाती रहीं, इसी कारण पहला और दूसरा महासमर हुआ, जिन्हों ने इस पृथ्वी को नरक बना दिया। चारोंओर रिश्वत का बाजार गर्म होगया। पापों का ताण्डव-नृत्य होने लगा, लाखों आदमी भूखों मरने लगे। जर्मनी जैसा धन्य-धान्य पूरित शक्ति-शाली राष्ट्र मिट्टी में मिलगया और उसके इर्द-गिर्द के छोटे-छोटे देश बीमारियों का शिकार होगये। उनमें आपस में ईर्षा-द्वेष की ज्वाला भभक उठी। ऐसे उदाहरणों को देख कर भी यदि हम करुणा और प्रेम के मूल्य को न समझ सकेंगे तो हमारी रक्षा ब्रह्मा भी नहीं कर सकता।

जो प्रेम से शून्य है, वह मुर्दे के बराबर है। सच्चा जीवन वही है, जो प्रेम से परिपूर्ण हो और चारों ओर प्रेम की धारा बहावे। वही जीवन-सौंदर्य और शक्ति की वृद्धि करता है और सदा व्यक्ति को धनवान बनाता है। ऐसा ही जीवन दूसरों को अपने इर्द-गिर्द खींचता है और उसी जीवन में दूसरों के जीवन

मिलते जाते हैं। परिणाम स्वरूप उस व्यक्ति का जीवन दूसरों की शक्ति पाकर महान शक्ति सम्पन्न होजाता है। जो प्रेम के ईश्वरीय गुणसे वंचित होते हैं, उनके निकट कोई नहीं आता, वे अकेले पड़ जाते हैं और उनकी अपनी शक्ति भी धीरे-धीरे कम होती जाती है। वे तेल के अभाव वाले दीपक की तरह आप ही आप बुझजाते हैं और कोई उनका नाम भी नहीं लेता। संसार में जितने महापुरुष हुए, उन्होंने अपने प्रेम के बल से ही शक्ति एकत्रित की। जिनके साथ वे प्रेम करते हैं, जिन्हें वे लाभ पहुंचाते हैं, जो उनके प्रशंसक होजाते हैं, वे अपनी शक्ति को उस महापुरुष को अर्पण कर देते हैं। उसी शक्ति के सहारे वह महापुरुष बनता है और उसका फैलाव दिन प्रति-दिन बढ़ता चला जाता है। जितना मनुष्य का हृदय उदार, विशाल और प्रेममय हो जाता है, उतनी ही अधिक उसके मित्रों की संख्या बढ़ती ही चली जाती है और वे ही मित्र-प्रेमी उसकी शक्ति को बढ़ाने में मददगार बनते हैं। जितना जिसका क्षुद्र हृदय होगा, जैसे जिसके संकुचित विचार होंगे, जितनी जिसके अन्दर स्वार्थ की मात्रा अधिक होगी, उतना ही कम उसकी ओर लोगों का आकर्षण होगा। ऐसे मनुष्य की शक्तियाँ बौनी होजाती हैं और उनका विकास तक रुक जाता है। कोई मूर्ख या पागल ही सबसे अलग रहने की चेष्टा करेगा। जब वह अलग रहने का अभ्यास करता है, तब वह व्यक्ति बादी हो जाता है और खुदी का शिकार बन जाता है। संकुचित हृदय के लोग केवल अपने स्वार्थ की ओर दृष्टि रखते हैं। वे जहाँ जायेंगे उनका दृष्टिकोण उनके स्वार्थ के अनुसार होगा। वे जब भी किसी से दोस्ती करेंगे तो यह पहले सोच लेंगे कि उससे उनका निजका स्वार्थ कितना पूरा होता है। वे चाहे आर्यसमाज में जाँय, चाहे काँग्रेस में, चाहे मुस्लिमलीग

में जाँय, चाहे हिन्दू महासभा में, चाहे गिरजे में जांय, चाहे मस्जिद में, उनकी ख़ुदी उन्हें सदा अपना उल्लू सीधा करने में लगाए रखती हैं। ऐसे मनुष्यों के मन विषैले होजाते हैं और लोग उनके निकट जाने से नफ़रत करते हैं। वे केवल अपनी ही हानि नहीं करते, बल्कि उन संस्थाओं को भी महान हानि पहुँचाते हैं, जिनमें जाकर वे काम करते हैं। उनके उदाहरण का बुरा प्रभाव दूसरों पर पड़ता है और सारी संस्था स्वार्थ के वातावरण से ओत-प्रोत हो जाती है। ऐसे ही मनुष्यों के कारण अच्छी भली संस्थाएँ भी निर्जीव होजाती हैं और उनके प्लेट फार्म कोरे फ़ोटोग्राफ़ बन जाते हैं। स्वार्थी और परमर्थी, इन दोनों मनुष्यों में भेद यह है कि एक तो अपनी ख्याति, लोकेषणा तथा स्वार्थ के लिए इधर-उधर भटकता फिरता है; वह अपनी विज्ञप्ति (convassing) करता फिरता है; लेकिन दूसरा अपने घर में बैठा हुआ दूसरों को आकर्षित कर लेता है और लोग उसके पास आकर उससे परामर्श लेते हैं तथा उसकी सहायता चाहते हैं। पहला केवल अपनी ख़ुदी से मुहब्बत करता है तो दूसरा सारे संसार की भलाई चाहता है।

जितना अधिक कोई मनुष्य प्रेम के सद्गुण को धारण करता है, उतना ही अधिक वह ईश्वर के निकट आजाता है, क्योंकि परमात्मा प्रेम की मूर्ति है। जब हम उस अनन्त शक्ति के साथ एकता स्थापित कर लेते हैं, तब उसकी शक्ति से हमारी प्रेम धाराएँ विश्व की ओर जाने लगती हैं।

यदि मानव समाज के साथ आप मानवीयता का सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो सब से पहले अपने मन में ईश्वर के साथ एकता स्थापित कीजिए। तब हम प्रेम के उस महान नियम

को पकड़ सकेंगे, जो मनुष्य को दूसरों की सेवा में बलिदान होना सिखाता है। यह सत्य तथ्य भी हमें मालूम होजायेगा कि हम सब में एक ही जीवन चल रहा है और हम दूसरों की सेवा करते हुए अपनी ही सेवा करते हैं। साथ ही यदि हम किसी को हानि पहुंचाएँगे तो हमारी हानि सबसे पहले होगी। हमें अपने जीवन को विश्व के जीवन में मिला देना है, तभी हम सब प्रकार के सुखों के भागीदार हो सकते हैं। अपने क्षुद्र दायरों से निकल कर छोटे-छोटे झगड़ों को समाप्त कर हमें जीवन के विशाल दायरे में प्रवेश करना चाहिए, तभी हम महान बन सकेंगे। बड़े कामों को साहस से ही प्रारम्भ कीजिए और प्रभु पर विश्वास कर प्रेममय हृदय बना कर उसके लिए पुरुषार्थ कीजिए तब आप देखेंगे कि आप की शक्तियां कितनी शीघ्रता से विस्तार पाती हैं और आप कितनी जल्दी उत्कर्ष की ओर बढ़ते हैं।

अन्त में हम सेवा के विषय में कुछ शब्द कहना चाहते हैं। मन्दिरों, गिरजों और स्टेशनों पर हम भिखमंगों को भीख मांगता हुआ देखते हैं और उन्हें दो चार पैसे देकर यह समझ लेते हैं कि हमने उनकी सेवा करदी। किन्तु यह सेवा नहीं है, वे पैसे उन्हें भीख मांगना सिखलाते हैं और उनका जीवन इस प्रकार बरबाद होजाता है। हमें चाहिए कि हम उन्हें स्वावलम्बी बनावें उन्हें उनके पैरों पर खड़ा करें, जिससे वे भीख मांगना छोड़ दें और ईमानदारी से जीवन व्यतीत करना सीखें। यही उनकी सच्ची सेवा है। जो मनुष्य दूसरों को स्वावलम्बी बनाता है, वह उनमें स्वाधीनता की भावना भरता है। मनुष्य अपने स्वरूप को पहचानने लग जाय, अपनी भूलों को समझने लगे, उसे आर्थिक स्वतन्त्रता होजाय—इनमें उसकी

सहायता करना ही उसकी सच्ची सेवा है। हम संसार में दूसरों को गुलाम बनाने नहीं आये, हमारा उद्देश्य स्त्री-पुरुषों को स्वावलम्बी और संयमी बनाना है, जिससे वे विषयों की गुलामी से छूट जायें और अपने आपको पहचानने लगें। जब वे अपने अन्दर की छिपी हुई शक्तियों को जान जायेंगे तब उनकी आत्मा जागरूक होगी और जब वे अपने ईश्वरीय सम्बन्ध को अनुभव करेंगे, तब उन्हें उस अनन्त खज़ाने का पता लग जायेगा, जहां सब प्रकार के साधन मिल सकते हैं और किसी वस्तु की कमी नहीं रहती।

इसलिए मन एकाग्र कर जब हम अपने समाज की महान समस्याओं पर ध्यान से विचार करेंगे और सोचेंगे कि कौन-सी व्याधियां हमारे समाज को खा रही हैं, जिनके कारण चारों ओर अशान्ति है, तब हमें पता लगेगा कि इन समस्याओं का हल हमारे उपरोक्त इलाज में छिपा हुआ है और इस इलाज के विना कभी सुख और शान्ति नहीं मिल सकती।

प्रेम के सम्बन्ध में हमने विशदरूप से मीमांसा की है और अहिंसा का जो यथार्थ स्वरूप भारतीय संस्कृति ने माना है, उसको सुन्दर उदाहरण देकर अच्छी व्याख्या के साथ इस अध्याय में वर्णन किया गया है। पाश्चात्य जगत में इस समय घोर अशान्ति है और पिछले महासमर में विनाश का जो ग़ज़ब ढाया है, उसका एक भीषण चित्र हम अपने पाठकों की भेंट करना चाहते हैं। किस लिये ? इसलिये कि आने वाली संतान भी हमारी पुस्तक में उसे पढ़कर ठंडे दिल से हिंसा और अहिंसा के सम्बन्ध में अपनी सम्मति निश्चित कर सकें। अगले अध्याय में हम उसी विभत्स चित्र को दिखलाते हैं।

छटा अध्याय

हिंसा-प्रतिहिंसा के कड़ुवे फल

जब से मनुष्य ने होश सँभाला है, तब से वह बराबर पशुओं की तरह लड़ता चला आरहा है। लाखों वर्षों के विकास ने उसे अभी तक यह नहीं सिखलाया कि युद्ध, युद्ध से शान्त नहीं होता, बल्कि प्रेम से शान्त होता है। शताब्दियों से संहारकारी और भयंकर युद्धों के परिणामों ने भी उसे अभी तक यह शिक्षा नहीं दी कि जीवन का लक्ष्य एक दूसरे की सम्पत्ति छीनना, मारकाट कर दूसरों को भूखा मारना और दूसरों को गुलाम बनाकर उनका रक्त चूसना नहीं, बल्कि सत्य-ज्ञान की प्राप्ति है। उसने अभी तक यह नहीं जाना कि अपनी विद्या द्वारा प्रकृति की बरकतों को काम में लाकर उत्पादन बढ़ाना और सभी नर-नारियों को उनके अधिकार और पुरुषार्थ के अनुकूल जीवन सामग्री देकर, आवश्यकताओं की कमी द्वारा अधिक समय निकाल कर प्रभु के इस रहस्यमय जगत के तथ्यों को समझना ही मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है।

निःसन्देह, रोटी का सवाल मानव समाज में अपना स्थान रखता है, किन्तु अपरा-विद्या द्वारा उस प्रश्न का हल सहज में हो सकता है। प्रकृति माता सदा अधिक से अधिक देती है, किन्तु परा-विद्या के अभाव से, यह अज्ञानी मनुष्य खाने पीने के पदार्थों को ही जीवन का ध्येय मान कर उन्हीं के संग्रह में लग जाता है। यह मूर्खतावश समझ बैठता है कि विषय भोग ही सम्पत्ति की चरम सीमा है और उसी की वृद्धि पर सूक्ष्म मनुष्य का प्रादुर्भाव होता है, इसीलिए वह बराबर आवश्यकताओं

की अधिकता करता चला जाता है और पराविद्या से उपराम रहता है।

यही कारण हुआ है कि सभ्य संसार के इस विकसित मनुष्य की सारी शक्तियां अपराविद्या के संहारकारी आविष्कारों के निकालने में खर्च हो रही हैं और अधिक से अधिक मनुष्यों को मार डालने वाले, नगरों का संहार करने वाले और संस्कृति को मिटा देने हथियारों से सुसज्जित होकर, बड़ी शेखी से युद्ध में प्रवृत्त होता है और उसी को जीवन का परम पुरुषार्थ मान बैठा है।

आइये, अब हम आपको जर्मनी के प्रसिद्ध नगर, उसकी जगत विख्यात राजधानी बर्लिन की, दुर्दशा का विभत्स दृश्य दिखलावें, जो सन् १९३९ के युद्ध के बाद जीती हुई जातियों ने उसका किया है। वे भीषण दृश्य हमारे लिये आँख खोलने वाले हैं और चीत्कार करते हुए सभ्य मनुष्य को सावधान कर रहे हैं। हिंसा-प्रतिहिंसा का केवल यही एक उदाहरण चिन्ता शील लोगों के लिये परियाप्त होगा। श्री एन. जे. नामक एक भारतीय यात्री दूसरे यूरुपीय महासमर के बाद जर्मनी गया था। उसने जो अपनी आंखों से देखा हुआ वर्णन जर्मनों की प्यारी राजधानी बर्लिन का किया है, पाठकों के ज्ञानार्थ उसे हम यहां देते हैं। जरा ध्यान से पढ़िये।

जिस वैभव पूर्ण जर्मनी की भूमि पर अभिमानी हिटलर-महान, शासन करता था, वहां मृत्यु और विनाश अपना ताण्डव नृत्य कर रहे हैं। जर्मन जंगी शक्ति का दर्शनीय स्वरूप बर्लिन नगर, टूटे फूटे मकानों, अट्टालिकाओं और राज-प्रासादों का दयनीय दृश्य बना हुआ है। जले हुए जर्मन नगर के भग्नाव

शेष प्रतिहिंसा की ज्वलन्त मूर्ति बनकर देखने वाले के हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर रहें है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसी बर्बादी लाने वाले रूसी सिपाहियों के हृदयों में जर्मन जाति के प्रति घृणा का विशेष कारण था, किन्तु क्या ऐसी घृणा द्वारा उत्पन्न हिंसा संसार में शांति ला सकती है? सहृदय लेखक ने सभ्य संसार को ये चेतावनी दी है कि भगवान बुद्ध और महात्मा गांधी का दिया हुआ उपदेश—घृणा, घृणा से शान्त नहीं होती, बल्कि प्रेम से शान्त होती है—आज अक्षरशः सत्य सिद्ध होगया है। यदि विजयी रूसी, जर्मनी को दण्ड देने की बजाय, उनके सुन्दर नगरों को नष्ट करने की अपेक्षा मित्रता का व्यवहार करते, तो सभ्य संसार को स्थायी शांति का ईश्वरीय वरदान प्राप्त होजाता। लेखक ने जर्मनी के बड़े-बड़े नगरों जैसे—हैमबर्ग, कोलोन, डुस्सेलडार्फ़ आदि—में भ्रमण कर बाद में बर्लिन के भीषण भग्नावशेषों के चित्र पाठकों को दिखलाये हैं। सुरम्य और सुगठित जर्मन नगर, ग्राम और कसबों की मोटर-सड़कें तो बिल्कुल बिगड़ी नहीं थीं, किन्तु नदियों के बड़े-बड़े पुल, शिल्पकला के अद्भुत नमूने यात्री की आँखों में आँसू लाने वाले थे।

उपरोक्त जगत विख्यात जर्मन नगरों में निर्मित सुन्दर अट्टालिकाओं की कतारें जो दर्शकों के मन को मोह लिया करती थीं, आज पाषाण-हृदय मनुष्य की आँखों में आँसुओं की धारा लाती हैं। हम हैरान हैं कि सभ्य और सुसंस्कृत मनुष्य ऐसा पशु और हिंसक कैसे बन जाता है और उसका हृदय ऐसे कलापूर्ण भवनों पर आफ़त कैसे ढाता है। इस्लामी विनाशकारी आक्रमणों की बातें हम इतिहास में पढ़ा करते थे और चंगेजख़ाँ तथा नादिरशाह को कोसा करते थे, किन्तु अपराविद्या में निपुण

सभ्य मनुष्य की करतूतों को जर्मनी में देखकर श्रीनायर जी का हृदय अत्यन्त दुखी हो उठा और वे लिखते हैं—

रेलवे स्टेशनों पर आधुनिक ढंग के बने हुए सर्व साधन-सम्पन्न कसरों के टूटे-फूटे, टेढ़े-मेढे भागों के ढेर और गलियों में मीलों तक जलाए हुए मकानों की दीवारों की ईंटें, पत्थरों, सीमेन्ट और चूने के ढेर के ढेर दूर तक चले गये थे—कोई चीज़ साबित नहीं बची थी। रूसी सिपाहियों ने इन भवनों पर तान-तान कर ऐसे गोले मारे थे कि दैत्यों की भाँति आकाश चुम्बी इमारतें दर्शक के पैरों के पास पड़ी हुई उसे रुला रहीं थीं। यह बात बड़ी आसानी से दर्शक समझ सकता था कि इन अट्टालिकाओं के खंडहरों के नीचे हज़ारों नर नारियाँ बच्चे-बूढ़ों की लाशें दबी पड़ीं थीं, जिन्हें न जाने कब निकाला जायगा। इन विशाल जर्मन नगरों के नाश होने से इतनी ज़बर-दस्त हानि हुई है, जिसका अन्दाज़ा तो देखने से ही लगाया जा सकता है। यह लेखनी द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। यह विनाश इतने पूर्ण ढंग से किया गया है कि बदले की भावना की तह का पता देता है।

यदि हम साधारण तौर पर अन्दाज़ा लगा कर कहें तो भी हमारा यह अनुमान है कि कम से कम दस वर्ष तो केवल इन टूटे मकानों, भवनों और अट्टालिकाओं के खंडहरों से भूमि को साफ़ करने, पत्थर ईंटों को हटाने, जले हुए गार्डरों तथा अन्य सामग्री को हटाने में लगेंगे--नये मकान बनाने की बात तो दूर रही।

अब जनता की दुर्दशा के विषय में सुनिए। जर्मनी अपनी कठोर शीत ऋतु के लिये सारे यूरोप में बदनाम है। ऐसी ठण्ड में जब आदमी का खून जम जाता है, ये अभागे जर्मन नरनारी

कुत्ते-बिल्लियों की तरह इन भग्नावशेषों में अपनी जान बचाने के लिये आश्रय तलाश करते फिरते हैं। बर्लिन अत्यन्त घनी आबादी का शहर था और इसी प्रकार ये अन्य जर्मन नगर भी थे। मरने वाले दुखों से छूट गये किन्तु जो जीते हैं, इन के कष्टों का पारावार नहीं—एक एक दिन उनके लिये एक वर्ष के बराबर बीतेगा। जर्मनी शीत प्रधान देश है। यहां साल में दो तीन महीने ऐसे आते हैं, जब अधिक कपड़े की आवश्यकता नहीं पड़ती। खुली मंडी में जर्मन नागरिकों को जीवनावश्यक चीजें मिलनी दुर्लभ हैं। वस्तुओं का तो अभाव ही समझिये और खाद्य पदार्थों का घाटा भी है।

पेट भरने की बात तो दूर रही, जो राशनिंग की दूकानें विजयी जातियों ने खोल ली हैं, उन पर आधे पेट भरने के लिये भी चीजें नहीं मिलतीं, जिसके कारण लोग और बेचैन थे। बृटिश केन्द्र के लोगों को खाद्य पदार्थ बांटने का प्रयत्न हो रहा था, किन्तु तिस पर भी संतोष जनक प्रबन्ध नहीं हो सका। इंगलैंड को जर्मनी के अपने भाग की प्रजाहित खाद्य पदार्थ लाने में आठ करोड़ पौंड खर्च करने का बोझा आपड़ा।

राजनीतिक परिभाषा में तो इंगलैंड विजयी कहलाया, किन्तु यदि आर्थिक दृष्टि से देखा जाय तो कहना पड़ेगा कि इस दूसरे युद्ध में इंगलैंड का कचूमर निकल गया। जर्मनी पर विजय प्राप्त करने से इंगलैंड को आज अनगिनत दुखों का सामना करना पड़ रहा है। क्योंकि उसके अपने खाद्य पदार्थों का बहुत बड़ा भाग जर्मनी भेजना पड़ता है; स्टरलिंग विनिमय के हेतु ब्रिटेन का साम्राज्य के अन्य देशों को भी अपने दैनिक जीवन के पदार्थ भेजने पड़ते हैं, जिसके कारण उसकी अपनी प्रजा दुख पारही है।

बर्लिन नगर आज केवल अपना नाम ही शेष रखता है,

किन्तु उसका सारा वैभव नष्ट हो चुका है। ग्यारह वर्ष पहले जिस समृद्धिशाली बर्लिन को मैंने देखा था, उसकी आज की दुर्दशा का भीषण दृश्य मुझे जीवन भर भूलेगा नहीं। बर्लिन के वे पुराने रंग-रलियों के दिन दूर चले गये; दूर चले गये वे शानदार गिरजों के गुम्बद, जहाँ किसी समय सर्वशक्तिमान प्रभु की पूजा होती थी। साफ़ सुथरी गलियाँ बड़ी लम्बी चौड़ी सड़कें, भीड़ भड़क्के वाले विहार स्थल आज शमशान की तरह होगये हैं, मानो वहाँ कभी कोई रहता ही न था। आज वहां पर विनाश की चंडी वीभत्स स्वरूप दिखला रही है। बर्लिन का जगत विख्यात-राजमार्ग, उन्टर-डेनलिंडन करुण-क्रन्दन कर रहा है। यह प्रशस्त राजमार्ग दुनियां के धनिकों का विहार स्थल था। यहां पर नये वैज्ञानिक साधनों से सुसज्जित होटल, स्वतन्त्र देशों के दूतावास, शाही भवनों की शानदार इमारतें और अनेकों रमणीक निवास स्थान आज धराशायी पड़े हुए हिंसा प्रतिहिंसा के सिद्धान्त की घोर निन्दा कर रहे हैं और सभ्य संसार को यह शिक्षा दे रहे हैं कि प्रेम का सिद्धान्त ही सच्चे सुख, शान्ति और आनन्द की कुंजी है। इन गली कूंचों और सड़कों पर मीलों घूमने के बाद ऐसा कोई व्यक्ति न मिला, जिससे हमें नगर की दुर्दशा के सम्बन्ध में कुछ वाकफ़ियत मिल सकती। जहां कहीं लोग थे भी, वे हमारे प्रश्नों का उत्तर देना, नहीं-नहीं हमारे साथ बात करना भी बुरा समझते थे। ये स्वाभिमानी जर्मन जाति के बच्चे विदेशियों को कैसी घृणा दृष्टि से देखते थे। दैववशात हमारी भेंट एक जर्मन यहूदी से होगई, जिसके चहरे पर मुस्कराहट थी। हमारे पहले प्रश्न के उत्तर में वह भला मानस फ़ौरन हमारे साथ मार्गदर्शक के तौर पर जाने के लिये तैयार होगया। हिटलर के शासन के पहले ये जर्मन यहूदी भवन-निर्माण-कला का कुशल इंजीनियर था, जिसे जर्मन

सी. आई. डी. ने बुरी तरह से लूटा था। इसे हिटलरी शासन और जर्मन प्रजा के साथ कोई सहानुभूति न थी; तथापि जर्मन नागरिक होने के नाते उसे जर्मनी की इस दुर्दशा पर दुख अवश्य था, किन्तु वह हिटलर के अन्याय और अत्याचार को इससे भी अधिक दुखदायी समझता था।

हम उस मार्ग-प्रदर्शक की सहायता से बर्लिन के हृदय भाग में पहुंचे। रूसी सेना द्वारा विनाश के जो नज़ारे हमने यहाँ पर देखे वे कभी वक्तव्य नहीं कहे जा सकते। तबाही का ऐसा दर्दनाक रूप इतिहास में पहले देखने में नहीं आया होगा। उस भयंकर युद्ध के पिछले तीन हफ्ते संहार और विनाश में ही ख़र्च हुए। निरन्तर रातदिन रूसी सिपाहियों ने इस उद्यान रूपी नगर पर प्रलयकारी बंम के गोले गिराये। पिछले तीन दिन घूम-घूम कर सिपाहियों ने बर्लिन के मकानों को जीभर कर बर्बाद किया। पांच लाख से अधिक नागरिकों की हत्या इन्हीं पिछले तीन दिनों में हुई और यह विश्वास किया जाता है कि आने वाले कई वर्षों तक हज़ारों मरे हुए आदमी इन खंडहरों के नीचे दबे हुए पड़े रहेंगे। एक स्थान पर मैं मोटरकार से उतर कर अपने उस यहूदी साथी के साथ प्रसिद्ध इमारतों के खंडहरों को देखने गया। वहाँ किसी प्रकार की बस्ती का चिन्ह दिखाई नहीं दिया, क्योंकि मीलों तक इन्सान का चेहरा दिखाई नहीं देता था और हमने ऐसा अनुभव किया मानो हम प्रेतों के नगर में घूम रहे हैं। बडे-बड़े साहसी मनुष्य भी रात के समय इन भग्नावशेषों में घूमने की हिम्मत नहीं कर सकते।

घूमते-घूमते हम कैज़र होफ होटल के पास आए, जहां अपने पूर्ण वैभव के दिनों में हिटलर जर्मन प्रजा को व्याख्यान

सुनाया करता था। आगे बढ़कर जब हम जर्मन पार्लीमेंट भवन के पास पहुँचे और उस जगद् विख्यात इमारत के जले हुए खम्भों को आकाश की ओर मुंह किये खड़ा देखा तो हमारा जी भर आया। वे मानो न्यायकारी, दयालु प्रभु के सामने अपने दुःख की कहानी कह रहे थे। बर्लिन के जिस प्रशस्त मैदान में खड़े हुए जर्मन जन-समूह ने सन् १६३६ में इंगलैंड के विरुद्ध युद्ध-घोषणा के नारे लगाये थे, वह स्थान आज धराशाही हुआ पराजय की धूली चाट रहा था। इससे आगे बढ़ कर जब हम जर्मन राष्ट्र की चैन्सलरी इमारत के पास पहुँचे, जहाँ किसी समय हिटलर अपने बलवान साथियों गोबुल्स, हिमलर, गोरींग, रिबनट्राफ और हेस्स—के साथ युद्ध-गोष्ठी किया करता था और जहाँ सब प्रकार की युद्ध योजनाऐं बनायी जाती थी, आज छिन्न भिन्न अवस्था में भूमि पर पड़ी हुई राज-मदक्रूर की गाथा को कह रही थी।

जो व्यक्ति इतिहास में अमर कीर्ति पाने के योग्य था और जिसके निर्मल चरित्र की धाक दुनियां में फैली हुई थी, वह हिटलर महान्, हिंसा प्रतिहिंसा के भँवर में पड़ कर अपने अलौकिक मस्तिष्क को युद्ध के नशे में गवां कर कैसा दुष्परिणाम जर्मन प्रजा के लिए उत्पन्न कर गया। मैं उस बदले की आग के विषय में सोचता हुआ कांपने लग जाता हूँ, जिस पिशाची भावना के वशीभूत होकर रूसी सेना ने स्टालीन ग्राड का बदला यहाँ बर्लिन में आकर चुकाया। रूसियों का वह पागलपन, बदले की वह कलुषित भावना, इतिहास के पन्नों में रक्त के अक्षरों में लिखी गयी। आगे चल कर जिसने रूस और अमेरिका में द्वेषाग्नि के बीज बोदिए और तीसरे युद्ध की सामग्री जुटा दी। मुझे बतलाया गया कि प्रत्येक गली कूचे में जर्मनों और

रूसियों के बीच हाथापाई की लड़ाई हुई, जिसमें लूट, हत्या, बलात्कार और अग्नि की भर मार रही और महीने तक बर्लिन नगर धू-धू कर जलता रहा। जो काण्ड जर्मनों ने स्टालीनग्राड में किये थे, उनसे दस गुणा बढ़ कर विभत्स काण्ड रूसियों ने बर्लिन में कर दिखलाए। रूसियों के मन में इतनी अधिक घृणा फैल गयी थी कि उन पर विनाश का दानव सवार हो गया था।

मिस्टर नायर का यह करुण भरा लेख हिंसा-प्रतिहिंसा के कड़ुए फलों का नंगा चित्र खींचता है। इतिहास में इस प्रकार की भीषण घटनाएँ न जाने कितनी बार दोहरायी जा चुकीं, किन्तु इस स्वार्थी मनुष्य ने उनसे कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की। उन्नीस सौ वर्षों से हज़रत ईसा मसीह के अनुयायियों ने अपने गुरु के दैवी सन्देश का प्रचार जगत में किया, परन्तु उसका क्या परिणाम निकला? सिनाई पहाड़ पर दिया हुआ यिशू का वह उपदेश बिल्कुल व्यर्थ होगया और ईसाई कहलाने वाली पाश्चात्य जातियाँ आज इस बीसवीं शताब्दी में भी एक दूसरी की जानी दुश्मन बनी हुई हैं। इसका कारण क्या है?

बात असल में यह है कि मानव समाज ने अभी तक जीवन के लक्ष्य को नहीं समझा, इसीलिए अपरा-विद्या की इतनी अधिक जानकारी होने के बावजूद संसार में खाद्य पदार्थों के लिए मारा-मारी हो रही है। यदि अपरा-विद्या के साथ-साथ पाश्चात्य जातियों के विद्वान पराविद्या का भी विकास करते जाते तो वे इस संसार को सभ्य बना सकते थे। विज्ञान की शक्ति से उत्पादन बढ़ा कर सभी नागरिकों को भोजन वस्त्र देकर शेष समय सत्य ज्ञान की तलाश में यदि खर्च किया जाता तो आत्मदर्शन के साथ-साथ इस अद्भुत ब्रह्मांड के रहस्यों का

उद्घाटन भी साथ-साथ होता जाता। मनुष्य आया है इस दुनियां में अनन्त के साथ एकता स्थापित करने के लिए और अपने स्वरूप को पहचानने के लिए पर पड़ गया है वह नमक, तेल और लकड़ी के फेर में! कितना सीखने को है, हमें इस जीवन में और कैसा व्यर्थ समय जा रहा है हमारा इन छोटे-छोटे क्षुद्र आपसी झगड़ों में।

अब समय आया है कि हम हिंसा-प्रतिहिंसा के कंटकाकीर्ण मार्ग को त्याग कर मानवीयता के अध्यात्म तत्व की ओर आवें। इस धोखा धड़ी के व्यापार-युग से निकल कर सत्य-युग की ओर अपना मुँह करें। मानव को अब पराविद्या की आवश्यकता है। प्रकृति उसका आदर्श नहीं, वह तो केवल साधन मात्र है। मन को नीरोग बनाकर अब हमें उसका मुँह आत्मा की ओर करना चाहिए जिससे भूतल के सभी प्राणियों के साथ हमारी मित्रता स्थापित हो और हमें अनन्त का मार्ग मिले।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस
तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः ;
श्रेयोहि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते,
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।

अर्थ—श्रेय और प्रेय मनुष्य के समीप आते हैं। उन दोनों के चारों ओर फिर कर (देख-भालकर) धीर उनको पृथक्-पृथक् करता है। श्रेय ही को धीर पुरुष प्रेय को छोड़कर चुन लेता है, प्रेय को मूढ़ योग क्षेम करके चुन लेता है।

—कठोपनिषद् १।२।२॥

सातवां अध्याय

मेधा और आन्तरिक ज्योति

यह विश्व ज्योति अनन्त मेधा से ओत-प्रोत हो रही है। जितने दर्जे तक हम अपने आप को इसके प्रति आकर्षित करेंगे, उतने दर्जे तक मेधा शक्ति हमें प्राप्त होगी। हम इस प्रकार विश्व के हृदय में घुस सकते हैं और रहस्यमयी शक्तियों के भेदों को जान सकते हैं। वे रहस्यमयी शक्तियां और उनके भेदों में तो बिल्कुल स्पष्ट हैं, किन्तु प्राकृतिक जगत में रहने वाले मनुष्यों के लिए वे ओझल हो जाते हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमें मेधा के इन गुप्त रहस्यों का पता लगे तो इसके लिए सब से पहले यह जरूरी है कि हमारा ईश्वरीय प्रदर्शन पर दृढ़ विश्वास हो—अर्थात् प्रभु के नेतृत्व पर हमारा यकीन होना चाहिए। जब तक हम दूसरों के सहारे ईश्वर को जानने की कोशिश करते रहेंगे और पैग़म्बर, मसीहा तथा गुरु के द्वारा दैवी शक्तियों को जानने पर विश्वास करेंगे तब तक हम पर वे भेद नहीं खुल सकते। भला हम दूसरों के पास ईश्वरीय ज्ञान के लिए क्यों जायं ? ईश्वर तो किसी व्यक्ति विशेष का पक्षपाती नहीं, तो फिर भला हम बासी (Second hand) चीज क्यों लें — हम ताजा और सीधा ज्ञान स्रोत से ही पाने का यत्न क्यों न करें और इस प्रकार अपनी आंतरिक शक्तियों का सत्कार क्यों न करें। हम शक्ति के स्रोत में सीधा प्रवेश क्यों न करें। यदि कोई मनुष्य बुद्धिहीन हो, उसके पास मेधा न हो तो उसे उसके लिए परमात्मा के दरबार में जाना चाहिए। हृदय में दृढ़ विश्वास की भावना उत्पन्न होते ही प्रभु से संपर्क स्थापित हो

जाता है, तब उन्हें पुकारने की नौबत नहीं आती।

जब हम सीधे, प्रभु से सम्बन्ध कर सकते हैं तो फिर भला हमें व्यक्ति विशेष, संस्थाओं और पुस्तकों की दासता करने की क्या आवश्यकता है? यह बाह्य साधन केवल सुझाव देते हैं—वे केवल एजेन्सियाँ मात्र हैं, वे सीधे स्रोत नहीं। हमें उन्हें पैग़म्बर या मसीहा नहीं समझना चाहिए, केवल शिक्षक मानना चाहिए। अंग्रेजी भाषा के महान कवि ब्राउनिंग ने इस विषय पर अपने निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—"आप भले ही दुनियां भर की बातों पर विश्वास कर लें और बाहर भटक लें, किन्तु यह बात ध्रुव सत्य है कि सचाई तुम्हें अपने अन्दर से ही प्राप्त होगी। हम सब के भीतर एक अन्तरात्मा है, जिसमें सचाई पूर्णता के साथ निवास करती है।"

सारे संसार के साहित्य में सच्चाई को जानने का इससे बढ़कर कोई उपदेश नहीं और न कोई गम्भीर भावों से भरा हुआ ऐसा सूत ही है, जैसा कि यह है—"तुम्हें अपनी आत्मा के प्रति सत्य का व्यवहार करना चाहिए क्योंकि प्रभु उसी साधन के द्वारा तुम्हें ज्ञान प्रदान करते हैं। यह हमारा आंतरिक पथ प्रदर्शक है। यह वह प्रकाश यन्त्र है, यह वह ज्योति स्तम्भ है, जो संसार में उत्पन्न होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को मार्ग दिखलाती है। इसे ही कुछ लोग 'ज़मीर' कहते हैं, यही प्रभु की आवाज़ (intuition) कहलाती है।" यदि आप अपना अन्दर टटोलें तो आप को इस आवाज की ध्वनि सुनाई देगी, जो आप को भले बुरे काम करने से पहले सदा सावधान करती है।

प्राचीन काल के ऋषि मुनि इसी ईश्वरीय ध्वनि को तप और संयम के जीवन द्वारा सुना करते थे और इसी के आदेश को वे सत्य ज्ञान कहते थे। यदि हम भी अपने प्राचीन ऋषियों की

तरह इस दैवी स्वर, इस ईश्वरीय आदेश के अनुसार जीवन बनाने का अभ्यास करें तो यह आवाज़ दिन प्रतिदिन स्पष्ट और निर्दोष होती जायगी। निरंतर अभ्यास से एक समय ऐसा आयेगा, जब हम प्रभु के स्पष्ट आदेश को सुन कर अपनी दिन-चर्या बनाने लगेंगे और फिर हमसे किसी प्रकार की भूल नहीं होगी। योग दर्शन में इसे ही ऋतम्भरा की प्राप्ति कहते हैं। हम में बड़ी भारी कमज़ोरी यह है कि हम इस ईश्वरीय आवाज़ की परवाह नहीं करते। हमारा प्राकृतिक साधनों पर विश्वास अधिक है। इसलिए हमारी अवस्था एक विभाजित घर के समान हो जाती है। हम पथभ्रष्ट मन के द्वारा इधर उधर भटकते फिरते हैं और हमें किसी पर विश्वास नहीं रहता। जो लोग महापुरुषों की तरह अपनी आत्मा की पुकार, उसके हुकुम के अनुसार चलने का अभ्यास कर लेते हैं, उनके लिए समस्याओं को हल करने का कार्य सहल हो जाता है और वे खाई और खन्दकों से बचने की क्षमता पा जाते हैं। इसलिए हमें इस आत्मा की आवाज़ का आदर करना सीखना चाहिए, जिससे हम ठीक समय और ठीक ढंग पर उचित कार्य कर सकें। ऐसा पुरुष यह जान लेता है कि उसे किस समय क्या करना चाहिए और वह बेपेंदी के लोटे की तरह इधर उधर मारा मारा नहीं फिरता।

कुछ लोग यह एतराज़ उठाते हैं—"क्या यह ख़तरनाक न होगा कि हम सदा अपने अन्दर की आवाज़ के आदेशानुसार कार्य करें?" फ़र्ज़ करो, हमें अन्दर की आवाज़ चोरी करने के लिए कहती है अथवा किसी को हानि पहुँचाने की प्रेरणा करती है। देखिए, हमें इन बातों से डरना नहीं चाहिए, क्योंकि अन्तरात्मा की आवाज़, परमात्मा की यह ध्वनि, हमारी यह

छठी इन्द्रिय कभी भी हमें बुरे काम करने की प्रेरणा नहीं करेगी, न यह सात्विक नियमों को भंग करने के लिए ही कहेगी। फर्ज करो, आप के अन्दर कभी इस प्रकार की प्रलोभना लहरें मारने लगें तो आपको यह समझना चाहिए कि यह हमारी ईश्वरीय आवाज़ नहीं है, बल्कि स्वार्थपरता की आदत आपको ऐसे कुकर्म करने के लिए उकसा रही है।

स्मरण रखिए, हम जब आत्मा की पुकार के अनुसार चलने की आप को शिक्षा देते हैं, तो उस समय हम तर्क और सहज बुद्धि को ताक पर रखने के लिए आपको नहीं कहते। ये दो शक्तियां भी उस आत्मिक सिद्धान्तों के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित होती रहनी चाहिए और जितने दर्जे तक आप इन्हें मांज देंगे, उतने दर्जे तक यह दोनों साधन ज्योति और शक्ति को धारण करते जायेंगे। जब कोई व्यक्ति ईश्वरीय ध्वनि की प्रेरणा के अनुसार चलने का अभ्यासी होजाता है तो वह सर्वज्ञता के राज्य में प्रवेश करने वाली मेधा को प्राप्त करना है। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति उस शक्ति के अतिरिक्त दूसरे किसी साधन पर निर्भर न रहे। उसे ईश्वर-प्रणिधान के नियम का सोलह आना पालन करना उचित है। जब मनुष्य इस महान आत्मिक तथ्य को जान लेता है और इस अनन्त ज्ञान शक्ति के सम्मुख अपना हृदय खोल देता है, तभी वह सच्ची शिक्षा की सड़क पर चलने वाला यात्री बन सकता है और उन रहस्यों को समझने के योग्य बन जाता है, जिन्हें अभी तक वह अगम अगोचर मानता था। सच्ची शिक्षा-प्रणाली की यही नीव बननी चाहिए — अर्थात् विकास अन्दर से प्रारम्भ होकर अनन्त की ओर बढ़ने लग जाय। जो वस्तुएँ हमारे जीवन में अनमोल हैं, वे हमें प्राप्त हो सकेंगी, यदि हम

आत्मा की आवाज़ के अनुसार जीवन बनाना प्रारम्भ करेंगे। ऋषि पद प्राप्त करने का यही सच्चा सीधा मार्ग है, तभी हमें दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी। इस दिव्य दृष्टि के बल से नये तारे, नक्षत्र, कानून और शक्तियां ऐसी न होंगी, जो हमारे ज्ञान के क्षेत्र से बाहर हो सकेंगी। हमें केवल अपने आपको प्रभु की अनन्त शक्ति के साथ सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता है। इस प्रकार यह नवीन रहस्य हमारे लिए अपने नवीन संदेश देंगे। इस ढंग से प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही पराविद्या कहलाता है, क्योंकि इसमें बारबार परिवर्तन नहीं होते और इस ज्ञान की धारा सदा एक रस बहती रहती है। तब हमें यही करने की आवश्यकता पड़ती है कि जब हमें कोई रहस्य जानना हो अथवा समस्या हल करनी हो तो हम समाधिष्ठ हो जायँ, इस प्रकार हम अपनी इच्छानुसार ज्ञातव्य पदार्थों को जान सकेंगे। यही मेधा है, जिसकी प्राप्ति के लिए हमारे प्राचीन काल के ऋषि मुनि ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे, क्योंकि यही ईश्वर का सत्य ज्ञान है। यह सत्य ज्ञान मनुष्य को ईश्वर की आवाज़ के द्वारा ही मिल सकता है। यह लौकिक ज्ञान से श्रेष्ठतम है। बहुत सी वस्तुओं का जान लेना, सत्य ज्ञान नहीं कहलाता, यह तो तोते की तरह रटने से भी प्राप्त हो सकता है, किन्तु जिसे हम सत्य ज्ञान कहते हैं, वह ईश्वरीय नियमों और शक्तियों को जान लेने ही से मिल सकता है। वह सत्य ज्ञान समुद्र की तरह गहरा है और उसमें नाना प्रकार के रत्न छिपे हुए रहते हैं।

वह जो ईश्वरीय ज्ञान का जिज्ञासु है, उसे पहले अपनी लौकिक विद्या के घमण्ड को त्याग देना चाहिए। जब तक वह अपने मन को धोई हुई पट्टी की तरह नहीं बना लेता, जब तक वह बालक की तरह सरल

चित्त नहीं हो जाता, तब तक उसे ईश्वरीय ज्ञान नहीं मिल सकता। जिस मन रूपी पट्टी पर पहले से ही नाना प्रकार के पक्षपात पूर्ण सिद्धान्त लिखे हुए हों, जिस पर दुनियाँ भर की फ़िज़ूल बातें अंकित हों, उस पर क्या कोई नवीन संदेश लिखा जा सकता है ? याद रखिए; पहले के जमा किये हुए पक्षपातपूर्ण ख्यालात सचाई की प्राप्ति में बड़े बाधक बनते हैं; क्योंकि व्यक्ति उसके घमण्ड में नया उपयोगी ज्ञान सीखना नहीं चाहता। इस कारण वह मूर्ख बना रहता है। वे पक्षपात सच्चाई के मार्ग में बाधा डाल कर खड़े हो जाते हैं और उसे प्रवेश करने से रोकते हैं। हम अपने इर्द-गिर्द धार्मिक, वैज्ञानिक राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में ऐसे नर-नारियों की भरमार देखते हैं, जो अपने पहले सीखे हुए ज्ञान के घमण्ड में किसी नये सत्य का आदर नहीं करते, बल्कि उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। वे अपने उस झूठे अभिमान में ऐसे डूबे रहते हैं कि कोई नयी स्फूर्ति, आविष्कार अथवा सत्य नियम उनकी आँखों में जँचता ही नहीं। वे उदार, विशाल हृदय और सर्वाङ्गपूर्ण होने की अपेक्षा संकुचित, तंग दिल और एकाङ्गे बन जाते हैं। वे इससे भी अधिक उपयोगी नवीन सत्य को ग्रहण करने के सर्वथा अयोग्य हो जाते हैं। बजाय इसके कि वे संसार के उन्नति-चक्र के चलाने में क्रियाशील सहायक बन जांए, वे उल्टा उसके मार्ग में सूखी लकड़ियाँ होकर रुकावट ही पैदा करते हैं। उनका इस प्रकार का रुख सर्वदा व्यर्थ सिद्ध होता है, वे कदापि ऐसा नहीं कर सकते। ऐसे लोग सदा थके-हारे जर्जरित होकर पीछे रह जाते हैं, जब कि ईश्वरीय विजय-रथ सदा आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है।

जब पहले पहल पानी के कलों का चलन हुआ तो पुराने

पंडित यह कहते थे कि नल का पानी पीने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है, क्योंकि उसमें चमड़ा लगा हुआ है, पर धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों प्रकाश फैलता गया, पानी के नलों का चलना विस्तार पकड़ता गया और अब हरिद्वार जैसे तीर्थ में भी लोग नलों का पानी पीते हैं।

इसी प्रकार जब पहले पहल पं० ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर ने विधवा-विवाह के लिए आवाज़ उठायी तो पुराने ढर्रे के शास्त्रियों ने चिल्लपों मचाई और कोई विधवा-विवाह का पक्षपाती बनता, वे उसे जात बिरादरी से बाहर कर देते थे। आज भारत-वर्ष में शूद्रों को मन्दिरों में प्रवेश कराने के लिए कानून बनाए जा रहे हैं और दक़ियानूसी पंडित ऐसे सुधारक कानूनों का विरोध कर रहे हैं। वे कहते हैं कि यह काम शास्त्र के विरुद्ध है। इन लोगों को सुधार की सब चीज़ें जब तक शास्त्रों में नहीं मिलतीं। तब तक मानने के लिए तैयार नहीं होते मानों इनके शास्त्र अनन्त काल की बात पहले ही लिख गये हों। वे लोग समय की गति को नहीं पहचानते और उसका मुक़ाबला करते हैं, किन्तु उन्नति का शक्तिशाली चक्र बड़ी तेज़ी से बढ़ा चला जाता है और विरोध करने वालों को पीसता हुआ आगे बढ़ता है।

सचमुच यह बड़ी दिल्लगी की बात है, कि मनुष्य नये सुधारों तथा आविष्कारों को अपनी सैकड़ों वर्षों की पुरानी मजहबी किताबों में तलाश करने लग जाता है और अपनी छोटी बुद्धि से यह समझता है कि जब तक उसकी मानी हुई ख़ुदा की पुस्तक किसी नवीन सच्चाई की पुष्टि नहीं करती, तब तक उसे मानना नहीं चाहिए। अपनी पुरानी किताबों को प्रमाण मानकर वह उन्हीं की व्यवस्था को सर्वोपरि

समझता है और प्रमाण के बिना टस से मस होना नहीं चाहता। देखिए, उसकी इस तंग दिली को !

अरे मनुष्य ! अपने आत्मा के घर में बहुत सी खिड़कियां बना, जिससे भगवान भास्कर की प्रकाशमयी किरणें तुम्हारे अन्दर की आत्मा को चारों ओर से प्रकाशित कर सकें। भला सोचिए, एक छोटा सा झरोखा तो तुमने अपनी आत्मा की कोठरी में रख छोड़ा है, वह उन असंख्य किरणों को अन्दर कैसे ला सकेगा; उसके कारण तो अन्दर बहुत अन्धेरा रहेगा। पुराने मकानों में लोग अन्धेरी कोठरियाँ रखते थे, किन्तु आज इस जागृति के युग में अधिक से अधिक स्वच्छ हवा और प्रकाश का ध्यान रखकर मकान बनाये जाते हैं, जिससे अधिक से अधिक प्रकाश मनुष्य को मिल सके। सब प्रकार के मजहबी ढकोसलों तथा मिथ्या विश्वासों से निकल जाइए और हजारों वर्षों के पुराने भ्रम और जर्जरित प्रमाणों को दूर फेंकिए। अब उनका समय जाता रहा। अधिक से अधिक प्रकाश आपके अन्दर पहुँचे, इसका प्रयत्न कीजिए। सच्चाई का किसी ने ठेका नहीं लिया और न कोई जाति विशेष ईश्वर की चहेती (Favourite) अर्थात् प्यारी ही है। उस न्यायकारी प्रभु के सामने सभी जातियाँ बराबर हैं। जो उसके नियमों का पालन करते हैं, वही उसका वरदान पाते हैं। अपने कानों को विश्व के सभी विद्वानों के उद्देश्यों को सुनने का अभ्यस्त बनाइए और अपनी मूर्खता तथा तंग दिली में यह न समझ बैठिए कि दुनियां के लोगों ने सब कुछ आप से ही सीखा है और आप ही सब के गुरु घंटाल हैं। आप का हृदय ऐसा सत्यनिष्ठ बन जाना चाहिए कि जहाँ कहीं भी सचाई मालूम पड़े उसका स्वागत करने के लिए, आप सदा तैयार रहें। ऐसे ही मनुष्य बुद्धिमान

कहे जाते हैं, उन्हीं का हृदय विशाल होता है और वे ही विश्व-बंधुता के मानने वाले कहे जा सकते हैं; जैसे वाटिका के पौधे सूर्य की असंख्य रश्मियों से लाभ लेते हैं, इसी प्रकार आप के आत्मा-मंदिर की खिड़कियों द्वारा दैवी प्रकाश आप तक पहुंचना चाहिए। तब आप देखेंगे कि विश्व की सारी शक्तियों और आकाश के असंख्य तारे आप की ओर आकर्षित होंगे और आप के कार्यों में मदद देंगे।

जब कोई स्त्री-पुरुष अपनी विद्वत्ता के घमण्ड अथवा मजहबी सिद्धान्तों के विश्वासवश अन्य स्रोतों से बहने वाले ब्रह्मज्ञान के रस का तिरस्कार करता है अथवा उसके अपने प्रामाणिक ग्रन्थों के अतिरिक्त सभ्य देशों और भाषाओं के मेधावी नर-नारियों के ज्ञान का अपमान करता है और प्रकाश को अन्दर आने नहीं देता, ऐसे अभागे स्त्री-पुरुष सत्य-ज्ञान से सर्वदा वंचित रहते हैं और उनको अवस्था उस पोखर की तरह हो जाती है जो ताजे जल के अभाव से दुर्गन्ध फैला रहा हो। इसके विपरीत जो व्यक्ति सब प्रकार के संदेश देने वाले तथा प्रकाश पहुँचाने वाले साधनों का स्वागत करता है और जिनके हृदय में कोई पक्षपात नहीं, जो अपने आप को सदा विद्यार्थी समझते हैं, ऐसे विनयी सत्पुरुष तथा स्त्रियां सभी सम्भव साधनों से सत्य ज्ञान को प्राप्त करती हैं और चारों ओर से सच्चाई का प्रकाश उनके मस्तिष्क की असंख्य कणिकाओं में बेरोक-टोक प्रवेश करता है। ऐसे नारी-नर ही स्वाधीन जीवन व्यतीत करते हैं और उन्हीं को सच्ची आज़ादी मिलती है; क्योंकि हमें आज़ाद करने की शक्ति केवल सत्य में ही है। हज़रत ईसामसीह ने कहा है—"तुम सत्य को जानो और सत्य ही तुम्हें आज़ाद करेगा।" दूसरे लोग जो

प्रमाणवाद की ग़ुलामी से बँधे हैं, जो अपनी मज़हबी संस्थाओं तथा रूढ़ियों के दास हैं, जो मनुष्यों की पूजा करते हैं, ऐसे लोग सच्चाई तक पहुंच नहीं सकते; क्योंकि जहाँ सत्य का स्वागत नहीं है, वहाँ वह कदापि भी अपना प्रकाश नहीं फैलाता। अतएव जहाँ पर सच्चाई का स्वागत नहीं होता, वहाँ उसके साथ आने वाली बरकतों का भी अभाव ही रहता है। इसके विपरीत जहाँ सच्चाई का अपमान होता है, वहाँ पर आलस्य, प्रमाद, व्याधि और मृत्यु आकर उपस्थित हो जाती है। वह मनुष्य एक चोर और डाकू की अपेक्षा अधिक घृणा का पात्र है जो दूसरे को स्वतन्त्र सोचने के ईश्वरीय गुण से वंचित रखता है, जो उसकी बुद्धि को दास बनाना चाहता है और उसे जंज़ीरों से बाँधकर रूढ़ियों का ग़ुलाम रखना चाहता है। जो सच्चाई का ठेकेदार बनता है और प्रमाणवादी शास्त्रों (वेद, गीता, क़ुरान और अंजील) की व्याख्या करने का अपने आप को आचार्य समझता है, जो दूसरे को स्वाधीन व स्वावलम्बी बनाने की अपेक्षा मज़हबी किताबों के सहारे अपना क्रीतदास बनाने का इच्छुक है—ऐसा स्वार्थी व्यक्ति डाकुओं और बटमारों से बहुत अधिक ख़तरनाक है। इस ख़ुदग़र्ज़ मनुष्य द्वारा की हुई हानि चोरों और डाकुओं की अपेक्षा अधिक भयानक होती है, क्योंकि वह स्वार्थी तौर पर अपने भाई मनुष्यों को नुकसान पहुंचाता है, उनके जीवन बरबाद कर उन्हें सदा के लिए बुद्धू बना देना चाहता है।

ज़रा सोचिए, इस मनुष्य को परमात्मा के अनन्त ज्ञान-भंडार का चौकीदार किसने नियुक्त किया है, जो वह चौधरी बनकर उसकी व्याख्या करता हुआ, दुनियां के सामने अपना पांडित्य बघारता है। समाज में बहुत से मनुष्य ईश्वरीय सच्चा-

इयों के ठेकेदार बनते हैं और मठ-मन्दिर खोलकर दूकानदारी चलाते हैं। ये लोग सचाई के ठेकेदार बनते हैं किन्तु सच्चा गुरु वही है, जो अपने शिष्य को स्वाधीन और स्वावलम्बी बनाता है और स्वयं सोचने की शक्ति भरता है। सच्चा गुरु वह है, जो अपने विद्यार्थी को अपना स्वरूप पहचानने में सहायता दे, उसकी अन्दर की शक्तियों का विकास करे और उसे सदा के लिए अध्यात्मिक स्वतंत्रता दिलादे, जिससे वह नये गुरुओं की तलाश न करता फिरे। अधिकांश धर्माचार्य, जो पैग़म्बर, मसीहा और गुरु बनते हैं, ख़ुदगर्ज़ी के इरादे से अपना उल्लू सीधा करने के लिए मज़हबी दूकानदारी का जाल फैलाते हैं, जिससे उन्हें आर्थिक स्वतन्त्रता होजाय और वे घर बैठे मौज-बहार करें। यह भी याद रखना चाहिये कि वह व्यक्ति जो पूर्ण सत्य का जानने वाला होने का दावा करता है, जो कहता है कि उसी के पास सब सच्चाई है, उसे आप हठधर्मी, महामूर्ख और धूर्तराज ही समझिए।

पंचतंत्र में एक कथा आती है। एक मेंढ़क कुएँ में रहता था और उसी में फुदक-फुदक कर अपना जीवन व्यतीत करता था। उसके पास एक समुद्र में रहने वाला मेंढ़क मिलने के लिए आया। आपस में बातचीत होने लगी। कुँए के मेंढ़क ने पूछा—"भैया, आप कहाँ रहते हैं ?" समुद्र के मेंढ़क ने उत्तर दिया,—"मैं महासागर में रहता हूँ।" इस पर कुएँ का मेंढ़क बोला—"तुम्हारा महासागर कितना बड़ा है ?" उसका मेहमान बेपरवाही से बोला—"समुद्र बहुत बड़ा होता है" तब कुएँ के मेंढ़क ने पास पड़े हुए पत्थर तक कूद कर कहा—"क्या इतना बड़ा ?" तब कूपमंडूक ने नयी छलांग भरी और कहने लगा—"इससे तो बड़ा हो ही नहीं सकता।" इस पर समुद्री मेंढ़क

खिलखिला कर हंसने लगा और बोला—"मेरे सागर में तुम्हारी जैसे इस कुएँ के समान असंख्य कूप भी समा सकते हैं !" अविश्वास में मत्त कूपमंडूक विरोध कर कहने लगा—"झूठ ! सरासर झूठ !! भला इस कूँए से बड़ा कोई समुद्र हो सकता है ?" ऐसी दशा है उन लोगों की, जो कुएँ के मेंढ़कों की तरह अपने मज़हबी ग्रन्थों को ही सबसे बड़ा ज्ञान सागर समझते हैं और दावा करते हैं कि उनके ग्रन्थों से बाहर कोई सच्चाई नहीं हो सकती।

आज दुनियाँ इस प्रकार के करोड़ों मनुष्यों से भरी हुई है, जो अपने-अपने सम्प्रदाय को सर्वोपरि समझ कर दूसरों के मज़हबों का मखौल उड़ाते हैं। वे कूप-मंडूक की तरह यह समझते हैं कि सारा सत्य ज्ञान उन्हीं के पास है और वे ही ईश्वर के परम प्यारे हैं और उन्हीं की भाषा ईश्वर की खास बोलने की भाषा है। ऐसे हठधर्मी लोगों पर अजीब तरह का पागलपन सवार होता है और वे अपने क्षुद्र ज्ञान के घमण्ड में किसी विद्वान को कुछ नहीं गिनते। उपनिषद् कहती है—"यस्यामतम तस्यमतम मतमयस्य न वेद सः" अर्थात् जो कहता है, मैं नहीं जानता वही जानता है; जो कहता है, मैं जानता हूँ, वही अज्ञानी है। संत सुक़रात से किसी ने बुढ़ापे में पूछा कि आपने अपनी सारी आयु में क्या सीखा ? तो युग-प्रवर्तक उस महा-पुरुष ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"मैंने अपनी सारी आयु में यही सीखा है कि मैं कुछ नहीं जानता"। राजर्षि भर्तृहरि ने भी यही बात कही है—"जब मैं मूर्ख था तो अपने आप को बड़ा पंडित, अनुभवी और ज्ञानवान् समझता था, किन्तु जब धीरे-धीरे विद्वानों के सम्पर्क से मुझे कुछ ज्ञान-प्राप्ति हुई तो मुझे पता लगा कि मैं कुछ नहीं जानता हूं।" संसार के सारे विद्वान्

इस सच्चाई के सामने सिर झुकाते हैं कि ज्यों-ज्यों मनुष्य का ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसे अपनी अज्ञानता का पता लगता चला जाता है।

अमरीका के प्रसिद्ध कवि वाल्टर विटमेन फ़रमाते हैं— "इस समय से मैं अपने आप को अनन्त की ओर जाने वाली ज्ञान-धारा के प्रति समर्पित करता हूँ और सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो, ऐसी स्थिति को प्राप्त करता हूं, जहाँ मैं अपना आप स्वामी बनूँ। इस स्थान पर मैं दूसरों की बातें ध्यान से सुनूँगा, उनके कथन पर अच्छी तरह से ध्यान दूँगा। मैं जिज्ञासा करता हुआ, सोचता हुआ, ग्रहण करता हुआ, गम्भीरता से विचारता हुआ सबका आदर करूँगा, किन्तु मानूँगा वही जो मेरा विवेक कहेगा और जिसमें मुझे किसी प्रकार की त्रुटि दिखायी न देगी अर्थात् मैं उन सब बंधनों को तोड़ दूंगा, जो मुझे बांधने का प्रयत्न करेंगे।"

प्रत्येक मनुष्य का हृदय हर्ष से पुलकित हो जाना चाहिए, क्योंकि ईश्वर का सत्य ज्ञान अनन्त और सब के लिए है। प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी श्रद्धा के अनुसार ग्रहण करने की शक्ति रखता है; जितने दर्जे तक वह उस ज्ञान के प्रकाश को ग्रहण करने का प्रयत्न करेगा, उतने दर्जे तक उसको बरकतें उसे मिलेंगी।

हमारे दैनिक जीवन में जिस ज्ञान को हम काम में लाते हैं और जो हमारा पथ-प्रदर्शक बनता है, उसे हमें अपने लिए कल्याण-कारी बनाने का अभ्यास करना चाहिए। सर्वज्ञ प्रभु के महान कानूनों के साथ जब हमारा सच्चा सम्बन्ध हो जायेगा तो हमारे लिए उस चीज़ को समझना और उपयोगी बातों को जानना अत्यन्त आसान होगा और हम अपनी जीवन-यात्रा में बड़ी आसानी से

लाभदायक साधनों को पकड़ते जायेंगे। याद रखिए, वे सभी वस्तुएँ हमारी हैं, जिनका हम सदुपयोग कर सकते हैं। मैं इस अटल सिद्धान्त को सर्वथा सत्य मानता हूं, जिसे कोई आत्मा घटा-बढ़ा नहीं सकती। हमारे अन्दर जितना ग्रहण करने की शक्ति होती है, उतनी ही चीज़ हमको मिलती है अर्थात् संसार की बरकतें हमें हमारी योग्यता के अनुसार ही मिलती हैं।

जब ऐसा कोई समय आजाय, हम ऐसी कठिनाई में पड़ जायें, जिससे निकलने का रास्ता हमें दिखाई न दे, तब हमें इसमें अपना ही दोष समझना चाहिए और अपने ही पुरुषार्थ से उससे निकलने का उद्योग करना उचित है। हमें आलसियों की तरह अपने भाग्य को कोसते हुए वहीं पर बैठ न जाना चाहिए, बल्कि परमात्मा पर विश्वास कर, उसे सर्वव्यापक मान, कमर कस कर आगे बढ़ना चाहिए। जो चैतन्य आत्माएें अपने अन्दर की शक्तियों से भली प्रकार परिचित हैं, वे तो किसी कठिनाई में पड़ती ही नहीं और यदि पड़ भी जांय तो बड़ी हिम्मत से उस पर विजयी होजाती हैं; क्योंकि वे जानती हैं कि प्रभु प्रकाश का स्रोत है और वही सबको प्रकाशित करता है। जब कभी आपको शंका का भूत आकर घेरे कि आपको किस मार्ग पर जाना चाहिए, ऐसा संशय खड़ा होजाय; जब आप सब प्रकार के उपाय करते हुए थक जांय—तब उस समय आपको अपने अन्दर के ज्ञान का सहारा लेना चाहिए और अन्तर्मुखी वृत्ति से ईश्वर की आवाज़ को सुनना चाहिए। इस स्वाभाविक सुन्दर तरीक़े से आप कार्य को चलाइये, जब तक कि आप अपने उद्देश्य में सफल न होजांय। सभी मुसीबत के मौक़ों पर अथवा अत्यन्त घबड़ाहट की घड़ियों में हमें यह सादा

नुस्खा याद रखना चाहिए—"आप अपनी भीतर की कोठरी में प्रवेश कर, दरवाज़ा बन्द कर, अपने मन को एकाग्र कर, ध्याना-वस्थित हो जाइये—तब आप को अपनी समस्याओं का हल आसानी से मिल जायेगा। इसका अभिप्राय यह है कि आप अपने मन को मन्दिर समझ कर उसी में अपने भगवान की मूर्ति को बिठलावें और जब कोई कठिन घड़ी आ जावे, तो इसी मन्दिर में बैठकर दरवाज़ा लगा, उस मूर्ति से बात चीत करें।"

भगवान बुद्ध जब यात्रा करते थे तो हज़ारों मनुष्य उन्हें घेरते थे, किन्तु वे उनके शोरग़ुल में भी शांत चित्त रह कर अपने प्यारे शिष्य आनन्द से वार्तालाप करते रहते थे। इर्द-गिर्द का ग़ुल गपाड़ा उनके काम में कुछ बाधा नहीं डाल सकता था। यह है संयम का चमत्कार और मन को एकाग्र करने का पुरस्कार!

जिन मनुष्यों को अन्दर की ओर मुँह करने की आदत हो जाती है, जो हृदय के पटों को खोलने के अभ्यासी बन जाते हैं और बाह्य-जगत से अपनी इन्द्रियों को इच्छानुसार हटा सकते हैं, वे अन्तरात्मा की आवाज़ को स्पष्ट तौर से सुन सकते हैं। ऐसा मनुष्य किसी समय भी अपने अन्दर प्रवेश कर सकता है और बाहरी संसार से मन हटाकर अन्तर्मुखी वृत्ति कर सकता है। यह सब कुछ अभ्यास पर निर्भर है। अन्दर के प्रकाश की प्राप्ति के लिए इस प्रकार का अभ्यास होना आवश्यक है। कठिन से कठिन समस्या भी ऐसे अभ्यासी पुरुषों के सामने अपनी घुंडियां खोल देती हैं और विकट समय में मनुष्य के होश हवाश क़ायम रहते हैं, उसका चित्त डांवांडोल नहीं होता और वह बड़ी आसानी से अपना रास्ता देख लेता है।

अपनी सब इच्छाओं को दूर फेंक कर, केवल एक ही उद्देश्य सामने रखिये और वह यह कि आपको सत्य ज्ञान का अन्वेषण करना है, आपको सत्य की जिज्ञासा है। जब यह जिज्ञासा अत्यन्त बलवती हो उठती है और उसके सामने शेष सब इच्छाएँ तुच्छ हो जाती हैं, तब मनुष्य सच्चाई के जानने का अधिकारी बनता है। जिस बात को जानने की आपकी इच्छा दृढ़ होगी, जिस पर आपकी शक्तियां केन्द्रीभूत हो जायेंगी, आपकी आन्तरिक शक्तियां उसी रहस्य का उद्घाटन कर दगी। इस सत्य को जानने की आपकी अभिलाषा ऐसी तीव्र होनी चाहिए कि इसके सामने दूसरी सभी इच्छाएँ तुच्छ हो जांय। हमारी सारी शक्तियां अनन्त के इस रहस्य के जानने में पूर्णतया लग जानी चाहिये, तभी इस क्षेत्र में हम सफल हो सकते हैं। दुनिया की दूसरी इच्छाओं को साथ लेकर यदि हम चाहें कि हमें अध्यात्मवाद के रहस्य भी अपना संदेश दे दें तो यह हमारी मृग-तृष्णा ही होगी और आजकल बहुत से स्वार्थी लोग इस प्रकार का भुलावा देकर स्त्री-पुरुषों को ठगते फिरते हैं। कोई हठयोग की क्रियाओं को योग बतलाकर उसी के सहारे गुलछर्रे उड़ाते हैं; दूसरे अपने आपको गुरु बतलाकर कान में मंत्र फूंकने का बहाना बना, धन-प्राप्ति के वसीले खड़े करते हैं। मूर्खा स्त्रियां ऐसे दुष्टों द्वारा बहुत ठगी जाती हैं और आए दिन इस प्रकार की घटनायें हमारे कानों में बराबर पड़ती रहती हैं। अध्यात्मवाद का विषय ऐसा गूढ़, ऐसा रहस्यपूर्ण और ऐसा उपयोगी है कि इसके बिना मानव-जीवन के उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती, किन्तु आज इस व्यापार-युग में इसे भी धन पैदा करने का साधन बनाया जाता है—इससे बढ़कर दुर्भाग्य की बात क्या हो सकती है।

अच्छा, हम यह बतला रहे थे कि एक धारणा के साथ

जिज्ञासु को सत्यनिष्ठ हो जाना चाहिए और इस बात को न भूलना चाहिए कि आशा और अभिलाषा का आपस का गठबंधन दुल्हा और दुलहिन के समान है और कभी भी इनमें पृथकता नहीं हो सकती। आपको बहुत शीघ्र इस बात का पता चल जायेगा कि आपके अध्यात्मवाद के मार्ग में जो अन्धकार छाया हुआ था, वह केवल इस नियम पर चलने से दूर होकर आपका पथ दिव्य-प्रकाश से आलोकित करेगा; क्योंकि जिस आकाश के नीचे हम रहते हैं, उसके साथ ब्रह्मांड के सभी आकाशों का पूरा सम्बन्ध है, जिसका दिव्य-स्वरूप एकान्त में समाधिस्थ होने से ही जाना जा सकता है। इसी प्रकाश की अनुभूति सत्य ज्ञान का वह तथ्य है, जो प्रत्येक मनुष्य का पथ-प्रदर्शक बनता है। संसार में उत्पन्न होने वाले प्रत्येक स्त्री-पुरुष के जीवन पथ को प्रकाशित करने वाली यही एक मात्र अध्यात्मिक झलक है। इसी झलक को, बिजली के इसी लैम्प को हम ईश्वर की आवाज कहते हैं, यही आत्मा की पुकार है, इसी को अंग्रेजी में इनट्यूशन (अन्तरात्मा) कहते हैं; इसीकी ध्वनि को सुनना, उस में ध्यान लगाना, इसी का अभ्यास करना आवश्यक है।

आत्मा एक दिव्य स्वयं ज्योति है; जो मन रूपी शीशे के द्वारा उस अनन्त सूर्य की किरणों को पकड़ती है। जब मन पर पड़ा हुआ मैल साफ हो जाता है तो अन्तरात्ता (इनट्यूशन का प्रतिबिम्ब हमारी आत्मा पर पड़ता है, तब हम उस विश्वात्मा के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करते हैं। जैसे फ़ोटोग्राफ़र कैमरे के अन्दर बाहर के पदार्थों का चित्र खींच लेता है, इसी प्रकार ईश्वर की विभूति हमें आत्मा के द्वारा अनुभव हो सकती है। जो मनुष्य अध्यात्मिक जीवन से दूर हट जाते हैं, संसार के सब सत्य ज्ञान के तत्व उनसे ओझल हो जाते हैं।

असल में ईश्वर के सब चमत्कार, उसकी सब शक्तियाँ, उसके अटल नियम और सब पदार्थ बिल्कुल खुले और स्पष्ट हैं। वे केवल उन्हीं को दिखाई नहीं देते, जो ईश्वरीय प्रकाश से वंचित हैं। जब अध्यात्मिक इन्द्रिय सजीव हो जाती हैं, तब प्राकृतिक इन्द्रियों की सभी हद बन्दियाँ टूट जाती हैं और बुद्धि की सीमाएँ अनन्त की ओर मुँह कर लेती हैं। जिसे हम अब तक अज्ञेय (unknowable) समझते थे, जिसे अभी तक अदृष्ट ही मानते थे, जिसे अगम अगोचर समझ कर मानव शक्ति से बाहर स्वीकार करते थे, वही शक्ति अब अपना जलवा दिखाती है और मनुष्य उसके रहस्य को स्पष्ट तौर से अनुभव करने लग जाता है। जितने दर्जे तक हम शारीरिक साधनों की सीमाओं से निकल जायंगे और इस बात को पहचान लेंगे कि हमारा सम्बन्ध उस अनन्त स्रोत से है, उस दर्जे तक हम उन शक्तियों का उपयोग कर सकेंगे। तब हम उस स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ ईश्वरीय ध्वनि बिल्कुल स्पष्ट तौर से आदेश देती है और भ्रांति की कोई गुन्जाइश नहीं रह सकती। यदि हम उस अन्तरात्मा के आदेश के अनुसार जीवन व्यतीत करेंगे तो प्रभु का आशीर्वाद सदा हमारे साथ रहेगा और हम भव सागर के इन कठिन तूफानों में से बड़ी आसानी से निकल जायंगे। इस दिव्य प्रकाश का ज्ञान और उसकी अनुभूति में सदा निवास करना, मनुष्य को किसी ऐसे परलोक के फ़र्ज़ी स्वर्ग में नहीं ले जाता बल्कि इसी जीवन में, इसी पृथ्वी पर प्रत्येक क्षण तथा प्रत्येक घण्टे में उसे सच्चे स्वर्ग की अनुभूति कराता है।

कोई मानवीय आत्मा इस निधि से वंचित न रहनी चाहिए, क्योंकि यही जीवन का असली खज़ाना है। जब हम अनन्त के मार्ग पर ठीक ढंग से चलने लग जाते हैं तो हमारी सब

क्रियाएँ नियमपूर्वक होने लग जाती हैं और जो बात हमें अत्यन्त कठिन जान पड़ती थी, वह बिल्कुल साधारण मालूम होने लगती है। हमारी आँखों के सामने फूल खिलते हैं, समीर बहती है और हम इन घटनाओं को बिल्कुल साधारण समझते हैं। इसी प्रकार जब आत्मा निर्मल साधनों से अपने को पवित्र बना ईश्वरीय दिव्य ज्योति को पकड़ लेता है तो सारे ब्रह्मांड के रहस्य हमारे लिए संदेश देने लगते हैं। यह सत्य ज्ञान धन से नहीं खरीदा जासकता और किसी प्रकार काभी मूल्य देने से इसे पाया नहीं जा सकता। यह त्याग और तपस्या का फल है। यह है वह अवस्था, जो केवल अनुभव से ही मिल सकती है, चाहे राजा हो या रंक, गृहस्थ हो या संन्यासी, किसान हो या ज़मींदार, क्लर्क हो या दूकानदार, कुली हो या घर का नौकर, स्वामी हो या उसका भृत्य—ये सब अपने पुरुषार्थ से उस दैवी अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं—नहीं, नहीं, इस पर उनका जन्म सिद्ध अधिकार है। जो वैभव, जो शान-शौकत हम एक बादशाह के महल में देखते हैं, वह ब्रह्मज्ञानी किसान के वैभव के सामने बिल्कुल तुच्छ हो जाती है और बड़े-बड़े बादशाह इन ब्रह्मज्ञानियों के चरणों में बैठना अपना अहोभाग्य समझते हैं।

एक ऐसे ही यूनानी ब्रह्मज्ञानी के दर्शन करने सिकन्दर महान गया था। वे ज्ञानी बैठे धूप सेंक रहे थे। जब सिकन्दर उनकी धूप रोक कर सामने जाकर खड़ा होगया तो वे बोले—"आप भगवान की दी हुई उस खिलखिलाती धूप को मत रोकिए और हट कर खड़े हो जाइये।" सिकन्दर को अपनी भूल मालूम हुई और वे धूप छोड़ कर अलग खड़े हो गये।

यदि आप ऊँचे से ऊँचे दर्जे की आत्मिक-समृद्धि और ज्ञान की प्राप्ति करना चाहते हैं तो न केवल इस जन्म की बल्कि

अगले जन्मों के लिए भी तो घंटे-घंटे में व्यापक ईश्वर से इस पृथकत्व के भाव को मिटा दीजिए; ईश्वर से एकता की अनुभूति को सजीव कर लीजिए। जितनी अधिक आप की यह अनुभूति साक्षात्कार हो जायगी, उतने ही अधिक ईश्वरीय बरदान आप की पकड़ में आजायंगे, क्योंकि सभी अलौकिक पदार्थ इसी तथ्य के अन्तर्गत हैं। अब तो आप अविश्वास के वातावरण में रहते हैं, इसलिए आप उन वस्तुओं का संचय करते हैं, यह केवल इस भय से कि शायद वे आप के पास न रहें। इसी भय और शंका के कारण दुनियांदार श्रेय को छोड़ कर प्रेय वस्तुओं का दिनरात संग्रह करता रहता है और समझता है कि बुढ़ापे में यह मेरे काम में आयेगीं, किन्तु जिस व्यक्ति की अध्यात्म दृष्टि होजाती है, उसे संग्रह करने की आवश्यकता नहीं रहजाती; क्योंकि वह जानता है कि जब वह किसी वस्तु को चाहेगा तो यह उसे फ़ौरन प्राप्त होगी। वह केवल वर्तमान का ध्यान रखता है। उसे केवल आज की परवाह है, वह कल की चिन्ता नहीं करता। स्मरण रखिए कि कल आप को जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ेगी, वह कल आने पर ही मिल सकती है, इसलिए आज उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। जो व्यक्ति सच्चे हृदय से प्रभु के उन महान नियमों पर विश्वास करता है, जो उसकी दयालुता में अटल श्रद्धा रखता है, उसे किसी वस्तु की कमी नहीं रहती। जो लोग श्रद्धा हीन बन कर किसी काम को करते हैं, जो दो नौकाओं पर पैर रखते हैं, वे अपने आपको धोखा देते हैं। उनके कार्य कभी सफल नहीं होते। ईश्वर से बढ़ कर दृढ़ और निश्चित शक्ति कोई नहीं। जो अपने आप को उसके प्रति आत्म-समर्पण कर देता है, उसे वह कभी भी धोखा नहीं देता। जीवन का रहस्य इसी एक अनुभूति में सदा निहित रहता है। उठते, बैठते, चलते, फिरते,

सोते, जागते लगातार उस अखंड अनन्त की अनुभूति हम में रहनी चाहिए। सोते समय भी हम इसी विश्वास के अन्तर्गत मग्न रह सकते हैं। अब हम यहाँ कुछ महत्वपूर्ण बातें निद्रा के विषय में कहेंगे। किस प्रकार प्रगाढ़ निद्रा में भी हमें दिव्य प्रकाश तथा सात्विक शिक्षाएं मिल सकती हैं।

मानव जीवन में निद्रा का एक ख़ास स्थान है। रात के समय जब प्रगाढ़ निद्रा आती है तो केवल पंच भौतिक शरीर ही आराम करता है और शान्त रहता है। आत्मिक चक्र अपनी गति के अनुसार क्रियाशील बना रहता है। प्रकृति की ओर से शरीर की थकावट दूर करने का निद्रा एक इलाज है। जागृत अवस्था में शरीर में जो निरंतर ह्रास होता रहता है, जो शक्तियाँ थकावट की वजह से क्षीण होती रहती हैं, जो अंग-प्रत्यंग घिस जाते हैं, उन्हें बराबर सुधारने, काम लायक बनाने और नयी सामग्री इकट्ठी करने का काम निद्रा करती है। यह प्राकृतिक संतुलन का एक महान साधन है, जो शरीर को आराम देकर इसकी कमियों को पूरा करता है। यदि शरीर को काफ़ी निद्रा न मिले, जिसके कारण शरीर में शक्ति घट जाय, सामग्री की कमी हो और मरम्मत का काम पूरा न होसके तो मानव शरीर धीरे-धीरे कमज़ोर और शक्तिहीन होता जाता है, तब परिणाम स्वरूप कोई भी बीमारी बड़ी आसानी से इसमें प्रवेश कर सकती है। यही कारण है कि जिन्हें रात को पूरी नींद नहीं मिलती, जिनका शरीर बराबर सुधारा नहीं जाता, उन्हें ठंड आसानी से पकड़ लेती है। जब शरीर दिन के काम से थका हुआ हो, उसकी शक्ति कम होजाय और रात को उसे नींद न मिले तो इर्द-गिर्द की बीमारियों के कीटाणु उस पर आसानी से हमला कर सकते हैं। नीरोगावस्था में शरीर एक सुदृढ़ क़िले

की तरह होता है, जिस पर कोई बाहर का शत्रु हमला नहीं कर सकता, किन्तु जब पूरी नींद न मिलने के कारण, इसके टूटे फूटे अंगों की मरम्मत न होसके तो सब प्रकार के दुश्मन इसके छिद्रों से आसानी से अन्दर घुस आते हैं। एक विशेष बात यह है कि ये शत्रु दुर्बल भाग पर सब से पहले आक्रमण करते हैं।

हम लोग अब तक यह समझते रहे हैं कि शरीर केवल खाने, पीने, सोने और संतान-उत्पत्ति के लिए ही भगवान ने हमें दिया है; इसके सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य का हमें कुछ भी ज्ञान नहीं। हम साधारण तौर पर इसे पशु जीवन की तरह ही काम में लाते हैं, किन्तु इसका उद्देश्य बड़ा महान है। खास तौर से उन हालतों में जहाँ शरीर आत्मा का स्वामी बना हुआ है। जिस दर्जे तक हम आत्मा और मन की उच्च शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करेंगे, उतने दर्जे तक शरीर उन शक्तियों के प्रभाव से सूक्ष्मतर होता चला जाता है। क्योंकि मन ईश्वरीय शक्तियों के साथ सम्बद्ध होजाने के कारण अपने ही राज्य में सुख लाभ करने लग जाता है। उसे अपना एक आनंद का साम्राज्य मिल जाता है, इस कारण इन्द्रियों के द्वारा मज़े की इच्छा उसकी घटती चली जाती है और वह बाह्य जगत से हट कर, अपने ही घर में आनंद करने लग जाता है। संक्षेप में उसकी चटोरी आदतें तथा भोग की इच्छाएँ आप ही आप घटती चली जाती हैं। इसलिए उसे ऐसा स्थूल भोजन जो काम-वर्द्धक और उत्तेजक हो—जैसे शराब पीना, मांस खाना, स्वयं ही घृणा के योग्य बन जाते हैं और उनके स्थान पर मस्तिष्क को बल देने वाले, बुद्धि बढ़ाने वाले और इन्द्रियों को शान्त करने वाले भोजनों के प्रति हमारी इच्छा बढ़ने लगती है। जितने दर्जे

तक हमारा शरीर सूक्ष्म खुराक के कारण हलका और बनावट में फुर्तीला बन जाता है, जिसमें चीजें बहुत कम सड़ती गलतीं हैं और आसानी से मरम्मत की जा सकती है ताकि शरीर ठीक संतुलन अवस्था में रहे, तब निद्रा की भी आवश्यकता कम हो जाती है—ऐसे सूक्ष्म शरीर के लिए थोड़ी सी सात्विक ख़ुराक काफी बल देने वाली होजाती है और वह शरीर दिन भर काम करने से भी नहीं थकता।

जैसे-जैसे शरीर सूक्ष्म कणिकाओं को धारण करता जाता है और स्थूल अंश कम होते जाते हैं, त्यों-त्यों वह अपने विकास में उत्कर्ष की ओर चलने लगता है। तब यह शरीर आत्मा और मन के उच्च संस्कारों को पकड़ने में अधिक सहायक बनता है; तब दोनों आपस में एक ही पंक्ति में होजानेके कारण एक दूसरे के मददगार बन जाते हैं। जिस समय महा कवि ब्राउनिंग ने निम्नलिखित आशय के उद्‌गार कहे थे, तब उनका अभिप्राय निस्सन्देह यही था—"संसार के सभी श्रेष्ठतम पदार्थ हमारे हैं। शरीर और आत्मा एक दूसरे की बराबर सहायता करते हैं।"

असल में निद्रा शरीर की मरम्मत और आराम करने के लिए है। आत्मा को किसी प्रकार के विश्राम की आवश्यकता नहीं। जब शरीर निद्रा में आराम करता है, तब भी आत्मिक चक्र बराबर जागृत अवस्था की तरह चलता रहता है। अब प्रश्न यह उठता है कि आत्मा की उस क्रिया शीलता का हमें पूरा ज्ञान क्यों नहीं रहता? इसका उत्तर यह है कि हमारी वर्तमान अवस्था में शरीर आत्मा का स्वामी बना हुआ है और जब शरीर और आत्मा दोनों का संतुलन होजाता है और एक दूसरे के सहायक बन जाते हैं, तभी हमारी आंतरिक चेतना

जागृत हो उठती है और आत्मा की गति-विधि को हम निद्रा में देखने लग जाते हैं। ऐसी कई एक जागरूक आत्माएँ हैं जो निद्रावस्था में आत्मा की गति-विधि को बराबर जानते रहते हैं और उनका यह कहना है कि रात के समय जब शरीर आराम करता है तो आत्मा घूमने निकल जाता है। कुछ लोग तो उस समय दिन की देखी हुई घटनाओं और दृश्यों को पुनः स्मृति में लाते हैं और उन घटना के सम्बन्ध के ज्ञान को दोहराते हैं और उन्हें वे बातें बराबर स्मरण रहती हैं।

अधिकांश आदमी रात के स्वप्नों में देखे हुए दृश्यों को याद भी नहीं रखते और उनके लिए वह सारी वाक़फ़ियत नष्ट होजाती है। बहुतों का यह मत है कि रात के समय आत्मा की गति-विधि को हम बराबर याद रख सकते हैं और जिन दृश्यों को आत्मा देखता है उनका सजीव चित्र हम अपनी स्मृति में रख सकते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि जितने दर्जे तक हम उन शक्तियों को वश में कर सकें, उन्हीं के अनुसार हम अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहें जा सकते हैं और जागृत अवस्था की तरह अपने उन सब अनुभवों को कह सकते हैं जो भी हो, यह दृढ़ सत्य है कि सोते समय ठीक स्वाभाविक तौर पर प्रकाश और शिक्षा के ढंग की सामग्री को पकड़ने की शक्ति हमारे में है और हम उसे उपयोग में ला सकते हैं, जो हमारे लिए बड़ी मूल्यवान है और जिससे अधिकांश लोग वंचित रहते हैं। यदि आत्मिक जीवन, जो हमारा सम्बन्ध अनन्त के साथ करता है, सदा क्रियाशील रहता है और नींद में भी चुप नहीं बैठता तो वह मन ऐसी अवस्था क्यों नहीं बना लेता कि वह निद्रा के समय निरंतर आत्मा से प्रकाश पाता रहे और जो कुछ उसे उसमें प्राप्त हो उसे जागृत अवस्था में स्मृति में दोहरा सकें।

निस्संदेह यह किया जा सकता है और कुछ लोग इसे बड़ी आसानी से कर लेते हैं और बहुत बार ऊँचे दर्जे की स्फूर्ति आत्मा को उससे मिलती है, जो अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होती है, क्योंकि निद्रा के समय वाह्य जगत के साथ सर्वथा सम्बन्ध हट जाता है। जब इन्द्रियां शिथिल होजाती हैं और किसी प्रकार के बाहर के संस्कार शरीर पर असर नहीं डाल सकते, इसलिए नींद के समय आत्मा की शान्ति भंग करने वाली कोई चीज़ रह नहीं जाती और वह एकाग्र होकर अपना कार्य करता है।

मुझे ऐसे लोगों से परिचय है जो अपना अत्यावश्यक कार्य नींद के समय करते हैं और जो इच्छित विषयों पर अधिक प्रकाश पाते हैं। हम सब को इस बात की अनुभूति है कि यदि हम सोते समय मन में यह निश्चित करलें कि हम अमुक समय उठना है तो ठीक उसी समय हमारी नींद खुल जाती है और कई बार इस बात का भी अनुभव हुआ है कि कठिन समस्याओं का हल जो जागृत अवस्था में नहीं होसका था, रात के समय आसानी से उसका रहस्य खुल गया। एक समाचार पत्रों में लिखने वाली नारी लेखिका को मैं जानता हूँ कि जिसने इस प्रकार निद्रावस्था में एक बहुत बड़ा लेख तैयार किया था, जिसे अपनी आत्मिक शक्ति की सहायता लेने का अभ्यास था। एक बार सायंकाल को प्रबन्ध सम्पादक ने उसे सूचना दी कि उसे अमुक विषय पर एक लेख प्रातःकाल तैयार मिलना चाहिए। इस लेख के तैयार करने में साधारण तौर से अधिक परिश्रम की दरकार थी; क्योंकि इसके तैयार करने में बहुत सी सामग्री एकत्रित करनी पड़ती थी, जिसके ज्ञान के बिना लेख लिखना असम्भव था। उसे इस विषय का बहुत कम ज्ञान था और बहुत उद्योग करने पर भी इस लेख के लिए उपयुक्त सामग्री उसे

न मिल सकी। वह लेख लिखने के लिए बैठी, किन्तु उसे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उसकी सारी शक्तियाँ उसके विरुद्ध होगयी हैं। पराभव मानो सिर पर आ पहुँचा। अत्यन्त निराशा के साथ उसने अपना काम बन्द कर दिया और मन का ऐसा रुख बनाया कि जिससे निद्रा के समय अधिक से अधिक उस विषय पर सहायता होसके। वह बिस्तरे पर लेट गयी और प्रभात के समय तक निश्चिन्त सोती रही। जब सबेरे वह जागी तब रात को जो लेख वह नहीं लिख सकी थी, सर्व प्रथम उसे उसी का ध्यान आया। उसने उसे ध्यान से पढ़ा, उठी और कपड़े पहनने से पहले ही उसने उसे ज्यों का त्यों लिख डाला, मानो कोई उसे लिखवा रहा हो।

जब मन किसी खास निश्चित तरीके से ध्यान पूर्वक विचार करने का अभ्यस्त होजाता है और लगातार उसी ढंग से सोचता रहता है, जब तक कि कोई दूसरा प्रभावशाली खयाल उसका रुख बदल नहीं डाले, क्योंकि रात के समय शरीर थक जाने के कारण आराम करने लग जाता है और इन्द्रिय निष्क्रिय होजाती हैं, मन को परेशान करने वाले कारण रहते नहीं तो उस समय सोने से पहले जिस विचार-धारा को आप विशेष तौर से मन में स्थापित करेंगे, उसी ढंग से मन सो जाने के बाद काम करने लग जाता है और उस क्रिया सम्बन्धी सभी कठिनाइयों को आसानी से हल कर लेता है। मन और आत्मा दोनों उस समय चैतन्य होते हैं और वे जागृत अवस्था में रात की सभी क्रियाओं को ज्यों का त्यों स्मृति में ले आते हैं। कुछ आदमी बड़ी जल्दी इस प्रयोग के सुन्दर परिणामों को पा जाते हैं और कुछ बहुत अधिक अभ्यास करने के बाद इसमें सफल होते हैं। निरंतर अभ्यास करने से मन की यह शक्ति उत्तरोत्तर

बढ़ती जाती है, क्योंकि आकर्षण शक्ति का नियम बराबर काम करता रहता है, इस कारण निद्रा से पहले मन जिस ढंग के विचारों को अपने अन्दर स्थान देता है, उसी विचार-सरनी की शक्तियाँ उसकी ओर आकर्षित होती हैं। इस तरीके से सोते समय हम अपनी इच्छानुकूल जिस ढंग के संस्कारों और भावनाओं को अपने मन में लाना चाहेंगे, जिनसे लाभ लेने की हमारी अभिलाषा है, उन्हीं के साथ रात के समय हमारा सम्बन्ध होजाता है और हम उन से विशेष लाभ उठाते हैं। जागृत अवस्था की अपेक्षा कई तरह से निद्रावस्था के समय की मानसिक शक्तियाँ बहुत अधिक चैतन्य और सक्रिय होजाती हैं। इसलिए इस बात का हमें बड़ा ध्यान रखना चाहिए कि सोने से पहले हमारे मन में किस प्रकार की विचार-धारा चल रही है; क्योंकि हम उसीके विचारों को आकर्षित करेंगे, जैसा कि हम सोते समय मन की संस्थिति बनाते हैं। यह सब कुछ हमारे अपने ही हाथ में है।

इस प्रकार का अभ्यास करने से हम प्राकृतिक इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान इस स्थूल जगत में प्राप्त करते हैं, उसकी अपेक्षा बहुत अधिक उपयोगी, कल्याण कार्य व शांति देने वाला अनुभव हमें निद्रा के समय प्राप्त हो सकता है; केवल शर्त यह है कि हम सोने से पहले अपने मानसिक रुख को वैसे ही विचारों से भर लें और उन्हीं की आशा मन में रख कर सो जांय। जिन लोगों को इस प्रकार का रुख़ बनाने की इच्छा है, जो इसका अभ्यास करना चाहते हैं, उन्हें निम्न लिखित ढंग से किया हुआ अभ्यास उनके लिये बड़ा मूल्यवान होगा। जब किसी ख़ास विद्या पर प्रकाश डालने अथवा ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो तब सोने से पहले आप सबका कल्याण करने की भावना अपने

मन में जागृत करें। ऐसा करने से आपका मन बड़ा शांत और स्थिर होजायगा और वैसे वातावरण की रचना कर लेगा जिसमें मनोवांच्छित विषयों का ज्ञान प्राप्त करना है। इस प्रकार बाह्य-जगत से सब प्रकार के उपयोगी साधन आपके सहायक बन कर उस विषय का ज्ञान प्राप्त करायेंगे और कठिन विषयों पर आसानी से प्रकाश पड़ जाएगा। तब शान्ति के इस रुख में निद्रा लेते हुए मन एकाग्र कर लेने के साथ इच्छित विषय का ज्ञान और प्रकाश प्राप्त करने के लिए अपनी विचार तरंगों को शाँति से दौड़ाइये, सब प्रकार की शंकाओं, भय और संदेहों को निकाल डालिए, क्योंकि आपकी शक्ति के मुख्य साधन व दृढ़ विश्वास और स्थिरता ही हैं। मानसिक रुख ऐसा मज़बूत बन जाए कि आप के हृदय में यह दृढ़ विश्वास पैदा हो कि जागते समय मुझे अवश्य ही इन विषयों का ज्ञान और प्रकाश मिलेगा; मुझे इस बात में रत्ती भर भी संदेह नहीं। तब ज्योंही आपकी आँख खुलेगी, दूसरे किसी ख़्याल, किसी घटना और किसी इच्छा को हरगिज़ भी अपने सामने न लाइये, बल्कि वही ख़्याल, जिसे रात को सोते वक्त आपने मन में स्थिर किया था, वही जिस पर आपको प्रकाश और ज्ञान प्राप्त करना है, तत्काल आपके सामने आना चाहिए। जब वे तरंगें बड़े स्पष्ट तौर से आत्मा की आवाज़ के साथ अपना विषय स्पष्ट करदें और मन रात में ग्रहण किये हुए अनुभवों का चित्र खींच दे, तब फ़ौरन उन्हें लिख डालिए और उनके अनुसार कार्य कीजिये। जितने दर्जे तक आप श्रद्धा के साथ इस ढंग पर अमल करेंगे, उतने दर्जे तक आप में विषयों के ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती चली जायेगी।

यदि आपकी इच्छा निःस्वार्थ भाव से कार्य करने की है और उसकी सफलता के लिये आप अपनी किसी दिमाग़ी ताक़त

को बढ़ाना चाहते हैं अथवा अपने शारीरिक बल को बढ़ाना चाहते हैं, तब उसी के अनुसार मानसिक रुख बना लीजिये, जिसका ढंग अपनी इच्छा के अनुकूल बनाया जा सकता है। इस प्रकार आप अपने आप को पात्र बना लेंगे, अपना वैसा सम्बन्ध कर लेंगे. आप अपने अन्दर सफलता लाने वाली खास क़िस्म की शक्तियों को जन्म देंगे, जो इन परिणामों को पैदा करेंगे। कभी अपनी इच्छाओं को बल पूर्वक कहने से न घबराइये। इस प्रकार कहने से आप स्फूर्तिदायक शक्तियों को गतिवान बना देते हैं जो आपकी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये दूत की तरह चारों ओर चक्कर देती हैं। यह दूत दूसरी शक्तियों के साथ सम्बन्ध कर उन्हीं के अनुकूल वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित कर आपके लिए यह सामग्री संग्रह करता है। जो मनुष्य ईश्वरीय सिद्धान्तों के साथ अपनी जीवनचर्या बना लेता है उससे कोई अच्छी चीज़ अप्राप्य नहीं रहती। ऐसी कोई भी इच्छाएं नहीं हैं, जिनकी पूर्ति न हो सके। केवल बात यह है कि इन शक्तियों को धारण करने वाला इनका ठीक उपयोग करे और उनसे नीच प्रवृत्तियों को शान्त करने का काम न ले।

जब आप की नींद अधिक स्थिरता, शान्ति और ताज़गी देने वाली होगी तब आपकी मानसिक, आत्मिक और शारीरिक शक्तियाँ अधिक बलवान हो जांयगी। जब आप सोते वक्त प्रेम से सनी हुई भद्र कल्पनाएं, शान्ति और समता के विचार सब विश्व के लिए बाहर भेजेंगे, तब आप इस ढंग से जगत में काम करने वाली शांति और एकता की सभी शक्तियों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लेंगे।

इसी तौर पर चलने वाले एक मित्र ने हमें बताया कि कई बार आधी रात के समय उसकी निद्रा एक दम टूट गयी और

उसके मन में प्रेरणा की बिजली दमक गई जिसने उसकी योजना के सम्बन्ध में बड़ा सुन्दर प्रकाश डाल दिया। जब वह अपने बिस्तरे पर शान्ति से लेटा हुआ एकाग्रता से उस पर विचार करने लगा तो उस योजना को सफल बनाने वाली सभी बातें आप ही आप विस्तार के साथ, उसके सामने प्रगट हो गयीं। इस प्रकार बहुत सी योजनाओं को प्रारंभ किया गया और उन्हें सफल बनाया गया, जो कभी भी दूसरे किसी ढंग से पूर्ण नहीं की जासकतीं थीं। वे योजनाएं संसार के लिए अद्भुत सिद्ध हुईं और उनसे बड़े-बड़े काम निकले। यह वह मनुष्य है जो दैवी नियमों के अनुकूल जीवन व्यतीत करता है और जिसका शरीर सूक्ष्म कल्पनाओं को आसानी से पकड़ सकता है और जिसने अपने सर्वस्व को बड़ी श्रद्धा से जीवनोद्देश्य की सिद्धि के लिए समर्पण कर दिया है। वह प्राकृतिक नियमों के अनुसार जीवनचर्या रखता है और उनके साथ एक स्वर होकर रहता है। वह अच्छी तरह से यह नहीं जानता कि ये प्रेरणाएं किन स्रोतों से और किस ढंग से आती हैं। प्रत्येक अनुभवी महापुरुष की भिन्न-भिन्न शैली तथा भिन्न-भिन्न व्याख्याएं होती हैं, जिनके द्वारा वे इस रहस्यमय विषय को बतलाते हैं। लेकिन यह बात दृढ़ सत्य है कि उसी मनुष्य को ऐसी दैवी प्रेरणाएं मिल सकती हैं, जो परब्रह्म के साथ अपनी एकता स्थापित करता है और इसी बात को जानने की हमें आवश्यकता भी है।

जो लोग ऐसी प्रेरणाओं और दिव्य-दृष्टि की प्राप्ति करना चाहते हैं, उन्हें पहले वैसी अवस्थाओं को पैदा करना चाहिए और अपने आप को सर्व श्रेष्ठ दैवी नियमों के अनुकूल रहना सीखना चाहिए। इसी प्रकार के एक अनुभवी योगी ने हमें

बतलाया—"अध्यात्मवाद की शिक्षा प्राप्त करने के लिए, जबकि शरीर निद्रा ग्रस्त हो, व्यक्ति को पहले अपनी मानसिक अवस्था को उन प्रेरणाओं का स्वागत करने वाली बना लेनी चाहिए। यह अनुभूति पूर्णतया युक्ति-युक्त और स्वाभाविक है और प्रत्येक अभ्यासी को बड़ी आसानी से यह अनुभव सन्तोष-जनक ढंग से मिल सकता है। यदि उसका जीवन बाह्य जगत से हट कर अन्दर की ओर होजाय और उसकी बहिर्मुखी वृत्ति अन्तर्मुखी बन जाय, तभी यह सर्व सम्भव हो सकता है। अब हमारी अवस्था यह है कि हम बाह्य जगत की व्यर्थ की जरूरतों में दिन रात फँसे रहते हैं और उन्हीं में रत होने के कारण हमारा मन शारीरिक संस्कारों में डूबा रहता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम सब से पहले अपनी वृत्ति को ठीक कर, दैवी प्रेरणाओं के अनुकूल अपने मन की स्थिति को बनायें, तब हमें सन्तोष जनक ढंग से अन्तर्मुखी वृत्ति का रहस्य मालूम हो सकेगा। हमारे विचार ही हमें जैसे हम हैं और होंगे वैसा बनाते हैं और हमारे विचार रात के समय दिन की अपेक्षा अधिक क्रिया शील रहते हैं, क्योंकि जब हम बाह्य जगत से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं, तब आंतरिक जगत हमारे लिए बिल्कुल सजीव होजाता है और अदृष्ट जगत दृष्ट का रूप धारण कर लेता है, जिसकी अवस्थाएँ पूर्णतया मानसिक और नैतिक सिद्धियों के द्वारा व्यवस्थित होती हैं। जब हम बाह्य जगत के साधनों के द्वारा परिचय लेना छोड़ देते हैं और इन्द्रियों का सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है, तब आंतरिक साधनों के द्वारा हमें सूचनाएँ मिलने लगती हैं। जब यह बात भली प्रकार समझ में आ जायेगी और लोग इसकी क़ीमत समझ जांयगे, तब साधारण जन का यह सार्वभौम स्वभाव हो जायगा कि वह अपनी रुचि अनुसार सोते समय जिस किसी विशेष विषय को

ध्यान में रखकर सोने का अभ्यास करेगा, वही उन्हें सहज में प्राप्त होजायगा। सांसारिक विषयों में फँसे हुए राजा-महाराजा अपने सारे कर्मचारियों के साथ पशुओं की भाँति केवल निद्रा ही लेते हैं, किन्तु अभ्यासी पुरुष प्राकृतिक जगत से मुँह मोड़-कर निद्रा के समय आत्मिक ज्ञान के दृश्यों को देखता है और जागृत अवस्था में उन्हें स्मरण रखता है।

क्या कारण है कि समृद्धिशाली धनवान लोग अध्यात्मिक रहस्यों को नहीं समझ सकते और निद्रा के शान्त समय का सदुपयोग नहीं कर सकते? इसके विपरीत एक अभ्यासी पुरुष निद्रा में घटित घटनाओं की व्याख्या कर नये-नये रहस्यों का उद्घाटन करता है। वह न केवल अपने स्वप्न को ही बातें बतलाता है बल्कि दूसरों के स्वप्नों की भी व्याख्या करता है। वह एक ऋषि है, जिसमें छिपे हुए रहस्यों को सुलझाने की शक्ति है। दोनों प्रकार के मनुष्यों में भेद यह है कि धनवान तो पशुवत् भोगों में डूबा हुआ है और उसका जीवन सूक्ष्मतर कल्पनाओं को पकड़ने की सामर्थ्य नहीं रखता; उसके विपरीत जो ऋषि है, उसने यम-नियमों की साधना कर, अपने शरीर को एक डाइनेमो बना लिया है जिसमें नाना प्रकार के विद्युत की उत्पत्ति होती है और वह सब कल्पनाओं को पकड़ कर अपने अनुकूल बना सकता है—असली शक्ति है पवित्र जीवन की। धनवान के पास धन तो है, मोटर गाड़ियाँ भी हैं, नौकरों की भरमार भी है और खाने-पीने की वस्तुएँ भरपूर हैं, लेकिन यह सब पदार्थ उसे ईश्वरीय प्रेरणा के पकड़ने के योग्य नहीं बनाते, बल्कि उसमें बाधक बनते हैं। इस कारण ऐसे समृद्धि-शाली का जीवन दयनीय होता है, क्योंकि वे गुलामों के गुलाम हैं और इन्द्रियों के दास बन कर केवल पशु-जीवन व्यतीत

करते हैं। सच्चा जीवन उसी का है, जिसने अपने आप को पहचान लिया है, प्राकृतिक भोगों का ग़ुलाम नहीं, जो इन्द्रिय सुखों का मुँहताज नहीं, जिसके ज्ञान नेत्र खुल गये हैं, जिसका जीवन पवित्र है और जिसने अनन्त के साथ एकता स्थापित करली है; उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं। यही भेद ऋषि और राजा महाराजा में है। जितने दर्जे तक, जितनी हद तक मनुष्य सच्चरित्रता का जीवन व्यतीत करता है, प्रकृति के सब नियमों के अनुकूल अपनी जीवन-चर्या बनाता है, उतने ही दर्जे तक उसका अपना जीवन उपयोगी बन जाता है, न केवल उसके अपने लिए ही उपयोगी बनता है, बल्कि उन सब के लिए जो उसके सम्पर्क में आते हैं। कोई व्यक्ति अपनी इच्छा के विरुद्ध दुःखद अवस्था में नहीं रह सकता। यदि उसे उस नरक से निकलना है तो उसका उपाय उसकी मुट्ठी में है। जिस क्षण वह उससे निकलने का दृढ़ संकल्प करेगा, संसार की कोई शक्ति उसे उस अवस्था में नहीं रख सकती। मनुष्य सर्वोत्कृष्ट पद को अपनी इच्छानुकूल पा सकता है, जब उसकी अभिलाषा उत्कर्ष की ओर जाने की होजाती है, तब संसार की सभी शक्तियाँ मिलकर भी उसे असफल नहीं बना सकतीं। यह स्मरण रखना चाहिए कि विश्व की सब श्रेष्ठतर शक्तियाँ उसकी पीठ पर हैं। जब कोई निद्रा से जागे और चैतन्यता में आए, उस समय उसका मन विचित्र तौर से ग्राह्य और संस्कारी होता है। कुछ समय के लिए बाहर के जगत से उसका सम्बन्ध टूटा हुआ होता है। उस समय मन अधिक स्वतन्त्र और स्वाभाविक अवस्था में होता है। उसकी अवस्था फ़ोटोग्राफ़ी के उस लज्जाशील प्लेट की तरह होती है, जिस पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म कल्पनाओं के चिह्न पड़ जाते हैं। यही कारण है कि प्रातःकाल के समय मनुष्य के

अन्दर अत्यन्त सुन्दर संस्कार उठते हैं, क्योंकि उस समय अपने काम-काज के संस्कारों की विस्मृति सी होती है और मनुष्य का चित्त एकाग्र होता है। यही कारण है कि बहुत से लोग दिन का सब से अच्छा काम प्रभात के समय कर सकते हैं।

किन्तु जीवन को एक विशेष ढाँचे में ढालने के लिए एक और उपयोगी बात का ध्यान रखना चाहिए। मन प्रभात के समय एक कोरे कागज़ के ताव की तरह होता है और हम इस समय बड़े कायदे के साथ मन को बड़ी बुद्धिमत्ता से उत्थान के पथ की ओर ले जाने में समर्थ हो सकते हैं और इस प्रकार दिन के लाभदायक कार्य को प्रारम्भ कर सकते हैं। प्रत्येक प्रातःकाल जीवन के प्रारंभ करने का ताज़ा दिन समझिए। हम मानो नव जीवन के द्वार पर खड़े हैं। यह सब हमारे अपने ही हाथ में है और जब प्रभात नवीनता के साथ प्रारंभ होता है, तब गुज़रा हुआ दिन भूतकाल होजाता है, जिसके साथ अब हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। हमारे लिए यह जानना पर्याप्त होगा कि गुज़रे हुए दिन को जिस प्रकार हमने काम में लिया है, वर्तमान दिन उसी के अनुसार फलदायी होता है और जिस प्रकार हम अपने आज के दिन को काम में लायेंगे, उसी प्रकार हमारा भावी दिन फल देने वाला होगा।

प्रत्येक दिन हमारे जीवन में नवीनता लाता है और प्रत्येक प्रभात जगत के प्राणियों को नवजीवन प्रदान करती है। जो लोग जीवन यात्रा में थके हारे और दुःखी हैं, उनके लिए वह प्रभु आशा भरा संदेश भेजता है— करुणामय की वह दिव्य आशा मेरे और आपके लिए एक जैसी है।

जो गुज़र गया सो गुज़र गया, वह पुनः हाथ नहीं आता है, वह तो हाथ से निकल गया और उस पर बहाये हुए आँसू

भी सूख गये; पिछली भूलें दूर चली गयीं, अब उन पर खाक डालिए; पिछले घावों में से काफ़ी रक्त निकल चुका, उनका कष्ट भी हमने सह लिया; वे जख्म अब भर चुके और अच्छे होने लगे।

इसलिये पिछले ज़ख्मों को भूल जाइए; अब उन्हें याद करने से कोई लाभ नहीं; जो होचुका सो होचुका, उनके लिए अब पछताना व्यर्थ हैं। वे दयालु भगवान अपनी अनुकम्पा से हमारे पाप धो डालेंगे; केवल आने वाले दिन हमारे लिए देवदूत बन सकते हैं; आज का दिन, केवल आज का ही हमारा परम सहायक है।

आकाश की ओर देखिए, जहां नभ-मण्डल में तारे चमक रहे हैं और हमारे पैरों के नीचे की भूमि नव-आशा का संचार करती है और हमारे थके मांदे अंगों को फ़ुर्तीला बनाती है, जिससे हम भगवान भास्कर का स्वागत कर सकें और उषा का आनन्द लेसकें—साथ ही ओस की बूँदों की शीतलता प्राप्त करें और प्रभात की सुखद समीर हमारे फेंफड़ों को मज़बूत बनावे। प्रत्येक भाग्यशाली दिन हमारा आह्वान करता है और हमारी आत्मा को मधुर गान सुनाता है; हमारे मार्ग में अब कोई बाधा नहीं डालती; शंकाएँ दूर भाग गयीं और सम्भव क्लेश रफ़ूचक्कर होगये; उठिए हिम्मत कीजिए और अपने जीवन में नया अध्याय खोलिए।

चरित-संगठन का यही गूढ़ रहस्य है कि हम अपने प्रत्येक दिन को उसके पहले प्रभाव के घंटों में अत्यन्त उपयोगी बनाने का प्रयत्न करें, जिससे शेष सारा दिन उन्हीं सुन्दर विचारों के साथ उत्कर्ष की ओर बढ़ता चला जाय। यह सरल तरीक़ा किसी भी मुमुक्षु को परमात्मा की अनुभूति प्राप्त करा सकता

है—ऐसी अनुभूति जिसे मनुष्य स्वप्न में भी ख़याल में नहीं ला सकता और इस सम्बन्ध में ध्यान में लाने वाली कोई वस्तु रह नहीं जाती, जिसे मनुष्य अनुभूति में न ले आवे—चाहे वह किसी समय अथवा किसी स्थान में क्यों न हो।

ईश्वर प्राप्ति का यह मार्ग सभी स्थितियों के नर नारियों के लिए सम्भव हो सकता है। क्योंकि इसके द्वारा सभी अपने ही उद्योग से जीवनादर्श की सिद्धि को सम्भव बना सकते हैं। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसके हृदय में सच्ची धुन हो और जो दृढ़व्रती हो, तिसपर भी वह अपने उत्कृष्ट आदर्श की ओर न बढ़ सके। तब यह बात पूर्णतया सत्य और सम्भव है कि आकर्षण सिद्धान्त के अनुसार ज्यों ज्यों मनुष्य लगन के साथ अपना कार्य सम्पादन करता जायेगा, त्यों त्यों प्रत्येक क्षण, प्रत्येक मिनट और प्रत्येक घंटा वह सफलता के निकट आता जायेगा और इस प्रकार वह सदा उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा। अन्त में एक समय ऐसा होगा, जबकि वह स्वाभाविक तौर पर आध्यात्मिक पथ का अनुगामी बनेगा; उस समय उसके लिए सब सिद्धियां आसान हो जांयगी।

इस प्रकार हम विश्व के सर्वोत्कृष्ट नियमों और शक्तियों से एकता स्थापित कर सकते हैं और परिणाम स्वरूप वे नियम और शक्तियां हमसे प्रेम करने लगेंगी तथा हमें पग-पग पर मदद देंगी और अक्षरशः हमारे लिए सब साधन जुटा देंगी, क्योंकि हमने श्रद्धापूर्वक उनके आदेशों का पालन किया है।

आठवां अध्याय

अखंड शांति की अनुभूति

यह पवित्र विश्वात्मा आनन्द शांति का स्रोत है। ज्योंही हम इसके साथ एकता स्थापित कर लेते हैं, त्योंही शांति और एकत्व की धारा का रसास्वादन हमें मिलने लगता है, क्योंकि शांति के अर्थ हैं एकत्व की स्थापना। एक गम्भीर आंतरिक अभिप्राय इस सत्य सिद्धांत की जड़ में काम कर रहा है। अध्यात्मवादी होने का अर्थ सजीव और शांत होना है। इस तथ्य को पहचानना कि हम आत्मा हैं और इसी विचार में निमग्न रहना ही अध्यात्मवाद की ओर मुंह करना है और इस प्रकार एकता और शांति का वातावरण पैदा करना है। हमारे इर्द-गिर्द लाखों स्त्री-पुरुष चिन्ता के मारे हुए दुखी और अशांत दिखाई पड़ते हैं, जो इधर उधर शांति के लिए भटक रहे हैं और जिनके शरीर और आत्मा थकावट से चूर हैं। वे शांति की तलाश में दूसरे देशों की यात्रा करते हैं, पृथ्वी-प्रदक्षिणा करते हैं, तीर्थों की हवा खाते हैं, हरिद्वार में जाकर गंगाजी में डुबकियां लगाते हैं, मुक्ति की तलाश में काशी या प्रयाग की धूल फांकते हैं, किन्तु शोक! उन्हें कहीं भी शांति उपलब्ध नहीं होती। निःसंदेह उन्हें शांति नहीं मिलती और न कभी मिलेगी, क्योंकि वे अभागे उन स्थानों में जाकर शांति तलाश करते हैं, जहां शांति की छाया तक नहीं। उन्हें चाहिए तो यह कि वे अपने अन्दर शांति की खोज करें, किन्तु अज्ञानवश करते हैं उसकी खोज बाह्य जगत में। शांति केवल अपने अन्दर ही मिल सकती है और जब तक मनुष्य उसे अपने अन्तस्थल में नहीं पायेगा, वह उसे कहीं नहीं मिल सकती।

देखिए, बाह्य प्राकृतिक जगत में शांति नहीं है। यह तो हमारे अपने आत्मा में ही केन्द्रीभूत है। हम भले ही इधर उधर की यात्रा करें, हम भले ही भिन्न भिन्न मार्गों से इसके लिए भटकते फिरें, हम भले ही इन्द्रियों द्वारा इसकी प्राप्ति करना चाहें, हम भले ही बाह्य जगत में शांति के लिए कितनी ही दौड़ धूप करें, लेकिन यह सदा ही हमारी पकड़ से बाहर रहेगी, क्योंकि हम उसकी खोज वहां कर रहे हैं, जहाँ उसका नामो-निशान नहीं। जितने दर्जे तक हम आत्मा के आदेशानुसार शारीरिक इन्द्रियों का सदुपयोग करेंगे और प्राकृतिक पदार्थों को उसके अनुकूल काम में लाएँगे, उसीके अनुसार आनन्द और शांति की कल्पनाएँ हमारे अन्दर प्रवेश करेगीं। लेकिन जितने दर्जे तक हम में सात्विकता का अभाव होगा, उतने दर्जे तक ही बीमारी दुःख, क्लेश और अशांति के कीटाणु शरीर में प्रवेश करेंगे।

इस आध्यात्मिक शांति की सच्ची व्याख्या यह है कि हम ईश्वर के साथ एकता स्थापित करें। बच्चे जैसी सरलता और निर्दोषता शांति की अनुभूति के लिए सर्व श्रेष्ठ साधन है। ईश्वर को हम निर्मल और निर्दोष मानते हैं। शिशुकाल में हमारी ऐसी ही अवस्था होती है। हमारा ऐसे कई एक लोगों से परिचय है, जिन्हें आत्मा की परमात्मा के साथ एकता की अनुभूति इतनी सुन्दर और स्पष्ट हो गयी है कि वे उसके आनन्द के मारे मानो हर्ष से उमड़े पड़ते हैं। इस समय हमारे मन में खास तौर से एक उदाहरण है। एक नवयुवक जो कई वर्षों तक रोगी रहा, जिसकी तन्दुरुस्ती बिल्कुल नष्ट होचुकी थी, जिसके मन में यह समा गया था कि उसकी जिन्दगी बेकार और बोझा ही है, जो जिधर दृष्टि डालता था, उधर निराशा ही मुँह बाऐ

खड़ी दिखायी देती थी—वह स्वयं भी दूसरों के लिए मनहूस दिखायी देता—थोड़ा समय हुआ कि उसे ब्रह्मज्ञान की भली प्रकार जानकारी हुई और उसके जीवन में महान परिवर्तन आगया। उसने ब्रह्मज्ञान की धारा के सामने अपना हृदय खोल दिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि उसने पूर्ण आरोग्यता लाभ करली और आज शारीरिक तन्दुरुस्ती का नमूना बना हुआ है। बहुधा जब हम उससे मिलते हैं, वह गद्गद् होकर यह कह उठता है—"आहा! इस ज़िन्दगी में क्या मजा है। अमरीका की सरकारी पुलिस में एक कर्मचारी था, जिसने हमें बतलाया था कि बहुत बार जब वह नौकरी खतम कर रात को घर लौटता था तो उसे उस अनंत शक्ति के साथ एकता का ऐसा सजीव अनुभव होता कि वह हर्ष के मारे फूला नहीं समाता; उस समय उसे ऐसा प्रतीत होने लगता था कि मानो उसका शरीर आकाश में उड़ रहा हो। ईश्वर के साथ एकता की अनुभूति-प्राप्ति से अनन्त शांति ऐसी व्याप जाती कि हमारा रोम रोम प्रसन्नता के मारे नाचने लगता है। हमारे पैर मानो पृथ्वी पर टिकते ही नहीं—ब्रह्मधारा का ऐसा शान्त वातावरण हमारे अन्तःकारण में उत्पन्न होजाता है कि हम आनन्द के सरोवर में डूबकियां लगाने लगते हैं।

वह साधक जो इस प्रकार की उच्च अनुभूति को पा जाता है, कभी किसी से भय नहीं खाता, क्योंकि उसे अपने सर्व व्यापी रक्षक का सजीव ज्ञान होता है। अब वह जानता है कि ईश्वर उसके साथ है, फिर भला भय उसके निकट कैसे आ सकता है। ऐसे मनुष्य के सम्बन्ध में ही गीता के दूसरे अध्याय में यह सत्य सिद्धान्त लागू होता है कि उसकी आतमा को न तो तलवार काट सकती है, न अग्नि जला सकती है और

न पानी ही डुबा सकता है। ऐसे मनुष्य के निकट कोई दुःख न आ सकेगा। जंगल के सब हिंसक पशु, विषैले कीड़े और भयंकर घाटियाँ उसे अभयदान देंगी।

ऐसे ही स्त्री-पुरुष हैं, जिनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। ज्योंही भय हमारे अन्तःकरण में प्रवेश करेगा, त्यों ही हम उसके अनुरूप डरावनी वस्तु के लिए दरवाज़ा खोल देंगे। निर्भय व्यक्ति को कोई भी हिंसक पशु हानि नहीं पहुंचा सकता। जिस क्षण खतरे के संस्कार को हम अपने अन्दर लाते हैं, हम उसी समय अपने लिए खतरा मोल लेलेते हैं। कुछ पशु ऐसे हैं, जो फ़ौरन मनुष्य की आँखों में डर को पहचान लेते हैं, कुत्ता उनमें से एक है। डरपोक आदमियों को ऐसे पशु काट खाते हैं। जो क्षुद्र बातें हमें पहले परेशान और हैरान किया करती थी, वे प्रभु के साथ एकता धारण करने के बाद हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं। मनुष्यों के प्रति जो निराशा के अनुभव हमें होते थे, वे अब बिल्कुल बन्द हो जाते हैं, क्योंकि हम में मनुष्यों को पहचानने की शक्ति आ जाती है। हम उनकी आँखों की खिड़कियों में से उनके छिपे हुए आन्तरिक स्वार्थी भावों को सहज में ही जान लेते हैं, इसलिए ऐसे लोगों को हम मुँह नहीं लगाते, जिनसे निराशा मिलने की सम्भावना हो।

कुछ दिन हुए एक भलामानस रास्ता चलते हुए अपने एक मित्र से मिला। वह बड़े तपाक़ से प्रेम-भाव दिखला कर कहने लगा—"दोस्त, मैं आप से मिल कर बहुत ख़ुश हुआ हूं!" मित्र ने उसकी आँखों में आँखें गड़ा कर उत्तर दिया—"नहीं, भाई तुम्हें मुझसे मिलकर प्रसन्नता नहीं हुई, क्योंकि यह तो तुम्हारे गालों की लाली ही बतला रही है"। इस पर वह बहुत झेंप कर कहने लगा—"आजकल समाज में ऐसा ही कहने का

चलन है। हमें बहुत सी बातें बनावटी करनी पड़ती हैं, जो हमारे अन्तःकरण के विरुद्ध होती हैं।" इस पर उस मित्र ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"यह भी तुम्हारी भूल ही है। शिष्टाचार की कृत्रिमता टिकाऊ नहीं होती। उसकी पोल जल्दी खुल जाती है, इसलिए कल्याणकारी मार्ग यही है कि हम अपने व्यवहार में खरापन लावें और सदा सत्याचरण करें। यह आप को मेरा सत्परामर्श है, जिसे आप गाँठ बांध लें।"

जैसे ही हमें लोगों के चहरे देख कर उनका स्वभाव पहचानने की योग्यता होजाती है, वैसे ही हमें उनसे किसी प्रकार की निराशा नहीं होती। हम उनका असली मूल्य कूतने लग जाते हैं और उन्हें बहुत ऊँचे दर्जे पर नहीं बिठलाते। ऐसी ही आदत—बिना समझे-बूझे किसी की तारीफ़ के पुल बाँध देना—हमारे जीवन में सदा निराशा लाती है, क्योंकि उस मनुष्य का असली स्वभाव कभी न कभी खुल जाता है और अधिकांश यह भी होता है कि हम अपने मित्र के साथ अन्याय कर बैठते हैं। जब हम अपने प्रभु के साथ एकता स्थापित कर लेते हैं, तब दूसरों के द्वारा की हुई निन्दा, चुग़ली और मित्रों के हाथ से बदसुलूकी हमें कुछ भी परेशान नहीं करती। जब हम भली प्रकार इस बात से परिचित हैं कि हमारी जीवनचर्या परमात्मा के बतलाये हुए सत्य और न्यायशील नियमों के अनुकूल व्यवस्थित है, जो नियम सारे विश्व में व्याप्त हो रहे हैं और जो प्राणी मात्र को आपस में मिलाते हैं तथा जिनका शासन अंत में विजयी होता है, तब कोई भी दुष्परिणाम हमारे निकट नहीं फटकता, चाहे कुछ भी हो हमारा संतुलन कभी नहीं बिगड़ता और हम शांत तथा स्थिर चित्त रहते हैं। अब जो चिन्ता, शोक और दुःख हम पर प्रभाव डाल लेते हैं, वे

फिर हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते और हमारे अन्दर प्रभु-एकता द्वारा उत्पन्न मेधा हमें संसार के पदार्थों के साथ सच्चे सम्बन्धों को पहचानने के योग्य बना देती है। जो आत्माएँ इस प्रकार का उत्कृष्ट अनुभव पा जाते हैं, उन्हें मृत्यु द्वारा मित्रों की जुदाई और प्यारों का अभाव किसी प्रकार का कष्ट नहीं देता, क्योंकि वे जान जाते हैं कि मृत्यु नाम की कोई भयदायक चीज़ नहीं। प्रत्येक आत्मा उस अनन्त जीवन का भागीदार है, जो उसे अनादि काल से बापौती से मिला है। वह जानता है कि पाँच भूतों के शरीर के गिर जाने मात्र से ही आत्मिक जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उत्कृष्ट विश्वास से उत्पन्न जो आत्मिक शांति उसने प्राप्त करली हैं उसकी सहायता से वह असली परिस्थिति को समझ जाता है और निर्बल मनुष्यों को सम्बोधित कर कहता है—"ओ मेरे प्यारे मित्रो! विवेकी बनिए और आँखों से आँसू सुखा डालिए; जो शव तुमने अर्थी के ऊपर रखा है और जिसे तुम श्मशान में ले जा रहे हो वह आँसू बहाने के योग्य नहीं है। क्योंकि यह तो केवल सीप मात्र है, जिसमें से मोती निकल चुका है। सीप की अब कोई क़ीमत रह नहीं गयी, इसे श्मशान में ही छोड़ दीजिए. इसके अन्दर रहने वाला जो मोती रूपी हंस था, वह तो चला गया और अपने पीछे यह निर्जीव शरीर छोड़ गया है।"

जहाँ तक आत्मा की जुदाई का सम्बन्ध है, विवेकी पुरुष को इस बात का ज्ञान होजाता है कि आत्मा की शक्तियाँ सीमित नहीं हैं और उसकी परमात्मा के साथ एकता चाहे, वह इसी शरीर के अन्तर्गत हो, चाहे दूसरे जन्म में, किन्तु उसकी प्राप्ति सब प्राणियों की पहुंच में है। जितने दर्जे तक परमात्मा की अनुभूति आपको होगी, उतने दर्जे तक आत्मा और परमात्मा

के सम्बन्ध का ज्ञान आप को होगा। हम अपने ग्रन्थों में इस बात को पढ़ते हैं कि देवता लोग आशीर्वाद देने आया करते थे। वे देवता यदि प्राचीन काल में आते थे तो वे अब भी आने चाहिए, क्योंकि ईश्वरीय नियम, सदा एक रस रहते हैं और वे जैसे उस समय थे, वैसे अब भी हैं। प्राचीन काल में अभ्यासी लोग अपने आप को ऐसा तपस्वी बनाया करते थे, ऐसी साधना किया करते थे कि जिसके द्वारा वे इन देवताओं को बुला सकें; क्योंकि अब हम उन विद्याओं में रुचि नहीं रखते और हमारा विश्वास इन पर से उठ गया है. इसलिये अब यह चमत्कार मनोविज्ञान द्वारा ही सिद्ध किये जा सकते हैं। जब अध्यात्मवाद के रहस्य खुल जांयगे, तब हम उन देवताओं को उसी प्रकार बुला सकेंगे।

जो लोग ईश्वर से सम्बन्ध कर मानसिक शांति स्थापित कर लेते हैं, उनके रोम-रोम से शांति की रश्मिऐं चमकने लगती हैं और वे जहां जाते हैं, वहीं शांति का वातावरण पैदा कर देते हैं। राह चलते हुए एक अधेड़ उम्र की स्त्री की भेंट एक मनुष्य से हुई। उसे देखकर वह पुल्कित होउठी और प्रसन्न होकर बोली—"आप से मिलकर मैं बड़ी खुश हुई हूँ।" वह कौन-सी बात थी, जिसके कारण उसका हृदय इतना गद्‌गद् हो उठा। हमारे इर्द-गिर्द ऐसे ईश्वर-भक्त मौजूद हैं, जिनके आशीर्वाद, जिनकी मंगल कामनाएँ सदा दूसरों के लिए चलती रहती हैं। ऐसे मनुष्य जहाँ जाते हैं, वहीं प्रकाश लाते हैं और संतप्त हृदयों को शांति पहुंचाते हैं। ऐसे मनुष्यों की उपस्थिति दुःख को हर्ष में बदल देती है, भय साहस में परिवर्तित होजाता है, निराशा आशा का रूप धारण करती है और निर्बलता शक्ति प्राप्त करती है।

यह बात उस व्यक्ति के विषय में है, जिसने अनन्त के साथ अपनी एकता को अनुभव किया है और उसकी शक्तियों को चारों ओर प्रकाशित करता है। जिसके विषय में यह कहा जाता है कि उसने अपना केन्द्र पा लिया है और इस सारे विश्व में केवल एक ही केन्द्र है—और वह है अनन्त शक्ति जो सब के अन्दर-बाहर काम कर रही है। अतएव वह जिसने अपना केन्द्र स्थापित कर लिया है, ऐसा अभ्यासी पुरुष है, जिसकी प्रभु से लौ लग चुकी है और जो अपने आपको शरीर नहीं, बल्कि आत्मा जानने लग गया है।

आत्मिक शक्ति वाले ऐसे ही पुरुष के विषय में हम यहाँ चर्चा कर रहे हैं; जिसने अपना सम्बन्ध, अपना गठबन्धन आत्मिक शक्ति से कर, उस असीम शक्ति केन्द्र से नाता जोड़ लिया है, जिससे वह लगातार शक्ति खींचता रहता है और उसके सभी स्रोतों का लाभ उसे मिलता है। इस प्रकार केन्द्रीभूत होकर अपनी शक्तियों को पहचान कर, अपने स्वरूप को जानता हुआ, जब वह अपने विचारों को बाहर भेजता है तो ऐसे विचार असीम शक्ति केन्द्र से सम्बद्ध होने के कारण बलशाली होजाते हैं। इतना ही नहीं बल्कि आकर्षण शक्ति के उस अद्भुत सिद्धांत के अनुसार—समान गुण वाले पदार्थ एक दूसरे को आकर्षित करते हैं—वह अपने विचारों के बल से उन सब शुद्ध विचार वाले लोगों की शक्तियों को आकर्षित करता है, जो आकाश में उसकी भाँति प्रभु से सम्बन्ध कर शक्ति प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रकार वह विश्व की उस शक्ति स्रोत के साथ अपने आप को जोड़ लेता है, जो शक्ति संघ सारे विश्व में काम कर रहा है। अतएव ऐसा व्यक्ति जिसके अन्दर अनन्त ज्ञान की धारा बहने लग गई है, जो अध्यात्म शक्ति का पात्र होगया है, परमात्मा से वही अधिकारी

बल प्राप्त करता है और उसे ही अपना साधन बनाता है। वह न तो मनुष्य बुद्धि—वैचित्र्य को देखता है, न उसकी किताबी योग्यता की परवाह करता है और न उसके शास्त्रीय पांडित्य के कारण उसको ऊँचा दर्जा देता है—वह तो केवल उसी की ओर आकर्षित होता है, जिसने संसार में अपना केन्द्र तलाश कर लिया है। प्राकृतिक नियम के अनुकूल ही ये क्रियाएँ होती हैं। सब विभागों में उसके शक्ति सम्पन्न और बलवान संकल्प, रचनात्मक कार्य करते हैं तथा उसे सफलता दिलाते हैं। उसे चारों ओर से अपने कामों में बराबर मदद मिलती है। इस प्रकार क्रियाशील बन कर जिस प्रकार के पदार्थों को वह देखता है और अपने आदर्श की रचना करता है, वे उसके शक्तिशाली संकल्पों की सहायता से ठास स्वरूप ग्रहण करते चले जाते हैं। उसकी कोरी बातें ही नहीं रह जातीं, बल्कि जो वह सोचता है, वह मूर्तिमान बन जाता है। ऐसी निराकार रहस्यपूर्ण शक्तियां उसकी सहायता करती रहती हैं, जो थोड़े या अधिक समय के बाद दृष्टिगोचर होजाती हैं।

संक्षेप में ऐसे मनुष्य को डर और पराजय का कभी मुँह नहीं देखना पड़ता। संयोगवश यदि ऐसा कोई एक-आध अवसर आ भी जाय तो वह फ़ौरन अपनी मजबूत इच्छा-शक्ति से उन्हें दूर भगा देता है। बाहर के यह शत्रु उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते, क्योंकि वह उनकी ओर झांकता भी नहीं। वह चूंकि दूसरी बिचार-धारा में मग्न होता है, इस कारण निराशा, दीर्घ सूत्रता, पराजय और अस्थिरता के विचार उस पर कुछ असर नहीं डालते। वह, जो अकर्मण्य होता है और जिस पर डर का भूत सवार रहता है, न केवल उसकी शक्तियों को ही घुन लग जाता है, बल्कि उसके नीरोग शरीर

को लक़वा मार जाता है, क्योंकि इर्द-गिर्द की सभी इस प्रकार की मनहूस तथा प्रमादी शक्तियाँ उसे आकर घेर लेती हैं और उस पर आक्रमण करने लग जाती हैं। जितने दर्जे तक उसमें बुराइयां खींचने की ताक़त होती है, उसके अनुसार वह ऐसे अकर्मण्य और अस्थिर साथियों द्वारा प्रभावित होता है। उसे नयी शक्ति तो क्या मिलेगी, उल्टा वह प्रतिदिन अपनी ताक़त को भी खोता चला जाता है। वह अपने जैसे निकम्मे साथियों की पंक्ति में खड़ा होजाता है। यह भी उसी उपरोक्त कुदरती क़ायदे के अनुसार ही होता है अर्थात् "Like attrcts like" कोढ़ी को कोढ़ी मिलता है। इस भय से कहीं हमारे हाथ में आई चीज कोई छीन न ले, हम उसे सिरहाने के नीचे अथवा विस्तर के भीतर छिपा देते हैं, जब स्वाभाविक ही हमें खोजने के भय की कीमत चुकानी पड़ती है। इसी प्रकार बल बर्द्धक विचार अन्दर और बाहर से अपने जैसे ही विचारों को पकड़ लेते हैं; ऐसे ही निर्बल भावनाएें अन्दर और बाहरी निर्वल संकल्पों के अनुगामी बनती हैं। साहस जहाँ बल उत्पन्न करता हैं, वहां डर निर्बलता का जनक है। उसी नियम के अनुसार साहसी पुरुष सफलता प्राप्त करता है और कायर पराजय का मुंह देखता है। जो नर-नारी साहसी होती हैं, वे अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करती हैं; वे परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेती हैं और उनकी शक्तियों का लोहा संसार मानता है। "संशय आत्मा विनश्यति" की उक्ति अक्षरशः ठीक है। जिन मनुष्यों के हृदयों में संशय रहता है, जो सन्देह के वातावरण से ओत-प्रोत रहते हैं, जो अविश्वासी हैं, वे सदा डर और बाधाओं के कारण पंगु होजाते हैं; जरा-जरा सी घटनाएें उन्हें अपनी कठपुतली बना लेती हैं और वे उन्हीं के आश्रित होकर अपनी कमजोरी को दूसरों से छिपाते हैं।

हमारे सब के अन्दर उन सब घटनाओं का कारण मौजूद है, जो हमारे साथ आये दिन घटती हैं। एक मनुष्य ने यदि अपनी आंखें खो दी हैं और दूसरों से यह कहता है कि यह घटना मेरे पिछले जन्म के कर्मों के कारण हुई है तो उसकी यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती। वह अपने हृदय में नेत्र-हीनता के कारण को भली प्रकार जानता है, वह दूसरों को भले ही न बतलाए। हमारा भविष्य हमारी मुट्ठी में है। इस दृष्ट संसार में प्रत्येक दृष्ट घटना का अदृष्ट कारण हमारे अन्दर मौजूद है। हमारे आत्मिक जगत में बाहर के सांसारिक दृश्यों के असली कारण मौजूद हैं। आत्मिक जगत के इस अदृष्ट बीज को आप कारण रूप समझिए और इसी के अनुसार आप को बाहर का कार्य जगत दिखाई देगा, जो उसी का परिणाम है। कार्य रूप की बनावट कारण रूप के अनुसार ही होती है। जैसा कोई व्यक्ति अपने अदृष्ट संसार में जीवन रखता है उसी के अनुसार वह दृष्ट जगत में कर्म करता हुआ अपनी सृष्टि की रचना करता है। आप यदि बाहर के दृष्ट जगत में कोई परिवर्तन लाना चाहते हैं तो उसके लिए आपको किसी दूसरे के पास जाकर गिड़गिड़ाने की जरूरत नहीं; दूसरा कोई आपको सहायता नहीं करेगा और यदि करेगा भी तो वह अस्थायी होगी। क्योंकि जब तक आपके अन्दर का कारण रूप उससे अनुकूल नहीं बन जाता, तब तक कभी भी आपके बाहर की अवस्था सन्तोषजनक ढंग से सुधर नहीं सकती। इस तथ्य को स्पष्ट समझ लेने से उन सब हजारों स्त्री-पुरुषों को कितनी बड़ी सहायता मिल सकती है, जो हमारे इर्द-गिर्द निराशा के समुद्र में गोते खा रहे हैं। उन हजारों बीमार और दुःखी आत्माओं को इस तथ्य से आरोग्यता मिल सकती है—ऐसी आरोग्यता जो उनके लिए जीवन-पर्यन्त वरदान का काम दे सकती है। वे जो इस समय अशांति और बेचैनी में डूबे हुए

हैं, उन्हें हमारा यह सत्परामर्श कैसी शीतलता दे सकता है और उनके हृदयों को आह्लादित कर सकता है।

लाहौर नगर में गीता भवन के बरामदे में खड़ा हुआ मैं सड़क पर जाते हुए उन हज़ारों स्त्री-पुरुषों को देखा करता था, जो संसार के भोगों में व्यस्त अपने कीमती जीवन को खो रहे थे और जिन्हें पता नहीं था कि काल रूपी भेड़िया उनके पीछे पीछे बराबर जा रहा था। ऐसे स्त्री-पुरुष भय, सन्देह और अविश्वास से बहुत जल्द प्रभावित होजाते हैं और उनमें दृढ़ता की मात्रा बहुत ही कम होती है। उनकी आत्माएँ पंगु और नामर्द बन जाती हैं। उनकी शक्तियां छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और उनके उद्योग कभी फल नहीं लाते—यह केवल इसलिए कि वे शारीरिक भोगों में लिप्त रहते हैं। उनके चारों ओर डर का वातावरण मुंह बाये खड़ा रहता है—भूख का डर अभाव का ख़ौफ़, लोक-निन्दा का त्रास तथा अपनी सम्पत्ति के खोजाने की शंका, बीमारी और मृत्यु के ख़ौफ़नाक संस्कार उन्हें सदा सताते रहते हैं। लाखों लोगों के अन्दर भय एक स्वभाव सा होगया है। यह विचार सर्वत्र व्यापक है, चारों ओर से यह हमको घेरे हुए है।

इसलिए भयभीत मनुष्य सदा घाटे में रहता है। एक मनुष्य कहता है—"आप बात ठीक फ़रमा रहे हैं, लेकिन क्या करूँ, भय मेरा पिंड नहीं छोड़ता। यह मेरा स्वभाव सा होगया है।" ऐसे भाव भली प्रकार प्रदर्शित करते हैं कि आपने कभी भी भय' को त्यागने का इरादा नहीं किया। पहले आप अपने आप को पहचानिए, जिससे आपको अपनी शक्तियों का ज्ञान हो और जब तक आप उन्हें जानेंगे नहीं, तब तक उनका पूर्ण तथा विवेकी ढंग से उपयोग आप कैसे कर सकेंगे? अपने

मुँह से कभी यह मत कहिए--"मैं यह कर नहीं सकता।" यदि आप माने हुए हैं कि आप उसको कर ही नहीं सकते तो बात खतम होजाती है। फिर आप में करने की शक्ति कहाँ से आयेगी। यदि आप यह मान लें कि आप कर सकते हैं और उसके अनुसार हिम्मत भी करें तो न केवल कार्य सिद्ध ही हो जायगी, बल्कि आपके अन्दर अद्भूत स्फूर्ति आ जायेगी। महाकवि बर्जिल ने जब उन कवियों के विषय में लिखा कि जो दौड़े में जीतने वाले थे तो उन्होंने एक सत्य सिद्धान्त कह डाला--"वे जीत सकते हैं, क्योंकि वे जीतने का संकल्प रखते हैं।" दूसरे शब्दों में मन का इस प्रकार रुख ही उनके अन्दर जीतने वाली आत्मिक शक्तियों को जागृत कर देता है, जो उन्हें दौड़ में जीतने के योग्य अध्यवसाय और शक्ति भर देता है।

अच्छा, अब इस विचार को लीजिए--"मैं कर सकता हूँ" यह एक बीज है, जो कर्म योगी के हाथ में एक ब्रह्मास्त्र का काम करता है। जब वह उस बीज को अपनी चैतन्य आत्मा में रोपेगा, उसे पानी देगा, उसे खाद पहुँचायेगा, तब वह चारों ओर से शक्ति संचय कर एक बलवान वृक्ष का रूप धारण कर लेगा। यह आपके अन्दर क्रियाशील आत्मिक शक्तियों को केन्द्री भूत कर देता है, जो इस समय तक इधर उधर बिखरी हुई, निष्क्रिय पड़ीं थीं। अब यह अन्दर से भोजन पाकर बाहर की शक्तियों को भी अपनी ओर खींचती हैं। तब यह आपके ही अनुरूप स्वभाव वाले बलवान आत्माओं की महान शक्तियों की मदद पा सकता है--ऐसी आत्माएँ जो निर्भय, बलवान और साहसी हैं। इस प्रकार आप ऐसे विचार वाले संघ के सदस्य हो जायेंगे। यदि आप अपने इस संकल्प में विश्वास रखते हैं और आपको उसकी पूरी धुन है, तो वह समय बहुत शीघ्र

आयेगा, जब कि सब प्रकार के भय काफ़ूर हो जांयगे और आप निर्बलता के अवतार तथा परिस्थितियों के दास होने के स्थान पर शक्ति स्तम्भ और परिस्थितियों के स्वामी बन जांयगे।

हमें अपने जीवन में बहुत अधिक विश्वास की आवश्यकता है--ऐसे विश्वास की जो हमें यह सिखलाए कि बुराई की अपेक्षा भलाई में कहीं अधिक कार्य करने की शक्ति मौजूद है। उस अनन्त प्रभु पर दृढ़ विश्वास और उसके द्वारा अपने में उसकी शक्तियों का धारण करना--यह नुस्खा हम में अदम्य साहस भर देता है; चाहे कैसे ही आंधी, तूफान क्यों न आयें, चाहे कैसी अन्धकार मय घड़ियां उपस्थित क्यों न हों, हममें उस तत्व का ज्ञान कि हम प्रभु की गोद में हैं, अदम्य शक्ति भरता है। जैसे लाखों सूर्य और सौर्य-जगत आकाश में प्रभु के आश्रित हैं--ऐसा विश्वास जब हम में होजाता है तो फिर भला हमारे लिए कौनसी बात असम्भव रह सकती है। जैसे संसार ब्रह्म के आशीर्वाद से अनादि नियमों के द्वारा व्यवस्थित है, हम भी उसी प्रकार उसके साथ सम्बन्धित होजाने के कारण उसकी व्यवस्था के अन्तर्गत हो जांयगे--"हे प्रभो, आप हमें पूर्ण शांति दीजिए, हमने अपने आपको आपके चरणों में समर्पण कर दिया है।"

संसार में ईश्वर के सिवाय कोई भी निश्चत सुरक्षित और सुदृढ़ शक्ति-केन्द्र नहीं। ऐसी अवस्था में जब हम इस तथ्य को भलीप्रकार समझ जाते हैं कि उस अनन्त प्रभु के शक्ति-केन्द्र से इच्छानुकूल बल प्राप्ति का साधन हमारे ही हाथों में है, अपने ही पुरुषार्थ से उस दैवी शक्ति का प्रदर्शन हम कर सकते हैं, तब हम अपने में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दैवी शक्ति की भावना की वृद्धि होती हुई पायगे; क्योंकि हम उस प्रकार प्रभु के साथ

सहयोग से काम करते हैं और वह भी पुरस्कार में हमारे साथ सहयोग करता है। उस समय हमें इस बात की पूरी अनुभूति हो जाती है कि वे शक्तियां हमारे साथ भलाई के निमित्त काम करती हैं और वे उसी की सहायक होती हैं, जो प्रभु से प्रेम करता है। तभी डर और बाधाओं के बीज, जिन्होंने अब तक हमारे ऊपर प्रभाव जमा रखा था, दग्ध हो सकते हैं और उनके स्थान पर आत्मविश्वास तथा प्रभु भक्ति का वरदान हमें प्राप्त होता है; ये दो सद्‌गुण ऐसी अतुलनीय शक्ति बन जाते हैं कि जिसके सामने संसार की कोई बाधा ठहर नहीं सकती।

यह प्रकृतिवाद स्वाभाविक तौर पर हमें निराशा की ओर लेजाता है और यह इसके अतिरिक्त कर ही क्या सकता है। आत्मिक शक्ति का ज्ञान जिसे हम साधन बना कर कार्य करते हैं, वह इसी प्रकार सब क्षेत्रों में हमारा सहायक बनता है। यह आत्मिक शक्ति जो पवित्रता की मूर्ति है, हमें ब्रह्मानन्द की ओर ले जाती है। निराशा कमज़ोरी की माता है और आशा शक्ति का जनक है। आशा तो अपना स्रोत परमात्मा से पाती है, जो न केवल प्रत्येक तूफ़ान को कुचल डालती है, बल्कि आत्मिक के अन्दर की चैतन्य शक्ति का प्रसार बढ़ाती है। यह आत्मिक शक्ति तूफ़ानों को नष्ट करने में जिस शांति और धैर्य का परिचय देती है, वही सद्‌गुण सुन्दर बसन्त ऋतु में भी बराबर प्रगट होते हैं अर्थात् उस व्यक्ति के लिए सुख-दुःख, स्तुति-निन्दा, मान-अपमान सब एक जैसे हो जाते हैं, क्योंकि उसे इस बात का पता लगा जाता है कि अन्त में भलाई की ही विजय होती है। वह आशा से परिपूर्ण विश्वासी आत्मा इस बात से भिज्ञ है कि उस सर्वशक्तिमान प्रभु की बलवान भुजाएं उसकी रक्षा कर रही हैं। ऐसे ही पुरुष को स्थित-प्रज्ञ कहते हैं। वह यह

मानता है कि ईश्वर पर विश्वास करे और उसकी न्याय शीलता का धैर्य से इन्तज़ार करे। स्मरण रखिए कि वह दयालु भगवान् आप को मनोवाञ्छित फल देगा। यह वरदान उसी को मिलता है, जो उसका अधिकारी है। क्या इससे अधिक स्पष्ट कहने की आवश्कता है ?

जितने दर्जे तक हम उस परमात्मा की शक्ति के साथ मिलकर काम करेंगे, उतने दर्जे तक ही हमें फल की परवाह नहीं होगी। इस सत्य सिद्धान्त की पूर्ण अनुभूति का जीवन मनुष्य को सच्ची शान्ति प्रदान करता है—ऐसी शांति जो स्थायी है, जो वर्तमान को सम्पूर्ण बनती है। जिस प्रकार का हम जीवन व्यतीत करते हैं, भावी दिन उसी के अनुसार बलशाली होंगे। जो इस प्रकार का दृढ़ संकल्प कर अपने इर्द-गिर्द के झगड़ों और फ़सादों में शांत रहता है और इस तथ्य को अनुभव कर यह घोषणा करता है कि जो कुछ मैंने किया है, प्रभु पर दृढ़ विश्वास रख, जिस प्रकार का जीवन मेरा रहा है, उस शक्ति स्रोत के साथ अपना गठ बंधन कर जैसी पवित्र शक्तियां मैंने प्राप्त की है, उन्हीं के अनुसार मेरी जीवन-नौका इस भवसागर में आनन्द पूर्वक बढ़ती चली जायेगी जिस वस्तु का मैं अधिकारी हूं, उसे मुझ से कोई नहीं छीन सकता। आकाश में तारागण, जैसे नियम पूर्वक अपनी क्रियाएं कर रहे हैं, उसी प्रकार मेरी नैया भी उस न्यायशील प्रभु की कृपा से शान्ति-पूर्वक अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करेगी और मैं उस अनन्त की ओर प्रसन्नता से बढ़ता चला जाऊँगा।

नवां अध्याय

चतुर्मुखी-शक्ति की अनुभूति

यह पवित्र आत्मा अनन्त शक्ति का स्रोत है। जितने दर्जे तक हम इस का लाभ लेंगे, उसी के अनुसार यह हमारे द्वारा प्रदर्शित होगी। ईश्वर के साथ सभी बातें शक्य हैं। उसकी सहायता से असम्भव भी सम्भव बन सकता है। शक्ति-प्राप्ति का सच्चा रहस्य ईश्वर के साथ एकता स्थापित करने में हैं, जो प्रत्येक वस्तु के भीतर काम कर रहा है। जितने दर्जे तक हम इसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ेंगे, उसी सीमा तक यह विचार तभी सम्भव कठिनाईयों से ऊपर उठ सकेंगे।

जब यह बात है कि शक्ति-प्राप्ति के लिये इधर-उधर भटकने की क्या आवश्यकता है, तब क्यों हम इधर-उधर के टोटकों, इधर उधर की फ़िज़ूल बातों में अपनी शक्ति नष्ट करें ? क्यों न हम सीधे पहाड़ की चोटी पर चढ़ने का प्रयत्न करें और निरर्थक ही इधर उधर की घाटियों, पगडंडियों और कन्दराओं में सिर पटकें।

सभी धर्माचार्यों ने इस बात का उपदेश दिया है कि ईश्वर ने मनुष्य को सब प्राणियों से सर्व श्रेष्ठ बनाया है। यह बात शारीरिक बनावट में ही सत्य नहीं, बल्कि आत्मिक तत्व में भी इसका दर्जा सब से ऊँचा है। यद्यपि बहुत से इस प्रकार के पशु हैं, जो शारीरिक बल में मनुष्य से उच्चतर हैं, किन्तु यह मनुष्य अपनी मानसिक और आत्मिक शक्तियों द्वारा बलवान से बलवान पशु को भी नीचा दिखा सकता है।

जो बात उससे प्राकृतिक शरीर द्वारा न बन सके, उसे वह अपनी आत्मिक शक्ति से सिद्ध कर सकता है। जितने सीधे तौर पर वह अपना परिचय आत्मिक शक्तियों से लेता है और यह समझ लेता है कि वह आत्मा है और शरीर नहीं, उस अनुभूति के अनुसार जीवन व्यतीत करता है, उतने दर्जे तक वह अपने आप को शरीर समझने वाले आदमियों की अपेक्षा अधिक शक्ति शाली बना लेता है। संसार की सभी धार्मिक पुस्तकें मोजिज़ों (Miracles) अर्थात् रहस्यपूर्ण बातों से भरी पड़ी हैं। वे किसी खास समय और स्थान में सीमित नहीं। एक युग की बातें दूसरे युग से अधिक रहस्यपूर्ण अधिक स्पष्ट पायी जाती है। जो कुछ संसार के इतिहास में चमत्कारिक बातें एक युग में हुई हैं, वे दूसरे युग में भी दोहराई गयी हैं, क्योंकि कुदरत के कायदे सभी युगों में एक जैसे रहते हैं। ये चमत्कार (मोजिज़े) उन पहुँचे हुए सिद्धों के द्वारा किये गये थे, जिन्होंने अपने आपको ईश्वर के साथ सम्बन्धित कर लिया था और इस प्रकार देवता बन गये।

अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि मोजज़ा क्या बला है? कोई असाधारण अनहोनी घटना ही मोजज़ा कहलाती है। जो घटना मनुष्य की साधारण स्थिति में घटती है, उसे हम स्वाभाविक घटना कहते हैं। किन्तु जब उन्हीं परिस्थितियों में कोई असाधारण धार्मिक बात होजाय, कोई चमत्कारिक बात घट जाए तो उसे मोजजा कहा जाता है—मोज़ज़ा इससे अधिक दूसरी कोई चीज़ नहीं। जो मनुष्य उस सर्वशक्तिमान प्रभु से अपनी एकता की अनुभूति कर लेता है और साधारण मनुष्यों की समझ से बाहर दैवी कानूनों को जानने लग जाता है या उनका उपयोग करता है, वही मोजज़ा करने की

क्षमता रखता है। वह मनुष्य तो दैवी नियमों से परिचित है और जो साधारण मनुष्य हैं उनसे भिन्न—ऐसे मनुष्य जो केवल परिणाम ही देखते हैं, किन्तु कारण समझने का प्रयत्न नहीं करते, ऐसे लोगों के लिए वह असाधारण कार्य मोजज़ा जान पड़ता है। इस प्रकार के असाधारण काम करने वालों को साधारण जनता पैग़म्बर कह कर पुकारती है। वही साधारण लोग यदि उन ईश्वरीय नियमों से परिचित हो जांय, तो वे सहज में ही स्वयं उन चमत्कारों को कर सकते हैं और उन्हें भी वैसी शक्तियों का अनुभव हो सकता है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि जो घटनाएँ पहले चमत्कार रूप में मानी जाती थीं, वही ज्ञान के फैलने पर साधारण बोध होने लगती है। यह सब मानव-विकास पर निर्भर है। जब मनुष्यों की बुद्धि का विकास नहीं हुआ था तो वे सूर्य-ग्रहण को देख कर आश्चर्य में आजाते थे और भूचाल उन्हें अत्यन्त भयभीत कर देता था। किन्तु आज रेडिओ और ग्रामोफोन के युग में यह सब प्राकृतिक घटनाऐं किसी को विस्मित नहीं करतीं।

अच्छा तो यह स्पष्ट है कि मोजज़े असाधारण मनुष्यों द्वारा ही किये जा सकते हैं, ईश्वर का साक्षात्कार करने वाला व्यक्ति साधारण मनुष्यों के समूह से ऊपर उठ जाता है और चूँकि उसे ईश्वरीय नियमों से जानकारी हो जाती है, इस कारण उसके लिए चमत्कारिक बातें सहल सी बन जाती हैं। जो शक्तियाँ वह प्राप्त कर लेता है, उन्हें दूसरे लोग भी प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक युग में यही नियम लागू होते हैं। सभी स्त्री-पुरुष इस प्रकार शक्तिशाली भी बन सकते हैं और शक्तिहीन भी—जिस क्षण कोई व्यक्ति इस तथ्य को समझ लेता है कि उसमें उत्थान की शक्ति है, तब वह भी महापुरुष बन सकता है,

उसी समय उसका उत्थान आरंभ हो जाता है। हम अपनी इच्छानुसार बाधाओं की दीवारें अपने मार्ग में खड़ी कर लेते हैं। जैसे मक्खन सदा छाछ के ऊपर तैरता है, ऊपर तैरना उसका स्वाभाविक गुण है, उसी प्रकार ऋषि मुनि निर्बलताओं से ऊपर रहते हैं।

बहुत से लोग परिस्थितियों के प्रभाव की चर्चा करते हैं। हमें इस बात को अनुभव करने की आवश्यकता है कि परिस्थितियां मनुष्य को नहीं बनातीं, बल्कि मनुष्य परिस्थितियों को बनाता है। जब हम इस बात का अनभव कर लेंगे तो परिस्थितियों के प्रभाव का डर हमें नहीं रहेगा और हम कमल की तरह पानी में रहते हुए भी पानी से ऊपर उठ सकेंगे, क्योंकि हमारा अपना विशेष उद्देश्य उन परिस्थितियों के बीच में रहने का होता है, इसलिए हमें इस ढंग से काम करना चाहिए, जिससे हमारे परिश्रम से वे परिस्थितियां बिल्कुल बदल जांय। यही सिद्धान्त खानदानी आदतों पर और प्रभावों पर लागू होता है।

हम प्रायः यह प्रश्न लोगों के मुँह से सुनते हैं—"क्या हम विरोधी अवस्थाओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं?" ऐसा प्रश्न वही मनुष्य पूछेगा, जिसने अपने स्वरूप को नहीं पहंचाना। यदि हम इसी विश्वास पर जमे रहेंगे कि हम उन परिस्थितियों पर काबू नहीं पा सकते तो सम्भव यही होगा कि वे परिस्थितियां बराबर वैसी ही बनी रहें। जिस क्षण हमें अपने स्वरूप की अनुभूति हो जायगी और हम अपने अन्दर की जबर्दस्त शक्तियों के विषय में जान लेंगे अर्थात् आत्मा और मन की अदम्य ताकतें—तब हमारी पैतृक आदतें और विश्वास धीरे धीरे कमज़ोर पड़ने लग जायेंगे और जितनी जल्दी तथा जिस दर्जे तक हमें अपनी शक्तियों की अनुभूति होती जायेगी, उतनी ही शीघ्रता

से वे निर्बलताएँ काफ़ूर हो जाएंगी।

और सुनिए—"कभी अपने मुँह से यह मत कहिए कि यह मेरी पैतृक कमज़ोरी है, इसलिए मैं अमुक बीमारी को नहीं हटा सकत।" क्योंकि मनुष्य के लिए कुछ भी अशक्य नहीं, इस लिए ऐसी बात कभी मुँह से न निकालिए। "पिछले जन्म के पापों के कारण मुझे दण्ड स्वरूप यह निर्बलता मिली है अथवा अमुक बुरी आदत की वजह से मेरा जीवन दुःखमय बन गया है।" इस प्रकार की धारणा सर्वदा त्याज्य है। दादा, परदादा की वंशावली के पीछे एक शक्तिशाली महान् दैवी वंशावली है, जिसके आप वंशज हैं—वह है महान् दैवी वंशावली, जिसने सारे ब्रह्मांड को उत्पन्न किया है, उसके भागीदार होने से सब प्रकार की सफलताएँ हमारे सामने हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। आपने अपने बुज़ुर्गों स केवल प्राकृतिक शरीर पाया है, आत्मा नहीं अभी तक आप अपने आपको शरीर ही समझ रहे हैं, इसीलिए उन पैतृक निर्बलताओं से दबे हुए हैं।

देखिए, ऐसी कोई ऊँची से ऊँची चोटी नहीं, जिस पर आप नहीं चढ़ सकते। सब प्रकार की विजयों के राज-तिलक आप को मिलेंगे, केवल उस के लिए सच्चा विश्वास चाहिए। आप का कैसा भी अपराध क्यों न हो, आपको निराश नहीं होना चाहिए और कमर तोड़ कर बैठना नहीं चाहिए। उठिए, अपने हाथ में ईश्वरीय विश्वास की मजबूत लाठी पकड़िए। पृथ्वी पर कोई ऐसा अधिकार नहीं, जो आदमी की शक्ति से बाहर हो। हमें अपने आप को उस अनादि अनन्त प्रभु की शक्तियों का हक़दार मानना चाहिए। कोई बाधा आत्मिक शक्ति के सामने ठहर नहीं सकती, क्योंकि आत्मा का ईश्वरीय सम्पत्ति में हक़ सब से श्रेष्ठतम है, यही उसका सब से श्रेष्ठ कवच है।

और देखिए। संसार में ऐसे बहुत से स्त्री-पुरुष हैं, जो दूसरों के स्वार्थ-साधन बन कर अपने व्यक्तित्व का नाश करते हैं और दूसरों के हाथ की कठपुतली बन कर अपनी शक्तियों का ह्रास करते हैं। क्या आप संसार में शक्तिशाली बनना चाहते हैं या कठपुतली? यदि शक्तिशाली बनना चाहते हैं तो अपने आप को पहचानिए। अपने आप को आत्मा जानिए। अपने आत्मा के अन्दर जो परमात्मा की ध्वनि है, उसका आदेश सच्चाई से पालन कीजिए और तब समाज, रूढ़ी और अबोध मनुष्यों के द्वारा बने हुए लोकाचार की तनिक परवाह न कीजिए। क्योंकि ऐसे नियम किसी आदर्श सिद्धान्तों के सहारे बनाए नहीं गये। वे नियम जो किसी के लक्ष्य के सहारे बनाए जाते हैं, प्रत्येक समझदार स्त्री पुरुष के लिए मान्य होते हैं। अपने व्यक्तित्व को सदा कायम रखिए। समाज में भेड़ों की संख्या बहुत अधिक है, जिनमें नवीनता लाने की शक्ति नहीं होती और जो पुराने दक़ियानूसी ढंग से जीवन व्यतीत करने के अभ्यस्त हैं, ऐसे लोग संसार में कोई परिवर्तन नहीं ला सकते। इसलिए वे दूसरों को भी अपने जैसा बनाए रखना चाहते हैं। आप का व्यक्तित्व ही आपके विकास का सर्वश्रेष्ठ साधन है। एक बड़े प्रसिद्ध लेखक ने यह बात कही है कि वर्तमान काल का सभ्य मनुष्य सोसाइटी नाम की मशीन का एक पुरज़ा बना हुआ अपनी बुद्धि और विवेक को ताक़ पर रख कर आँखें मूंदे चला जा रहा है। यदि आप इस प्रकार अपने व्यक्तित्व को लोकाचार की इस धारा के साथ बहने देंगे, तब आप भी अवनतशील हालात के बनाने में सहायक होंगे। जिन लोगों को प्रसन्न करने के लिए आप इस दुनियादारी के गुलाम बनते हैं, समय आएगा कि आप उन्हीं लोगों की दृष्टि से गिर जायेंगे।

इसके विपरीत यदि आप अपने व्यक्तित्व की रक्षा कर अपने माने हुए उसूलों पर क़ायम रहेंगे, तब वही समाज आप का आदर करने लगेगा। यदि आप बुद्धिमान और दूरदर्शी होंगे तो आप अपने नीरोग प्रभाव से गिरे हुए समाज को अच्छा बनाने तथा ऊपर उठाने में सहायक बन सकेंगे और संसार में नीरोग और श्रेष्ठतर वातावरण पैदा कर सकेंगे। तब दुनियां आपका आदर करेगी, आप लोगों के हृदयों में ऊँचा स्थान पायेंगे और आपका यश स्थायी होगा। क्योंकि आप एक असाधारण व्यक्ति बन जायेंगे, तब आप का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाएगा।

अतएव, वीर आत्माओं के विषय में यह कहा जाता है कि उनकी ओर सब अवस्थाओं के लोग—आबाल, वृद्ध, युवा, निर्धन और धनवान—सभी आकर्षित हुए बिना नहीं रहते, यहाँ तक कि पशु भी उनके प्रभाव में आ जाते हैं। अपने आत्मा के अनुकूल जीवन बना लेना यही सबसे बड़ा तप है। कोई मनुष्य यह शंका करता है कि क्या व्यावहारिक पुरुष के लिए यह अच्छी नीति न होगी कि वह परिस्थितियों के अनुसार अपना चाल-ढाल बना ले? इसके उत्तर में हमारा प्रश्न यह है—"आप अच्छी नीति किसे कहते हैं?" — हमारे विचार में अच्छी नीति यही है कि पुरुष सदा अपने अन्दर की आवाज को सुनें, अपने स्वरूप को पहचाने और अपने आपको धोखा न दे। जीवन का यह मुख्य सिद्धांत होना चाहिए कि हम सदा अपने आत्मा का आदर करें और उसे कभी धोखा न दें, तब जिस प्रकार दिन के बाद रात और रात के बाद दिन नियम पूर्वक प्रगट होते हैं, इसी प्रकार तब आप किसी को भी धोखा नहीं दे सकेंगे। जब हम ईश्वर की ध्वनि के अनुकूल चलते हैं

और हमारे जीवन सत्य सिद्धांतों के आश्रित हैं, तब लोकापवाद का भय हमें नहीं सतायेगा और दूसरों के द्वारा जय जयकार का न होना हमें अखरेगा नहीं आपको इस बात का दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि ईश्वर॰ आपकी पीठ पर है, जितना अधिक आप अपने सिद्धांत को छोड़ कर; दूसरों को ख़ुश करने का प्रयत्न करेंगे, तब परिणाम यह होगा कि उतनी ही अधिक बुद्धि-शून्यता आप में आजायेगी और आप उनकी धमकियों से सदा डरते रहेंगे। आपके अपने जीवन का शासन केवल आप के और ईश्वर के बीच की चीज़ है और जब आप ईश्वर को छोड़ कर दूसरे किसी प्रभाव में पड़ कर अपने जीवन का शासन चलायेंगे. तब आप को समझ लेना चाहिये कि आप पथभ्रष्ट होगये हैं। जब हम अपने अन्दर के स्वराज्य को पा लेते हैं और अपने आपको उस अनन्त में केन्द्रीभूत कर लेते हैं, तब दुनियादारी के कानूनों के हम दास नहीं रहते। जब हम ईश्वरीय नियम के अनुसार चलते हैं, तभी हम दूसरों को भी दैवी नियमों के अनुकूल चलने के योग्य बना सकते हैं। सांसारिक रूढ़ियों के दास ये स्वार्थी लोग केवल ईश्वरीय नियमों का पालन कर अपने जीवन को उच्च बना सकेंगे।

संक्षेप में जब हमने उस केन्द्र को पा लिया, तब वह सुंदर सादगी, जो महापुरुषों के जीवन का आकर्षण होती है, हमारे जीवन में भी प्रवेश करेगी। तब हमें फल की अकांक्षा नहीं रहती, तभी मानसिक कमज़ोरियों का भूत हमारा पीछा छोड़ता है। फल की तृष्णा, जो मनुष्य के अंदर उच्चता के अभाव की द्योतक है, सदा साधारण मनुष्यों में उनके संकल्प की शैथिलता को प्रगट करती है, उसकी अवस्था ऐसे मनुष्य की तरह होती है, जिसमें दूसरों को आकर्षण करने वाला कोई विशेष गुण तो

होता नहीं और जो अपनी लोकेषणा की प्यास बुझाने के लिए कोई विचित्र बात कर गुजरते हैं—जैसे अपने घोड़े की पूंछ काट देना अथवा अपने घर की दीवारों पर राम राम या अन्य कोई ऐसे ही शब्द लिख देना।

ऐसे मनुष्यों की पोल शीघ्र खुल जाती है, तब दुनियां उन्हें बेवकूफ़ बनाती है—उन्हें ख्याति की अपेक्षा निन्दा ही अधिक मिलती है। बुद्धिमान और विवेकी स्त्री-पुरुष जब दूसरों के सम्पर्क में आते हैं तो फ़ौरन उनके हृदय के भावों को भांप कर उनकी स्वार्थ परता को ताड़ जाते हैं और उस प्रकार उनके बहकाये में नहीं आते। वही मनुष्य महान है जिसके अन्दर स्वाभाविक महत्ता है। कौवा यदि हंस की चाल चलने लगे तो हंस थोड़े ही बन सकता है, उल्टा वह अपनी चाल भी भूल जाता है। जो मनुष्य स्वभाव से ही सद्गुणों से विभूषित होते हैं, उन्हें बनावटी मोर के पंख नहीं लगाने पड़ते। किसी ने सच कहा है—

> नहीं मुहताज जेवर का जिसे ख़ूबी ख़ुदा ने दी;
> कैसा खुशनुमा लगता है देखो चांद बिन गहने।

जिन मनुष्यों ने अपने अन्दर की शक्तियों को पहचान लिया है, वे देखने में तो कुछ विशेष कार्य करते नहीं, किन्तु वे करते बहुत कुछ हैं; उनका कार्य देखने में बहुत थोड़ा इसलिए प्रतीत होता है कि वे ईश्वरीय शक्तियों के साथ सहयोग कर काम करते हैं और अपने कामों की डुग्गी नहीं पीटते। संसार में विज्ञप्ति अधिक की जाती है और काम थोड़ा होता है। लोकेषणा में फंसे हुए मनुष्य इसी पथ पर चलते हैं। महान काम करने वाले अपना ढोल नहीं बजाते। वे अनन्त के साथ सम्बन्ध कर, उसी के आदेशानुसार अपना चरित्र

बनाते हैं। वे अपनी जिम्मेदारी को ईश्वर पर छोड़ देते हैं और स्वयं विनयी बनकर सेवा करते हैं। वे ख्याति के प्रति बे परवाह रहते हैं और अपने आप को ईश्वरपरायण बना लेते हैं। वे अख़बारों में प्रसिद्धि के लिए नहीं दौड़ते और न सम्पादकों की खुशामद में दफ़्तरों के चक्कर काटते हैं। ऐसे मनुष्यों के यश फैलाने का काम स्वयं ईश्वर करता है। इसलिये उच्च शक्तियों की प्राप्ति का सरल मार्ग बाह्य-जगत में काम करने वाली एजेन्सियों का सम्बन्ध आत्मिक शक्तियों के साथ लगा देने में है।

क्या आप चित्रकार हैं? तब जितने दर्जे तक आप अपने अन्दर की शक्तियों को जागरूक कर लेंगे, उन्हीं के अनुसार आप की महत्ता बढ़ेगी, अन्यथा आप मामूली चित्रकार बने रहेंगे। यदि अपने चित्र में आप ऊंचे दर्जे की प्रेरणा भरना चाहते है तो वह प्रेरणा आपको आत्म दर्शन से ही मिल सकती है। सात्विक शक्तियां प्राप्त करने के लिए आपको पूर्णतया उस अनन्त शक्ति के झरने की ओर मुँह करना चाहिए, क्योंकि वही प्रेरणा का दिव्य स्रोत है।

क्या आप प्रभावशाली वक्ता बनने की इच्छा रखते हैं? जितने दर्जे तक आप अपने अन्दर की दैवी शक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करेंगे, जो आपको अपना साधन बनाकर काम करेंगी, तभी आप श्रोताओं के हृदयों में प्रेरणा, उनके मानसिक जगत में क्रान्ति और उनकी जीवनियों में परिवर्तन लाने की प्रतिभा प्राप्त करेंगे। यदि आप अपने शारीरिक व्यक्तित्व और प्राकृतिक शक्तियों के भरोसे तथा केवल अपनी पुस्तक-योग्यता के सहारे व्याख्यान देंगे, तब आप व्याख्यान-वाचस्पति भले ही कहलाने लग जांय, किन्तु श्रोताओं के हृदय पर आधिपत्य नहीं जमा सकते। यदि आप सचमुच सुनने वालों के दिलों को

पकड़ना चाहते हैं तो पहले आपको अपना जीवन पवित्र बनाना होगा और फिर प्रभु के साथ एकता स्थापित कर दैवी शक्तियों की सहायता से अपना आचरण उत्कृष्ट बनाना होगा, तब भगवान आपको अपना साधन बना कर आप में प्रेरणा भरेंगे और आप एक ओजस्वी-वक्ता बनकर सुनने वालों के पापों का परित्राण कर सकेंगे।

क्या आप रागी हैं? तब आप अपने हृदय के पटों को खोलिए और ईश्वरीय ध्वनि को राग अलापिए तब आप देखेंगे कि जितना संगीत का अध्ययन आपने किया है, वह उस दैवी सहायता से हज़ारों गुणा प्रतिभाशाली बनकर आपके आप के कण्ठ से निकलेगा। आप के स्वर में तब ऐसा ओज और ऐसा माधुर्य आजायगा कि जितने भी सुनने वाले होंगे, वे सब मंत्र मुग्ध होकर उसका आनन्द लेंगे और आप का प्रभाव अद्वितीय होगा।

जब जंगल में हम लोग भ्रमण करने जाते हैं और वहाँ अपनी छोलदारी जंगल में गाढ़ देते हैं तो वहाँ पर एक अजीब दृश्य देखने में आता है। जब काश्मीर की घाटी में, बनिहाल की तलेटी में, जहाँ चश्मेशाही उछल उछलकर पानी की धार बहाता है और जिससे जेहलम नदी निकलती है, वहीं एक बार सन् १६२० के मई, जून के महीनों में, सेव और नाशपाती के बगीचे के अन्दर, मैंने अपना डेरा किया था। जब सवेरे उषाकाल में सूर्य की लालिमा आकाश में फैलने लगती थी, तब मैं अपने बिस्तरे पर लेटा हुआ प्रकृति की नैसर्गिक छटा को देखा करता था। पहले बिल्कुल निस्तब्धता, तब कहीं कहीं पक्षियों का चहचहाना और जैसे ही उषा अपने सौंदर्य के साथ घाटी में उतरना प्रारंभ करती और रश्मियों के रंग

खिलने लगते, तब पक्षियों का वह कलरव धीरे-धीरे बढ़ने लगता और देखते देखते सारी घाटी पक्षियों के मीठे राग से गूंजने लगती। आहा! अद्भुत, अत्यन्त अद्भुत वह दृश्य !! ऐसा प्रतीत होता था मानों प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक लतिका, प्रत्येक गुल्म, प्रत्येक कली और पत्ता स्वयं आकाश और पृथ्वी—सब मिलकर एक स्वर में आलाप करने लगते थे।

वहाँ मैं उस घाटी में लेटा हुआ जब उस मधुर राग को सुन रहा था, जब लगातार वह ईश्वरीय आनन्दमयी ध्वनि पर्वतों में गूंज रही थी, मेरे हृदय में यह आवाज उठी—"संगीत की कला सीखने के लिए यहाँ कितनी बढ़िया सामग्री है!" काश कि हम इस प्रभात वेला से कुछ संगीत सीखते। यदि हम भी इन पक्षियों की तरह अपने हृदयों से ईश्वरीय ध्वनि को निकाल सकते तो हम में कैसी अद्भुत संगीत शक्ति समाज के हृदय को परिवर्तन करने की हो जाती। कैसे कैसे रागी तथा वक्ता हम में उत्पन्न हो सकते हैं।

यही कारण है कि जंगलों में रहने वाले प्राचीन काल के ऋषि मुनि प्रकृति के साथ विहार करते थे। उनका जीवन स्वाभाविक था। वहीं उन्होंने 'सामवेद' के उच्चतम संगीत शास्त्र की रचना की और उन मंत्रों का गा-गा कर ईश्वरीय ध्वनि का आनन्द लूटा। वे नित्यप्रति पक्षियों का स्वाभाविक गाना सुना करते थे। जंगलों में घूमते हुए परमात्मा की स्तुति करते हुए वे उषाकाल में ही अरण्य की नैसर्गिक छटा का सौंदर्य देखते थे। भारतवर्ष में जो ऊँचे दर्जे का संगीत विकसित हुआ, वह उसी सौंदर्य के अध्ययन का प्रताप है। अपने उस संगीत के बल से ही उन्होंने हिंसक पशुओं को वश में किया था। भय और शंका से रहित वे ऋषि कुमार भारत के घने जंगलों में आश्रम

बनाकर रहते थे, जहाँ हिंसक पशु उनके मित्र बनकर उनके संग विचरते थे। यह सब चमत्कार उन्होंने अपने अन्दर की ईश्वरीय शक्तियों के सहारे से ही किया था।

अतएव जब हम अपने आपको ऊँचे दर्जे की अध्यात्म प्रेरणा का स्वागत करने के योग्य बना लेते हैं, तो हमें कभी भी निराशा का मुँह देखना नहीं पड़ता। यदि कभी हमें निराशा का सामना करना भो पड़ जाय तो हम हिम्मत नहीं हारते।

क्या आप लेखक हैं ? ऐसी अवस्था में आपको अपनी सफलता के लिए एक मूल सिद्धान्त याद रखना चाहिए। जब आप लिखने बैठें तो पहले अपनी आत्म परीक्षा कर लीजिए। सत्यनिष्ठ और निर्भय बनिए। अपने आत्मा के प्रेरणा के प्रति निष्ठावान बनिए। यह भी याद रखिए कि मनुष्य जैसा अन्दर से होता है, उससे अधिक वह कदापि भी नहीं लिख सकता। अगर वह चाहता है कि उसका लेख उत्कृष्ट हो तो वह लेख उसकी आत्मा का अनरूप मात्र होगा, जो उसकी जीवन रूपी पुस्तक में अपने ही रूप को चित्रित करेगा। वह अपने लेख में उससे अधिक बल नहीं भर सकता, जितना उसके अन्दर मौजूद है।

यदि आप का व्यक्तित्व ऊँचे दर्जे का है, आप अपने इरादे में दृढ़ हैं, हृदय से सत्यनिष्ठ हैं, सदा सात्विक प्रेरणाओं का स्वागत करते हैं, तब आपकी पुस्तकों के पृष्ठों में ऐसी अद्-भुत अवर्णनीय मौलिकता आ जाएगी, जो चैतन्य शक्ति की प्रेरक होगी और आप की प्रत्येक पाठिका तथा पाठक आपकी शैली से ऐसा प्रभावित होगा कि मानो वह आप के साथ ही बातें कर रहा है।

उन प्रभात कालीन पंक्तियों के बीच में लिखी हुई पंक्तियां

अत्यन्त प्रभावोत्पादक और प्रेरणा पूर्ण होगी। लेखन शैली में यह शक्ति लेखक को उसकी प्रबुद्ध आत्मा के द्वारा ही प्राप्त होती है। लेख की पंक्तियों के बीच छिपी हुई उस अद्भुत प्रेरणा के कारण ही लेखक का ग्रन्थ अमर हो जाता है और वह साहित्य में स्थायी स्थान पाता है। उसी प्रेरक शैली और मौलिकता की वजह से लेखकों के ग्रन्थ सदा जीवित होजाते हैं और साधारण लोगों की रचनाएँ लुप्त प्राय हो जाती हैं।

ऐसी ही आत्मिक शक्ति उन लेखकों में होती है, जो अपने शब्दों में जीवन भर देते हैं, जिसकी वजह से लेखक की पुस्तक एक पाठक से दूसरे पाठक तक निरंतर लोकप्रिय होती चली जाती है; उनकी पुस्तकें अपने जीवन में बहुत संस्करण देखती चली जाती हैं। इसी गुण के कारण उस पुस्तक के पाठक उसकी प्रतियां खरीद कर अपने मित्रों को भेंट करते हैं। एक अच्छी कविता यदि किसी समझदार पाठक को पसन्द आजाती है ता वह उसे बड़े शौक़ से अपने परिचित पड़ौसी को सुनाता है। इस प्रकार यह पुस्तक पढ़े लिखे विवेकी स्त्री-पुरुषों को अपनी ओर खींचती है, उनके हृदय के भावों को प्रोत्साहन करती है। पाठकों की ऐसी सहानुभूति के कारण ही पुस्तकों का प्रचार बढ़ता है। ऐसे ही संजीवनी शक्ति देने वाले लेखकों की कृतियां किसी भाषा के साहित्य को अमर बनाती है; क्योंकि वह लेखक पैसा कमाने के लिए नहीं लिखता, बल्कि जनता के हृदय में प्रवेश करने के लिए लेखनी उठाता है। वह उन्हें ऐसी अमूल्य चैतन्य सामग्री पढ़ने के लिए देता है, जो उसके पाठकों के जीवन को प्रशस्त, मधुर, संस्कृति सम्पन्न और सुन्दर बना देती है। वह सात्विक सामग्री उन्हें उत्कृष्ट नियमों को समझने, उत्थान की ओर ले जाने तथा सत्य, शिव और सुन्दर की अनु-

भूति करने में सहायक बनती है। चूंकि वह अपने लेख को प्रजा के हृदय तक पहुँचाने के लिए तक लिखता है, जनता को ऊँचा उठाने के लिए लेखनी उठाता है, इस कारण यदि वह अपने उद्देश्य में सफल होजाता है तो उसका ग्रन्थ आप ही आप स्थायी साहित्य की पदवी पाता है।

इसके विपरीत जो लोग सम्पादकों की कृपा-दृष्टि से लिक्खाड़ बन जाते हैं, जो गुट्ट बाज़ों की सहायता से पुरस्कार पा लेते हैं, जिनके मित्र डुग्गी पीट कर इश्तहार बाजी से उन्हें लेखक बना देते हैं, उनकी कृतियाँ समय बीतने पर मिट्टी का ढेर बन जाती हैं। जो लेखक पुरानी रूढ़ियों को छोड़ना नहीं चाहते, जो लकीर के फ़क़ीर बन जाते हैं, वे अपनी शक्तियों को सीमित कर अपना विकास रोक लेते हैं।

एक बड़े जगत प्रसिद्ध लेखक ने अपनी पुस्तक के विषय में यह उद्‌गार निकाले थे—"मेरी पुस्तक जंगल के देवदार वृक्षों की सुगन्ध लेगी, जंगली कीड़ों की आवाज को सुनेगी; मेरी खिड़की के ऊपर घोंसला बनाने वाली घरेलू चिड़ियां अपना घोंसला बनाने वक्त तिनकों से मेरा कथानक तैयार करेंगी—" ऐसे लेखक के प्रति हमारा निवेदन यह है—हो सकता है कि आपके उपन्यास अथवा कविता को शौक़ीन लोग जंगलों में जाकर पढ़ें और उसका मज़ा लें, किन्तु हमारी तुच्छ सम्मति में प्रगतिशील श्रेष्ठतम लेखक वह है, जो जन साधारण को नैतिक नियम सिखला कर जीवन का पथ दिखलाता है और जो प्रजा के कटु जीवन में माधुर्य भरता है। ऐसे महान लेखकों की पुस्तकें लेखन कला की उपयोगी नियमों को सिखलाने वाली आदर्श बन जाती हैं और वे अपने पाठकों में निर्भयता, विनय तथा सौंदर्य भरती हैं। उन मनुष्यों के ग्रन्थों का कुछ भी उपयोग

नहीं जो देश-काल नहीं समझते और जिन्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि किस युग में रह रहे हैं। वे नहीं जानते कि नया युग नवीन सन्देश मांगता है।

जब महाकवि 'शेक्सपीयर' के विषय में यह बात कही गयी कि उन्होंने दूसरों की सामग्री लेकर अपने नाटक लिखे हैं, तब उनके समालोचकों को लैंडोर महाशय ने युक्ति संगत उत्तर दिया—"उस महाकवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दूसरों की मौलिकता पर अपना नया रंग चढ़ा कर दिखलाया है, जिससे शेक्सपीयर की मौलिकता को चार चांद लग गये। कवि ने पुराने मुर्दों में प्राण डाल कर उन में नव जीवन डाल दिया है।" ऐसे लेखक और कवि लोकप्रिय धारा के साथ नहीं बहते बल्कि अपनी नयी धारा बहा कर दूसरों को युग सन्देश देते हैं। किसी लेखक को व्याकरणाचार्य और भाषा-मर्मज्ञों की गुलामी करने की अपेक्षा अपने अन्दर की आत्मिक ध्वनि का प्रतिनिधि बनना अधिक सम्माननीय है। क्योंकि ब्रह्मांड की अनन्त शक्ति के आदेशानुसार विचार प्रगट करना ही सत्यनिष्ठ लेखक बनना है; इसके विपरीत अन्य प्रसिद्ध लेखकों के बताए हुए नियमों के अनुकूल अपनी आत्मा के विरुद्ध आचारण कर लिखना लेखक को पतन की ओर लेजाता है। आलोचक झख मारते हैं, हमें उनकी तनिक भी परवाह नहीं करनी चाहिए। हमें वही करना उचित है, जो हमारी आत्मा के अनुकूल है। आश्चर्य है कि लोग बारबार पुरानी भूलों को ही दोहराते रहते हैं। वे लोकप्रिय बनने की इच्छा से रूढ़ियों के दास लेखकों के, अनुयायी बनते हैं और समझते हैं कि उनकी नकल करने से उनमें मौलिकता आ जायेगी। जन साधारण को सुन्दर नीरोग उपदेशों की आवश्यकता है—ऐसे उपदेश जो उनकी जीवन

यात्रा की कठिनाइयों को दूर कर सकें और उन्हें चरित्रवान बनादें तथा उनमें आशा-बल भरदें। स्वार्थ में लिप्त इस पशु रूपी मनुष्य को ऐसी पुस्तकों की जरूरत है, जो उसे पशुपन से निकालकर मानवीयता की ओर ले जांय और चिंताशील, दयालु तथा विनयी बनादें, जो उसकी कायरता को दूर भगा कर उसके अन्दर की सोई हुई आत्मिक शक्तियों को चैतन्य कर दें और जब वे शक्तियाँ जाग उठें, तब स्वयं उसे भी उस जागृति पर विस्मय हो। बुरा भला कहने वाले ईर्षालु समालोचक कुछ भी कहते रहें, क्योंकि उनका तो यह स्वभाव ही है, परन्तु जब वे उस डरपोक मनुष्य को आत्मिक शक्तियों के जागने पर निर्भय देखेंगे और उसमें नवीन प्रेरणा पायेंगे तो उनकी सम्मति लेखक के विषय में बदल जायेगी। तब वे अपनी भूल को स्वीकार करें और उसके लिए पश्चात्ताप करेंगे। यदि वे तिस पर भी निन्दा करें तो हमें उनकी निंदा के प्रति उदासीन रहकर उसे कोरा बकवाद समझना चाहिए।

क्या आप कोई धर्माचारी उपदेशक अथवा कोई मौलवी या पादरी हैं ? तब जिस दर्जे तक आप स्वार्थी मनुष्यों की बनाई हुई मजहबी किताबों के मायाजाल से निकल जायेंगे —ऐसे मायाजाल से जो बुद्धि विपरीत, तर्क शून्य और भ्रान्ति पूर्ण है, जिसने लाखों मनुष्यों को जंजीरों से जकड़ रखा है — उससे निकल कर अपने अन्दर की प्रेरक अनन्त शक्ति की ध्वनि को सुनने लगेंगे, तब उतने दर्जे तक आपमें अधिकार के साथ शिक्षा देने की शक्ति आजाएगी और आपकी बात प्रमाण के तौर पर मानी जाने लगेगी। उस समय क्या होगा ? आप पैग़म्बरों, मसीहाओं, अवतारों और गुरुओं के वाक्यों को प्रमाण के तौर पर पेश करना कम कर देंगे और आप में आत्मविश्वास आजाने के कारण आत्म श्रद्धा बढ़ जायगी; तब आप मस्ती से अपने श्रोताओं को उपदेश

सुनाएँगे। जैसे पहले युगों में ऋषि, मुनि, अवतार, पैगम्बर और मसीहा अपनी आत्मिक शक्तियों के बल पर अधिकार से बात करते थे, वही योग्यता, वही धारा प्रवाह आप की वाणी में आ जायगी और आप के शब्द भी विद्युतमय बन जांएगे।

देखिए। यदि आप किसी ईसाई देश में पैदा हुए हैं तो आप ख्रीष्ट धर्मावलम्बी होंगे। जिसका अभिप्राय यह है कि आप हज़रत यीशु क्राइष्ट को अपना मसीहा मानते हैं और उसके सिद्धान्तों के अनुसार चलते हैं। हज़रत ईसा मसीह ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखते थे और उनके नियमों के अनुसार अपना जीवन बनाने का प्रयत्न करते थे। संक्षेप में आप को भी उनकी तरह अपना जीवन बनाना चाहिए। उनकी शिक्षाओं का केन्द्रीभूत सिद्धान्त यह है कि मनुष्य को ईश्वर के साथ सीधा सम्पर्क करना चाहिए और वे स्वयं निरंतर वैसा करते रहें। हज़रत ईसा मसीह को जो अद्भुत शक्तियां प्राप्त हुई थीं, वे केवल परमात्मा के साथ एकता स्थापित करने से ही मिली थीं। उन्हीं शक्तियों के बल पर वे अपने समय के महापुरुष बन गये और जो उपदेश उन्होंने दिया, उसके कारण करोड़ों आत्माओं के दिलों में ईश्वर पर श्रद्धा बढ़ी। जो कुछ उन्होंने प्रभु से मांगा, वह केवल अपने लिए नहीं, बल्कि सब के भले के लिए था। उन्होंने जो कुछ किया, उनसे बहुत पहले दूसरे ईश्वर भक्तों ने भी करके दिखलाया था। यह केवल आध्यात्मिक इतिहास के सात्विक सिद्धान्तों को बारबार दोहराना था। प्रत्येक युग में महात्मा लोग प्रजा की भलाई के लिए ऐसा ही करते चले आए हैं। जब वे ईश्वर के साथ एकता स्थापित कर लेते हैं, तब उनको अपने स्वार्थ की भावना नष्ट हो जाती

हैं, ख़ुदी मारी जाती है, अहंकार नष्ट हो जाता है और वे विश्व के साथ भ्रातृ-भाव स्थापित कर लेते हैं।

इसी प्रकार हिन्दू धर्म शास्त्रों में इस महान तथ्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ विस्तार से लिखा गया है। उपनिषदें तो इस आत्मिक सिद्धांत को खूब स्पष्ट करती हैं। ईश्वर की शक्ति के बल पर ही हमारे यहाँ के भक्तों ने जन साधारण में प्रभु के प्रति श्रद्धा का क़ायम रखा, किन्तु अब जो बात हम कहना चाहते हैं वह यह है कि जिस प्रकार इन महापुरुषों ने अपने युग में अनन्त शक्ति के साथ सम्बन्ध कर उसका सुधारस पान किया, हमें भी उन्हीं की तरह प्रभु के साथ एकता स्थापित करनी चाहिए और उससे सीधा सम्बन्ध कर सात्विक शक्तियों को ग्रहण करना उचित है। हमें इस प्रकार के उपदेशकों की आवश्यकता है, जो हमें जीवन-कला सिखलावें—हम कैसे रहें, यह बतलावें। जो मृत्यु को जीतना चाहते हैं, उन्हें पहले जीवन की कला को समझना चाहिए। भगवान बुद्ध के हृदय में मृत्यु को जीतने की भावना उत्पन्न हुई थी, जिसके कारण वे राज महल छोड़ कर सत्य-ज्ञान की खोज करने निकले और जब भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में घूम कर बड़े बड़े धर्माचारियों का सत्संग कर, उन्हें वह वस्तु प्राप्त न हुई, तो फल्गु नदी के किनारे बैठकर उन्होंने तपस्या की और समाधिस्थ होगये। जब उनकी समाधि टूटी, तब वे कहने लगे—"मैंने जान लिया। मैं बुद्ध होगया हूँ।"

उन्होंने क्या जान लिया था? उनको यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि मानव जीवन की कला का रहस्य पवित्र जीवन रखने में है—मन, वाणी और कर्म में पवित्रता आजानी चाहिए। मृत्यु से पहले जीवन है। जब हम मन, वाणी और कर्म को एक सीध

(Focus) में ले आते हैं और जीवन की पवित्रता में केन्द्रीभूत कर देते हैं, तभी हम मृत्यु को जीत सकते हैं। ऐसे मनुष्य को मृत्यु का भय नहीं रहता। उस महापुरुष तथागत के उपदेशों ने करोड़ों आत्माओं को मृत्युञ्जय का मार्ग दिखला दिया।

आज लोग मन्दिरों, गिरजों, मसजिदों और समाजों में श्रद्धा नहीं रखते और वहाँ के सत्संगों में जाने से घबड़ाते हैं—ऐसा क्यों है? इसका कारण यह है कि वहाँ लोगों की आत्मिक भूख मिटती नहीं। वे वहाँ जाते हैं सात्विक रोटी के लिए, मगर मिलता है उनको पत्थर। वे आत्मिक शाँति की तलाश में मारे मारे फिरते हैं, किन्तु इन चार दीवारों के अन्दर वे उसे नहीं पाते। उपदेश देने वाले वेदी पर बैठ कर सिद्धांतों की महिमा गाते हैं, किन्तु वे जीवन कला नहीं सिखलाते। इसीलिए अभागे जिज्ञासु लोग चिल्ला चिल्ला कर कह रहे हैं कि धर्म और ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं, यह तो मिथ्या भ्रम मात्र है। इन लोगों का यह कहना है कि धर्म के दिन लद गये और अब ईश्वर की चर्चा करना व्यर्थ है। भला सोचिए तो सही कि जो चीज़ अभी उत्पन्न नहीं हुई, उसकी मृत्यु की चर्चा करना नादानी ही तो है। अब तक लोगों ने धर्म को समझा नहीं। वे बाहर के चिह्नों को ही धर्म समझते रहे। यह चिह्न तो सम्प्रदायों के झन्डे मात्र हैं, जिनसे उस सम्प्रदाय का सदस्य पहचाना जाता है। लोग अभी तक आँखें मूँद कर भेड़ों की तरह सम्प्रदायों के आचार्यों के पीछे चलते रहे, जिन्होंने मजहबी किताबों के प्रमाण दिखला कर, उनका उल्टा सीधा अर्थ समझा कर, केवल अपना स्वार्थ सिद्ध किया। आधुनिक युग है जागृति का। अब प्रजा शिक्षित होकर सत्यासत्य की

खोज करने लगी है और जो जीवन के मुख्य चैतन्य नियम हैं, उन्हें समझना चाहती है। यहीं से धर्म का प्रारम्भ होता है। जब उस धर्म को जीवन में धारण किया जाता है और उसे दैनिक व्यवहार में लाया जाता है, तभी धर्म का मर्म समझ में आ सकता है। अब हम शब्दों के जाल से निकल कर असलियत की ओर आने लगे हैं। धर्म कभी मर नहीं सकता, वह तो हमें उत्कर्ष की ओर लेजाने वाला महान साधन है जिसका सम्बन्ध जीवन की पवित्रता के साथ है। परमात्मा और जीव में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने वाली यदि कोई शक्ति है तो वह धर्म ही है। जब तक मनुष्य में उत्कर्ष की भावना रहेगी, अनंत के साथ मिलने की उसकी इच्छा बनी रहेगी, तब तक धर्म की जड़ हरी रहेगी।

आज रूढ़ियां, रस्मो-रिवाज और मजहबी निशान मिटते जा रहे हैं। अब उनका अन्त काल आ पहुँचा। भेद की दीवारें टूटने लगीं। मनुष्य को मनुष्य पहचानने लगा है। विज्ञान ने दूरी को जीत लिया है और पाताल को हमारे द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया है। अब रंग, जाति, मजहब और देशों के भेद नहीं रह सकते।

संसार में इस समय दो प्रकार के वर्ग दिखाई देते हैं। एक वर्ग तो उन मनुष्यों का है, जिन्हें प्राचीन रूढ़ियों से घृणा हो गयी है। वे इन दकियानूसी जर्जरित अंध-परम्पराओं को देखना तक नहीं चाहते—उन्हें इनसे बदबू आती है। दूसरे प्रकार के वे मनुष्य हैं, जिनके अन्दर ज्ञान की रश्मिएँ चमकने लगी हैं। जो यह पूछने लगे हैं— "हम कौन हैं और संसार में क्यों आए हैं? शरीर में काम करने वाली शक्ति कौन है?" इन प्रश्नों पर बड़ी गम्भीरता से विचार होने लगा है। मौजूदा

मजहबी लीडरों से लोग बुरी तरह से तंग आ गये हैं, क्योंकि उन से वे अपने प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर नहीं पाते। साइंस ने हमें बाहर के जगत की खोज करना खूब सिखलाया है, किन्तु अब मनोविज्ञान आत्मिक जगत की खोज करना चाहता है और चैतन्य आत्मा के रहस्यों को प्रकाश में लाने का इच्छुक है। यह नवीन जिज्ञासा मज़हबी दीवारों को धक्के लगा रही है और प्रमाणवाद का अन्त कर रही है। जैसे बसंतकाल में नये पत्ते निकलते हैं, नवजीवन का संचार होता है, इसी प्रकार मज़हबी युग का अन्त होकर बौद्धिक युग प्रारम्भ होने लगा है। जब मनुष्य अपने भाई मनुष्य से पक्षपात को छोड़ कर बात करेगा और दोनों मिल कर जीवन की समस्याओं के हल पर विचार करेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि उनका जीवन स्रोत एक ही है।

अब हम पुरानी प्रामाणिक बातें सुनते सुनते थक गये, अब हमें नवीन अन्वेषण की बातें सुनने की इच्छा है—ऐसी बातें जो जातियों में शांति स्थापित करें और ब्रह्मांड के रहस्यों को बतलावें। अब ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जो लोगों में जीवन-ज्योति जलावे। अब ऐसे उपदेशकों की आवश्यकता है, जो प्लेट फार्म पर खड़े होकर मेजें न तोड़ें, बल्कि ईश्वरीय प्रेरणा से हृदयों को पुल्कित करें; जिनके पास दैवी-सन्देश हो—ऐसा सन्देश जो प्रजा की दिनचर्या को बदल दे। जो इस ढंग से उपदेश दें, ऐसे उदाहरण पेश करें, ऐसा राग गाएं, जो प्रजा के हृदय को शान्ति प्रदान करे और श्रोता मंत्र-मुग्ध होकर उपदेश-रस को पी जांय। तब आप देखेंगे कि लोग बहुत बड़ी संख्या में धर्मोपदेश सुनने जाया करेंगे। दिवारों से घिरे हुए मंदिर, मस्जिद और गिरजे अब नहीं चाहिए। प्रजा आकाश के नीचे खुले मैदानों में ताज़ी हवा लेती हुई ताज़ा सन्देश सुनना चाहती

है। धर्म स्थानों की ईंटें और पत्थर अब आकर्षण की वस्तु नहीं रहे, क्योंकि उनका युग समाप्त हो चुका और वे प्राण विहीन हो गये हैं। जीते जागते धर्म की आत्मा संसार को अपना संदेश सुनाएगी। शर्त यही है कि हम उसका स्वागत करने के लिए तैयार हो जांय और अपने इर्षा द्वेष को छोड़ कर पक्षपातों से मुक्त हों, तब धर्म का शुद्ध स्वरूप हम पर प्रगट होगा।

मानवीय आत्मा किस वस्तु के लिए लालायित है? सभ्य संसार की आत्मा किस वस्तु के लिए तड़प रही है? उसे पुराना, मरा हुआ, बदबूदार, झगड़े फैलाने वाला, हत्या करवाने वाला, लूट मार का पोषक, स्त्री-बच्चों को भगाने वाला और राष्ट्रों को खंडहर कराने वाला मजहब नहीं चाहिए। मानवीय आत्मा तो नव-जीवन-दान देने वाला, विश्वप्रेम सिखलाने वाला, भेद बुद्धि हटाने वाला और अनन्त शक्ति के दर्शन कराने वाला धर्म चाहिए। सभ्य संसार की आत्मा उसी महापुरुष का दर्शन करने के लिए बेचैन हो रही है, जो नवीन युग के अनुसार विश्व धर्म का संदेश सुनावे और प्रभु से मिलने का मार्ग दिखलावे। वर्तमान युग की सब से बड़ी मांग यही है—जैसे बसंत ऋतु का सूर्य नये नये फूल खिलाता है, नवीन लताओं की सृष्टि करता है, रंग विरंगी तितलियों को उत्पन्न कर प्रकृति का सौंदर्य बढ़ाता है और अपनी सुनहरी किरणों से प्राकृतिक जगत को नवीन वस्त्र पहनाता है, इसी प्रकार इस आधुनिक युग में सारे संसार को उस अनन्त शक्ति के दैवी सूर्य की रश्मियों की आवश्यकता है; जो विश्व को नवीनता से भर दे और बुढ़ापे को खतम कर यौवन को लावे—ऐसे व्यावहारिक धर्म की संसार को आवश्यकता है। ईश्वरीय प्रेरणा प्रभात की नीरोग पवन की तरह स्त्री-पुरुषों के मस्तिष्क

में जाकर नीरोग विचारों को उत्पन्न करेगी, जिससे सब प्रकार की मानसिक व्याधियां नष्ट होंगी और सत्य ज्ञान का प्रकाश होगा। उस प्रेरणा के तुल्य दूसरी शक्ति मानवीय आत्मा को विकसित नहीं कर सकती। उस प्रेरणा से मानवीय शरीर का काया-कल्प हो जाता है। उसकी सभी इन्द्रियां नया रूप धारण करती हैं, उसका मस्तिष्क नीरोग कणिकाओं से ओत प्रोत हो जाता है; उसके अंगों में नवीन स्फूर्ति आ जाती है, उसकी तर्क शक्ति में विलक्षणता पैदा होजाती है; उसकी भाव भंगी सात्विक बन जाती है और उसकी विचार-धारा गम्भीर और शान्त होकर बहने लगती है। ये सभी बरकतें उस प्रेरिक शक्ति के द्वारा ही मनुष्य को मिल सकती हैं।

मानव समाज में यह परिवर्तन अनजाने ही हो जाता है, क्योंकि वह आकस्मिक वरदान है। प्रेरिक शक्ति का बल पाकर मनुष्य की आत्मा चकित हो जाती है। अब वह बेपेंदी का लोटा नहीं रहता, उसमें स्वाभाविक स्थिरता आजाती है और वह जानने लगता है कि भविष्य में उसको अद्भुत विभूतियां प्राप्त होने वाली हैं। भगवान के अस्तित्व का यही सब से बड़ा प्रमाण है और हमारे प्रत्येक पाठक और पाठिका को स्थिर चित्त होकर इन बातों पर मनन करना चाहिए, क्योंकि संसार की सब से बड़ी आशा परमात्मा के अस्तित्व पर निर्भर करती है।

ईश्वर हमारे अन्तःकरण में नवीन ज्योति का प्रकाश करे। उनकी प्रेरणा से हमारे मस्तिक में वसंत ऋतु का आगमन हो और उसके गहरे पल्लवित बीज हम में फूलें और फलें। हमें सात्विक स्वर्ग के दर्शन हों। यदि हम ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहते हैं तो हमें अपने अन्दर उस प्रेरिक शक्ति को

इसी प्रकार कार्य करने देना चाहिए, जैसे हमारी इन्द्रियां प्राकृतिक जगत में पदार्थों की अनुभूति लेती हैं। निःसन्देह तब आत्मिक जगत के आन्तरिक अनुभव प्रभु की असीम आशा को देने वाले होंगे। बाह्य जगत के निस्सार अनुभवों की अपेक्षा आपके अन्दर के यह अनुभव स्थायी और सारगर्भित होंगे। सारे विश्व में एक ही शक्ति स्रोत है। आपका चाहे कोई भी धंधा हो, चाहे आप चित्रकार हों, संगीता-चार्य हो, व्याख्यान दाता, रागी, लेखक, धर्माचार्य और अध्यापक—आपका कोई भी जीवन कार्य हो—आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि जीवन के सभी विभागों में सफलता प्राप्त करने के निमित्त आपको आत्मिक शक्ति की सहायता दरकार है। इस आत्मिक शक्ति को अपने वश में कर उसके द्वारा परमात्मा की अनंत शक्ति के साथ सम्बन्ध जोड़िए, जिससे वह अनन्त आत्मा आप के द्वारा अपनी सात्विकता का प्रदर्शन कर सके। यदि आपने उस अनन्त शक्ति से सम्बन्ध न किया, उसमें आप कामयाब न हुए तो निश्चय जानिए कि आपका जीवन निरर्थक हो जायगा। और आप किसी विभाग में भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे। आप भले ही चित्रकारों में अपना नाम लिखा लें, कुछ लोग आपकी तारीफ़ भी करने लगें, आप के लिए तालियां भी पीटी जांय, किन्तु आप इससे महान नहीं बन सकते और न आपका काम श्रेष्ठतम गिना जायेगा। स्वामी बनना तो आपके लिए सर्वथा असम्भव हो जायगा।

जितना ऊँचा आदर्श आप अपना रखेंगे और उसके लिए उद्योग करेंगे, उसी के अनुसार आप के काम की क़ीमत होगी। जब तक आप प्राकृतिक जगत और उसके साधनों पर विश्वास कर काम करते हैं, तब तक आप के काम को उत्कृष्टता का पथ

नहीं मिल सकता, क्योंकि आप सीमाबद्ध होकर दास की तरह काम करते हैं। जब तक आप ऐसी मानसिक वृत्ति बनाए रहेंगे, आप की अवस्था दीनों की तरह रहेगी। जब प्रभु की कृपा से आपको चैतन्यता मिलेगी और उस अनन्त ज्योति के साथ आपका सम्पर्क होगा, जब वह शक्ति आपके द्वारा काम करने लगेगी, तब आपको पता लगेगा कि आपने नयी दुनियां में प्रवेश कर लिया है और दिन प्रतिदिन आपका बल बढ़ता जायगा। उस समय हृदय की शुद्धि के कारण आपका बल कई दर्जे बढ़ जायगा।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥
—कठोपनिषद् १।२।२३॥

उपनिषद् यह कहती है कि वह अनन्त शक्ति न तो पठन पाठन से प्राप्त होती है, न बड़ा बुद्धिमान बनने से ही उसके दर्शन होते हैं और न शास्त्रों के सुनने सुनाने से ही हमारा उससे साक्षात्कार हो सकता है, जिसे वह स्वीकार करता है, उसे ही वह अपनी शक्तियों से विभूषित करता है। उससे मिलने का अनादि नियम यही है—like attraots like जब आप प्रभु की तरह पवित्र बनेंगे तो वह अनन्त शक्ति आपकी ओर खिंची चली आयेगी।

दसवां अध्याय

अभ्युदय का सर्वोत्कृष्ट सत्य-सिद्धान्त

भगवान, अनन्त ऐश्वर्य का दिव्य स्रोत है—वह शक्ति जिसने सब पदार्थों की रचना की है और जिसके द्वारा ऐश्वर्य के सब सामान हमें प्राप्त हो रहे हैं। उस ईश्वर भक्त को संसार में किसी प्रकार के वैभव की कमी नहीं रहती, जो इस अनन्त शक्ति से नाता जोड़ लेता है।

यदि कोई मनुष्य सदा निर्धनता का भजन गाता रहे तो उसे निर्धनता ही मिलेगी। मनुष्य की वर्तमान काल में कैसी ही अवस्था क्यों न हो, किन्तु यदि वह अपने मन में ऐश्वर्य के भावों को भर लेगा और उनकी प्राप्ति के लिए यथा साध्य पुरुषार्थ करेगा तो कभी न कभी उसे संसार का वैभव अवश्य ही प्राप्त होगा। आकर्षण शक्ति का अनादि अटल सिद्धान्त सारे विश्व में निरंतर काम करता रहता है और उसके सम्बन्ध में अपरिवर्तन शील महान तथ्य यह है, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं—"समान गुणों वाले आपस में एक दूसरे को आकर्षित करते हैं।" यदि हम इस अनन्त शक्ति के साथ एक रस हो जाते हैं, जो सब पदार्थों का स्रोत है तो जितने दर्जे तक हमारा इस स्रोत से सम्बन्ध होगा, उसी के अनुसार हमें सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति हो सकेगी। इस प्रकार हम उस शक्ति के स्वामी होजाते हैं, जिसकी सहायता से हम मनोवांछित अवस्थाओं को उत्पन्न कर सकते हैं।

जिस प्रकार सब सत्य सिद्धान्त इस समय अपना अस्तित्व रखते हैं और हमारी स्वीकृति की बाट जोह रहे हैं, उसी प्रकार

हमारी सब प्रकार की आवश्यकताओं के साधन भी उपस्थित हैं, जो हमारी मानसिक शक्ति के अनुसार हमारी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए तैयार हैं। ईश्वर सब पदार्थों को अपनी मुट्ठी में रखता है। उसकी निरंतर यही आज्ञा है—"अपने जीवन के सभी मार्गों में मेरा आदेश स्वीकार करो और जितने दर्जे तक तुम उसे मानोंगे और उसके अनुसार चलोगे, उतने दर्जे तक उन पदार्थों के तुम अधिकारी बन सकोगे।" प्रभु बड़ी उदारता से उन सब नर-नारियों को अपनी बरकतें बांटते हैं, जो ठीक ढंग से उन वस्तुओं की प्रभु से याचना करते हैं। वह जबर्दस्ती अपनी बरकतें किसी पर नहीं लादता। उसके राज्य में पुराने ढर्रे के प्रभुत्व और निर्धनता के लिए कोई स्थान नहीं और जितनी जल्दी हम इस जर्जरित संकल्प को अपने मन से निकल देंगे, उतना ही हमरा कल्याण होगा। ईश्वर के सम्बन्ध में जो निर्धनता (Asceticism) का विचार संसार में प्रचलित हुआ, उसका गठबंधन झूठे वैराग्य के कारण अस्तित्व में आया। जब उस प्रकार का भ्रमात्मक विचार धार्मिक लोगों में फैला कि आत्मा और शरीर में बराबर युद्ध रहता है तो निर्धनता का यह भोंडा सिद्धान्त उन साधुओं, वैरागियों, अर्हतों और भिक्षुओं के मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ, जो हिन्दू, बौद्ध, जैन और ईसाई मठों में जीवन व्यतीत किया करते थे, क्योंकि जीवन का यह विकृत एकांगापन है। सच्चा वैराग्य, भिक्षुपना और अर्हतत्व तो रितम्भरा प्राप्ति में है। जो महात्मा लोग सच्चे अर्थों में मेधावी हैं, जो अपनी ईश्वर दत्त शक्तियों का स्वाभाविक ढंग से उपयोग करते हैं, उनके लिए परमात्मा का असीम भंडार सदा खुला रहता है। जब जिज्ञासु तथा साधक विवेक से अपनी मांग पेश करता है और उसका ठीक ढंग से उपयोग करता है तो उसे किसी वस्तु की कमी नहीं रहती। जब मनुष्य इन उच्च उत्कृष्ट सिद्धान्तों

की अनुभूति कर लेता है, तब निर्धनता का भय उसे नहीं सताता।

क्या आप आज कल बेकार है? यदि आपके मन में यह डर समा जायगा कि आपको शीघ्र कोई काम नहीं मिलेगा तो समझ लीजिए कि आपको काफी समय तक कोई काम नहीं मिल सकेगा और आपके अन्दर उसी डर की प्रधानता रहेगी। यदि आपको कोई काम मिलेगा भी तो उससे आपको सन्तोष नहीं होगा। आप कैसी भी कठिन अवस्था में क्यों न हों, यदि यह सत्य सिद्धान्त, यह दृढ़ विश्वास आपके अन्दर ओत-प्रोत रहेगा—"मेरे अन्दर ऐसो शक्तियां मौजूद हैं, जो जब भी मैं उनसे काम लूँगा तो वे सब प्रकार की कठिनाइयों और बाधाओं पर विजय पाकर मुझे सफलता का दर्शन करायेंगी।" ज्योंही आप उन शक्तियों की मशीन को चला देंगे, त्योंही आपके हाथ में ऐसा चुम्बक आ जायगा, जो आप के लिए ऐश्वर्य का द्वार खोल देगा। उस समय आप ईश्वर को धन्यवाद देंगे कि प्रभु ने मुझे पहले धन्धे से मुक्त कर दिया।

आप उन शक्तियों को पहचानिए जो उस विश्व में काम कर रही हैं और जो आप के द्वारा आप के शरीर में भी काम करना चाहती हैं। यह अनन्त शक्ति, जो सारे ब्रह्मांड में रचनात्मक कार्य कर रही है, इस अनन्त आकाश में सब जगत को चला रही है। आप अपने विचारों को उस ओर लाइये क्योंकि 'भावना' स्वयं एक महान शक्ति है और जब इसे विवेक पूर्ण ढंग से काम में लाया जाएगा तो यह अपनी अद्भुत शक्ति का परिचय देगी—उस शक्ति की सीमाओं का अन्त नहीं। जब आप अपने विचार अथवा भावना को ठीक ढंग से चलाएँगे तो आप की अभिलाषा के अनुसार धंधा आप को ठीक समय

पर और ठीक ढंग से मिलेगा—आप उसके आगमन के समय को भी पहले से जान जांयगे। इस संकल्प को दृढ़ता से पकड़िए और कभी इसे कमज़ोर न होने दीजिए, बल्कि इसे आशा के जल से सींचिए। आप इस प्रकार प्राकृतिक जगत में आत्मिक साधनों के सहारे अपना विज्ञापन देते हैं और यह एक ऐसा समाचार-पत्र है कि जिसकी शक्ति का वारापार नहीं और जिसके पाठकों की कोई सीमा नहीं, बल्कि वे सारे ब्रह्मांड में फैले हुए हैं। पर यह विज्ञप्ति, आजकल के कागज़ी समाचार पत्रों में प्रकाशित कराने की अपेक्षा इस आत्मिक समाचार पत्र में बहुत अधिक प्रभाव शाली होगी। जितने दर्जे तक आपका सम्बन्ध इन शक्तियों के साथ होगा, उसी के अनुसार आपकी ख्याति काम में आएगी।

यदि आप किसी समाचार-पत्र के कालमों में नौकरी की तलाश करते हैं तो साधारण तौर पर अपनी निगाह आवश्यकताओं के पृष्ठ पर न दौड़ाइए, अपनी आन्तरिक आत्मिक शक्ति को काम में लाकर उन विज्ञापनों को पढ़िए। जिस समय आप समाचार पत्र को उठा कर "आवश्यकता" (Advertisement) के कालमों को देखें और उसमें कोई नौकरी अपनी इच्छा के अनुकूल पाना चाहें—ऐसा दृढ़ विश्वास रखकर "मुझे मेरे मन के लायक जगह मिलेगी"—ऐसी भावना के साथ जब आप उस समाचार पत्र को देखेंगे तो निश्चय ही आपकी जरूरत के अनुसार काम आपको मिलेगा। इस दृढ़ शंकल्प के साथ यदि आप उन कालमों को पढ़ेंगे तो आपकी आन्तरिक शक्ति काम के तलाश करने में आप की सहायक होगी और आप अपनी इच्छानुकूल जगह को फ़ौरन पहचान जांयगे। जब आप की आँखें आपको आत्मिक आदेश दें तो उसके अनुसार फ़ौरन काम कीजिए।

फ़र्ज़ करो, आपको काम मिल गया और वह काम आपको पसन्द नहीं तो निराश होने के स्थान पर आपको अपने चित्त में यह धारणा कर लेनी चाहिए कि भगवान ने जो कुछ मुझे दिया है, वह मेरे अनुकूल धंधा मिलने की पहली सीढ़ी है। उसको दृढ़ता से पकड़िए और अपने आत्मिक विचार को उसका सहायक बनाइये, किन्तु ऐसी आशा में रहिए कि जिस काम में आप लगे हैं, उसे बफ़ादारी से पूरा करते हुए उन्नति अवस्था की प्राप्ति की सजीव आशा रखिए। तब निश्चय ही आपके उद्देश्य के अनुसार आपको जगह मिलेगी। परन्तु यदि आप अपने कर्तव्य का पालन नही करते और असन्तोष में डूबे रहते हैं तो यह जगह आप के लिए श्रेष्टतर काम दिलाने की पहली सीढ़ी नहीं बन सकती, उल्टा विरोधात्मक विचारों के कारण आप उससे भी निकृष्ट अवस्था में ढकेल दिये जांयगे।

ऐश्वर्य प्राप्ति का यह मूल सिद्धान्त है। जब प्रत्यक्ष मुसीबत आ पड़े तो उसके सामने घुटने न टेकिए, बल्कि हिम्मत से उसका सदुपयोग कीजिए और सदा उच्चतर वैभव युक्त जगह की तलाश कीजिए। जब आप इस तरह से अपना मानसिक रुख बना लेंगे, तब अन्दर की सूक्ष्म, अज्ञेय और जीवनप्रद शक्तियाँ बे रोक टोक अपना काम करने लगेंगी और शीघ्र या देर से आपके उद्देश्य को सफल बनाएँगी। जो संकल्प एक समय केवल विचारमात था, वही अब ठोस रूप धारण कर लेगा और मूर्तिमान बन कर आपका स्वागत करेगा। भावनाओं में भी गुप्त और अज्ञेय शक्तियां निहित रहती हैं। यह बीज रूपी विचार जब अनुकूल भूमि में, अनुकूल खाद देकर बोये जाये हैं तो मनोवांछित फल को उत्पन्न करते हैं।

कभी शिकायत के वशीभूत होकर मन को न डिगाइये,

बल्कि धैर्य से अवसर का सदुपयोग कीजिये और अपनी पूरी शक्ति के अनुसार जो साधन आप के हाथ में हैं, उन्हें काम में लाइये। सदा अपने सामने वैभव के सुझाव रखिए और ऐश्वर्य के स्वप्न देखिए। अपने मन में निश्चय कर लीजिए कि आप अवश्य ही समृद्धिशाली बन जायंगे। इस भावना को बड़ी मज़बूती से विश्वास के साथ, किन्तु शांत और एकाग्र मन से पकड़ रखिए। जब आप इसे आशा के जल से सींचते रहेंगे तो वह भावना की आशा-लता अवश्य ही पल्लवित होगी। इस प्रकार आपकी भावना चुम्बक बन कर इच्छित वस्तुओं को आकर्षित करेगी। सुझाव देने से कभी मत डरिए, क्योंकि यदि आप अपने विचारों को दृढ़तापूर्वक अपने मन में सेते रहेंगे तो आप उन्हें असली जामा पहनाने के योग्य बना देंगे। इस प्रकार आप विश्व के अत्यन्त सूक्ष्म और शक्तिशाली साधन को अपना सहायक बना सकते हैं। यदि आप के मन में किसी खास वस्तु की प्राप्ति की इच्छा है, जिसे आप अपने लिए अत्यंत उपयोगी समझते हैं और अपने जीवन पथ के लिए प्रशस्त मानते हैं, तब उस संकल्प को मन में दृढ़ कीजिए कि ठीक समय पर, उपयुक्त ढंग से उचित साधन द्वारा आपको वह अभिलषित पदार्थ प्राप्त हो सकेगा।

एक स्त्री को किसी सामाजिक काम के लिए धन की आवश्यकता थी। उसके मन में यह बात उठी कि इतनी रकम उसे ज़रूर ही शुभ कार्य के लिए मिलनी चाहिए। उस रमणी की आंतरिक शक्तियां जागृत हो चुकी थीं और वह उन्हीं के नियमों के अनुसार मन को बनाना चाहती थी। उसने हमारे उपरोक्त तरीक़े से अपनी मानसिक वृत्ति बनाली। प्रभात के समय एकांत में बैठ कर उसने अपने उद्देश्य का ध्यान किया और इस

प्रकार आत्मिक शक्तियों के साथ पूर्णतया एकता स्थापित करलो। दिन ढलने से पहले उसके पास एक गृहस्थ का दूत उससे मिलने के लिए आया। उसने उस रमणी से पूछा कि क्या वह उनके घरेलू काम को करने के लिए तैयार है? उस नारी को यह सन्देश सुनकर आश्चर्य हुआ। वह स्त्री जिस काम में निपुण थी, उसी के करने का सन्देश उसे मिला था। उसने अपने मन में सोचा कि यह ईश्वर प्रेरणा से हुआ है और उसे उसके अनुकूल चलना चाहिए और उसे देखना चाहिए कि प्रभु ने उसके लिए क्या प्रबन्ध कर रखा है। उसने वह काम हाथ में ले लिया और बहुत अच्छी तरह से उसे पूरा किया। जब वह काम समाप्त हो गया तो घर के स्वामी ने उसके हाथ में उसकी महनत से बहुत अधिक पुरस्कार दिया। उसने चित्त में सोचा कि यह रक़म उसके परिश्रम की अपेक्षा बहुत अधिक है, इसलिये उसने लेने से इन्कार किया। परन्तु उस गृहस्थ ने कहा—"जो कार्य आपने हमारे लिए किया है, उसका जो पारिश्रमिक हम आप को दे रहे हैं, वह उसकी अपेक्षा बहुत ही थोड़ा है।" जितना धन उसे अपने उस शुभ काम के लिए चाहिए था, उस से अधिक रक़म उसे इस प्रकार मिल गई। हमारी परिचित बहुत-सी घटनाओं में से हमने केवल एक का जिक्र यहाँ किया है। इससे ईश्वरीय शक्तियों की चमत्कारिक क्रिया शीलता का पता चलता है। हमें इससे एक शिक्षा भी मिलती है। कभी भी गिड़ गिड़ाते हुए हाथ जोड़ कर दीनता से किसी से मत मांगिए। सदा यह आशा रखिए कि पुरुषार्थ करने पर इच्छित पदार्थ आप की झोली में स्वयं आ जाएगा। आपका कर्तव्य यह है कि आप उन दैवी शक्तियों पर विश्वास कर उनका संचालन कीजिए और जो कुछ वे आप को दें, उस अवसर का पूरा लाभ उठाइये। अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ सामने आए हुए काम

को सुचारु रूप से कीजिए। यदि यह हाथ में आया हुआ काम आप के मन लायक न हो तो भूल कर भी अपने मन में विरोधी भाव न लाइये और शिकायत का रुख न बनाइए, बल्कि अपना कर्तव्य पूरा करते हुए प्रभु को धन्यवाद दीजिए, जिससे वह दयालु भगवान आपके लिए आप की योग्यतानुसार स्थान दें। सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि आप ऐसा वातावरण बनाने का अभ्यास करें, जो आपके विचारों से ओत-प्रोत हो और मन को अपने उस दृढ़ संकल्प से भर लीजिए। यदि आपकी इच्छा महलों में रहने की है तो उन्हीं के अनुसार अपने मन की अवस्था बनाइए और उसकी धुन में दिन रात रहिए। लेकिन भूल कर भी दुःख निराशा और तकलीफ का रुख न बनाइए। भले ही आप किसी निकृष्ट नौकरी पर हैं, किन्तु वहाँ भी आप का मन सदा उत्कृष्ट विचार सोचता रहे और ऊपर उठने के मनसूबे करता रहे। आप भले ही टीन के बर्तन में भोजन करते हों, अथवा मिट्टी के बर्तन में खाते हों, किन्तु उस समय भी आप के दिल में यह बात रहनी चाहिए कि यह दशा समृद्धि प्राप्ति की पहली मंज़िल है। यह ईर्षा अथवा द्वेष का मार्ग नहीं बल्कि उस दैवी पुरुषार्थ का पथ है, जिसका स्रोत आपके अन्तरात्मा में है।

हमारे एक मित्र जिन्हें दैवी शक्तियों का चमत्कार मालूम है और जिनका जीवन उन्हीं के अनुसार बना हुआ है, एक ऐसा ही अनुभव बतलाते हैं। वे कहते हैं कि जब आप किसी भालू की पकड़ में आ जांय और वह आपका आलिङ्गन करने लगे तो आपको चाहिए कि उसकी आँखों से आँखें मिलावें और खूब हँसे, किन्तु सारे समय उसकी आँखों पर अपनी दृष्टि रखिए। यदि आप निरंतर निर्भय होकर उसे देखते रहेंगे तो वह हिंसक पशु कुछ भी हानि न पहुंचा कर आप से दूर हट जाएगा। कहने

का अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य मुसीबतों के सामने घुटने टेक देते हैं, मुसीबतें उन्हें दबा लेती हैं। यदि आप के अन्दर ऐसा दृढ़ विश्वास है कि आप उन मुसीबतों पर विजय पाने की शक्ति रखते हैं तो अवश्य ही वे आपके सामने नतमस्तक हो जायंगी। जब मुसीबत आवे तो शाँति से धीरज धर उसका सामना कीजिए। अपना समय रोने, धोने, भाग्य को कोसने में खर्च न कीजिए, बल्कि अपनी आत्मिक और मानसिक शक्तियों को केन्द्रीभूत कर हिम्मत से उनका मुकाबला कीजिए।

विश्वास, दृढ़ विश्वास और सन्देह रहित विश्वास ही जीवन में सफलता प्राप्त करने की कुंजी है। जब हम इस बात को भली प्रकार समझ लेते हैं कि विजय और पराजय हमारे ही पुरुषार्थ पर निर्भर है और बाहर की अवस्थाएँ हम पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकतीं, तब हमारे में ऐसी शक्तियों का प्रादुर्भाव हो जाता है, जो विरोधी शक्तियों को बदल कर सफलता की सामग्री जुटा देती हैं। जब हम इस प्रकार उत्कृष्ट नियमों के अनुकूल जीवन बना पुरुषार्थ के अभ्यस्त हो जाते हैं, तब हम अपने अंदर की जागरूक आत्मिक शक्तियों को इस प्रकार केन्द्रीभूत कर देते हैं कि वे बाहर जाकर शत्रुओं का सामना करती हुई, विजय पताका उड़ाती हुई लौटती हैं। तब हम अपने अन्दर एक ऐसा क़िला स्थापित कर लेते हैं कि जिसकी सहायता से अपनी अभिलषित वृत्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर मनोवांछित फल पा सकते हैं। यदि हम उस गढ़ को सुदृढ़ बनादें उसमें बैठ जायंगे तो हम यह देखेंगे कि सब पदार्थ निरंतर हमारे अनुकूल होते जायंगे।

आधुनिक जगत के अधिकांश स्त्री-पुरुष दैनिक जीवन में कामआने लायक वस्तुओं की तलाश में लगे हुए हैं। जब हम

स्थिर चित्त होकर इन आन्तरिक आत्मिक नियमों पर गौर से विचार करते हैं तो हमें पता लगता है कि वे बहुत अधिक व्यवहारिक रूप रखते हैं और यदि हम अधिक गम्भीरता पूर्वक विचार करें तो यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जायगी कि वे ही यथार्थ में ऐसे व्यवहारिक सिद्धान्त हैं, जिनका जीवन में स्थायी परिणाम निकलता है।

ऐसे भी बहुत से लोग हैं, जो बड़े अभिमान से अपने आप को बहुत ही ज्यादा व्यवहार कुशल समझते हैं, लेकिन ऐसे मनुष्य भी हैं जो सांसारिक नियमों की परवाह नहीं करते, किन्तु वे बहुत ही ज्यादा व्यवहार कुशल सिद्ध होते हैं। वे लोग जो व्यवहारिक होने का घमण्ड करते हैं; वे असल में बिल्कुल व्यवहार कुशल सिद्ध नहीं होते। वह भले ही कुछ अंशों में व्यवहारिक प्रतीत हों, किन्तु जहाँ तक जीवनोत्थान का संबन्ध है, वे बुरी तरह से अव्यवहारिक होते हैं।

अच्छा, उदाहरण के तौर पर आप देखिए कि उस मनुष्य की व्यवहार कुशलता क्या काम आसकती है, जिसने सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति तो खूब कर ली है, किन्तु अपनी आत्मा को खोदिया है। हमारे इर्द-गिर्द ऐसे लोगों की भरमार है, जो यथार्थ जीवन-कला से सर्वथा अनभिज्ञ हैं—ऐसे मनुष्य जिन्होंने जीवन-कला की परिभाषा भी नहीं सीखी। वे अपने दुनियावी संग्रह के क्रीतदास होते हैं। ऐसे मनुष्य जिन्हें धन-प्राप्ति का बड़ा घमंड होता है, जो अपने करोड़ों रुपये के मद में दूसरे को कुछ भी नहीं समझते, उल्टा अपने धन के कमीने दास होते हैं। इन मनुष्यों का जीवन बन्ध्या स्त्री के समान होता है जिन्हों ने संसार में आकर अपने देश व समाज का कुछ भी उपकार नहीं किया--ऐसे मनुष्य, जिनका इस संसार

के साथ केवल धन के कारण ही सम्बन्ध होता है। जब वे शरीर त्यागते हैं, तब वे खाली हाथ, अत्यन्त निर्धन, दीन-हीन अवस्था में प्राण त्यागते हैं और उन्हें कोई याद भी नहीं करता। अभागे इतना भी तो नहीं कर सकते कि जिस धन को उन्होंने सारी आयु गंवा कर बेईमानी से इकट्ठा किया था, उसका थोड़ा भाग भी अपने साथ ले जा सकते ! जब उन्हें दूसरा शरीर मिलेगा तो सेवा, त्याग, बलिदान और नेकी के अभाव से वे कंगालों की तरह अपने नये जीवन का प्रारम्भ करेंगे। वे ऐसे बद् किस्मत होते हैं कि उन्होंने अपने पिछले जीवन में धन के सिवाय दूसरे किसी सात्विक गुण के संग्रह करने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया-- न तो उन्होंने अपने पड़ोसियों से ही अच्छा व्यवहार किया, न ही चरित्र की पवित्रता की निधि प्राप्त की, न ही उन्होंने कभी आन्तरिक आत्मिक शक्तियों की ही कुछ परवाह की — जो जीवन का असली खजाना है—वे अभागे उससे वंचित रहे। वे तो कंगालों से भी बदतर होते हैं।

बहुत बार हम यह समझ लेते हैं कि इस जीवन में खूब मौज बहार करलें, धोखे-धड़ी से धन संग्रह करें, फिर अगले जन्म में हम नेकी की ओर मुँह कर लेंगे। परन्तु सत्य बात तो यह है कि वर्तमान जीवन में बना हुआ स्वभाव अथवा बुरे भले संस्कार शरीर छोड़ने पर, यहीं खत्म नहीं हो जाते, बल्कि अगले मिलने वाले शरीर में वे बुरी आदतें और संस्कार हमारे साथी बनते हैं। यह समझना नितांत भूल होगी कि हम इस जन्म की पकी हुई आदतों को दूसरे जन्म में आसानी से छोड़ सकते है। यदि कोई व्यक्ति अपनी स्वेच्छा से इस जन्म में किसी प्रकार के पागलपन की आदत

डाल ले, तो वह यह न समझ ले कि शरीर छोड़ने पर उसका वह पागलपन भी यहीं छूट जाएगा। प्रकृति में तो कारण कार्य का सिद्धान्त नियम पूर्वक चलता है। जिस प्रकार की आदतें हम इस शरीर में बना लेते हैं, वे संस्कार नया शरीर धारण करने पर हम से अलग नहीं होते। जैसा हम बोएंगे, वैसा ही हम काटेंगे, यह अटल सिद्धान्त सभी जन्मों में एक जैसा चलता है।

जिसे इस जन्म में संसार के पदार्थों के संग्रह करने की आदत पड़ जाती है, उसकी वह आदत अगले जन्म में भी साथ जाती है। यह भी याद रखना चाहिए कि यहाँ तो उसके पास उस आदत को पूरा करने का साधन मौजूद है और उसने धन संग्रह कर वैसी सामग्री जुटाली है, किन्तु मरने के बाद नया शरीर मिलने पर उस संग्रह के न होने से उसे अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ेगा। कुछ समय के लिए उन साधनों के अभाव से वह मोहवश दूसरे पदार्थों द्वारा अपनी संतुष्टी न कर सकेगा, तब परिणाम स्वरूप उसके दुख दुगने हो जांयगे।

जिसे इस जन्म में संसार के पदार्थों का संग्रह करने की आदत पड़ गयी है, उसे वह जल्दी से छोड़ नहीं सकता। जब उसका शरीर जर्जरित हो जाता है और वह अपने संग्रह का उपयोग करने के योग्य नहीं रह जाता, तब दूसरे सम्बन्धियों द्वारा अपने संग्रहीत धन को फ़िजूल ख़र्ची में जाता हुआ देखकर उसकी व्यथा दुगनी हो जाती है। तब असमर्थता के कारण उसके पास इन्द्रियों की साधना हीनता तो होगी ही, इसलिए यह अपनी कामनाओं की तृप्ति नहीं कर सकेगा। उस समय अपनी पुरानी आदतों को छोड़ने में अशक्त होने के कारण वह अपने मोह को दूसरे पदार्थों में परिवर्तित नहीं कर सकेगा, तब उसका दुःख

और भी बढ़ जाएगा। तब उसे अपनी जायदाद परोपकारी संस्थाओं के नाम पर वसीयत करने की सूझती है; अब उसके उपयोग में उसकी कोई सम्मति भी नहीं लेता।

अब भला सोचिए कि हम किस प्रकार मूर्खता वश संसार के पदार्थों को अपना समझ लेते हैं। ईश्वर के बनाए हुए इस भूमंडल पर हम कुछ भूभाग के इर्द गिर्द वाड़ वाध कर अपना बना लेते हैं और अज्ञान वश उसे सदा के लिए अपना समझने लगते हैं। कोई भी चीज़ जिसे हम सदा के लिए अपने पास रख नहीं सकते, हमारी नहीं हो सकती। जो चीज़ें हमारे हाथ में आती हैं, वे स्वामी बनने के लिए न हो, नहीं संग्रह करने के लिए होती है, बल्कि वे तो बुद्धिमत्ता से सदुपयोग करने के लिए हमें मिलती हैं। हम तो केवल ईश्वर दत्त इन पदर्थों के संरक्षक मात्र हैं और जो कुछ हमें संभालने के लिए दिया जाता है, हम उन सबके जिम्मेदार होते हैं और हमें उनका हिसाब देना पड़ेगा। प्रकृति का यह अद्भुत नियम जीवन के प्रत्येक पहलू में काम करता है, यह निरंतर सभी अवस्थाओं में कार्य कर रहा है। सम्भव है कि हम सभी परिस्थितियों में उसकी क्रियाओं को न समझ सकें और पहचान भी न सकें। यह भी हो सकता है कि हमारे व्यक्तिगत पापों के परिणाम स्वरूप इस सिद्धान्त द्वारा मिला हुआ दण्ड हमें जागरूक न बनावे, किन्तु इस महान सिद्धान्त की क्रियाएँ अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहतीं।

वह व्यक्ति, जिसने श्रेष्ठतर आत्मिक शक्तियों को पहचान लिया है, धन संग्रह करने की इच्छा को त्याग देता है। उसे इतने ही धन की इच्छा होती है, ज़ितना जीवन-कार्य चलाने के लिए आवश्यक होता है। जितने दर्जे तक उसे यह अनुभूति साक्षात तौर पर होजाती है कि उसके पास आत्मिक खजाना

है, उतने दर्जे तक बाहर के पदार्थों के संग्रह करने की भूख का अभाव हो जाता है। जब उसे यह बात भली प्रकार विदित हो जाती है कि उसके अन्दर ईश्वर का दिया हुआ असीम खजाना है, जहाँ से उसे इच्छानुसार हर समय पदार्थ मिल सकते हैं तो फिर भला वह बाहर की दुनियावी चीजों का संग्रह कर ज़िम्मेदारी क्यों उठाएगा और रक्षा करने की चिन्ता में क्यों पड़ेगा, क्योंकि इससे तो उसका ध्यान असली चीजों के संग्रह करने से हट जाता है। दूसरे शब्दों में जब मनुष्य सबसे पहले प्रभु का साम्राज्य प्राप्त कर लेता है तो बाकी सब पदार्थ आप ही आप उसकी ओर खिंचे चले आते हैं।

भला सोचिए तो सही। यदि कोई मनुष्य अपना सारा समय बाह्य जगत के पदार्थों को पैदा करने और संग्रह करने में लगा दे, जिनका उपयोग उससे न होसके तो वह किस प्रकार आत्मिक शक्तियों तथा प्रभु के अनन्त गुणों को जानने का अवसर पा सकता है, जिनकी प्राप्ति से उसे सब प्रकार के वरदान मिल सकते हैं। कौनसा श्रेष्ठतर मार्ग है? धोखा-धड़ी, रिश्वत और गरीबों का रक्त चूस कर करोड़ों रुपये का स्वामी बनना, जिनका स्वामी होने से दुनियां भर की चिन्ताओं में डूबना पड़े, अथवा ऐसे नियमों और ईश्वर दत्त शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना जिनके नाम से मनोवांछित शुभ कामनाएँ आसानी से पूरी हो सकती हों। इस बात का संतोष कितना मधुर तथा सुखदाई होता है, जबकि हमें यह ज्ञान होजाय कि अच्छी से अच्छी वस्तु हमारी पकड़ से बाहर नहीं और हमें हमारी मांग के अनुकूल सामग्री हर समय प्राप्त हो सकती है।

जिस मनुष्य को अपनी आत्मिक शक्तियों का ज्ञान हो जाता है, वह संग्रह करने के पागलपन से सदा दूर रहता है—जैसा

पागलपन आधुनिक सभ्य संसार में चारों ओर व्यापक रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। वह इससे ऐसी ही घृणा करेगा जैसी शरीर की किसी घिनौनी बीमारी से किया जाता है। जब हमें अपनी आंतरिक आत्मिक शक्तियों की बरकतों की अनुभूति हो जाती है, तब हम अपना क़ीमती समय उन्हीं वस्तुओं के संग्रह में खर्च करेंगे जो हमें स्थायी लाभ पहुँचाएगी और प्रेय वस्तुओं के ढेर लगाने और उनके कमाने की दौड़ धूप करने में हम अपना समय नहीं देंगे। क्योंकि वे तो हमारी उन्नति में बाधक ही बनते हैं। जैसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मध्यम पथ ही सर्व श्रेष्ठ माना गया है, इसी प्रकार इस विषय में भी हमें उसी को पकड़ना होगा।

मानव समाज में धन का अपना एक विशेष स्थान है। वह हमारे आदर्श की प्राप्ति का एक बड़ा साधन है, किन्तु हमें यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि साधन, साधन ही है और आदर्श, आदर्श ही। साधन बदल जाते हैं किन्तु आदर्श नहीं बदला करते। जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक खास सीमा तक धन की आवश्यकता रहती है, लेकिन जब हम धन को ध्येय मान कर जरूरत से ज्यादा उसके संग्रह करने में लग जाते हैं तो वह हमारे आदर्श के मार्ग में महान रुकावट बनकर खड़ा हो जाता है; वह सहायता देने की बजाय रुकावटें डाल देता है और बरकत होने के स्थान पर अभिशाप सिद्ध होता है। हमारे इर्द गिर्द ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं, जिनके जीवन धन प्राप्ति के पागलपन के कारण बौने हो गए हैं और जिनका विकास रुक गया है; इन विलक्षण बुद्धि वाले व्यक्तियों ने यदि बुद्धिमत्ता से अपने समय का सदुपयोग किया होता तो वे आज सात्विक गुणों से विभूषित होकर स्थायी आनन्द की धारा में स्नान करते होते।

वह मनुष्य भी जो अपना सारा जीवन तो धन संग्रह करने में लगाता है और मरते समय अपने धन को सामाजिक शुभ-कामों की सिद्धि के लिए वसीयत कर जाता है, आदर्श जीवन की कसौटी में पूरा नहीं उतरता। जीवन की सन्ध्या में ऐसी की हुई नेकी भी धार्मिकता का उज्वल उदाहरण नहीं है। मरते समय इस तरह दान करने वाले लोगों के दान-कार्य भी प्रशंसनीय नहीं कहे जा सकते। आप स्वयं सोचिए कि यदि आप किसी मनुष्य को एक जोड़ा जूता पहनने के लिए दें, जिस जूते की आप को कभी भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी और वह अब बिल्कुल पुराना हो चुका है तो इसमें क्या आप का कोई बड़प्पन ? हमारा ऐसा दान कार्य तभी अनुकरणीय कहा जा सकता है, जब हम कड़कड़ाते जाड़े में किसी ग़रीब आदमी को जो ईमानदारी से धन कमाने के लिए सब प्रकार का उद्योग कर रहा हो और जिसके पैर नंगे हों, नया जोड़ा पहनने के लिए दें और वह व्यक्ति अपने परिवार को क्षुधा निवृत्ति के लिए उस पैसे को बचा सके; इससे बढ़ कर महत्व पूर्ण दान यह है कि हम उसे जहाँ नया जूता देते हैं, वहां उसकी सहायता के लिए स्वयं भी तत्पर होजांय, तब उस दान का महात्म्य श्रेष्टतम हो जाता है।

संग्रहीत धन का बुद्धिमत्ता पूर्वक उपयोग दूसरा नहीं हो सकता। हमें चाहिए कि हम अपने जीवन काल में धन को सदुपयोग में लाकर अपने जीवन को शुद्ध और पवित्र बनावें, जिससे हमारा जीवन सात्विक सम्पत्ति से भरपूर हो और हम दीर्घ जीवी बनें।

सुनिये ! ऐसा भी समय शीघ्र आने वाला है, जब समाज उस मनुष्य को अपमान और घृणा की दृष्टि से देखेगा, जो मरते समय आवश्यकता से अधिक धन छोड़ कर मरेगा।

ऐसे बहुत से लोग हैं, जो राज-भवनों में रह रहे हैं, लेकिन उनका असली जीवन उन ग़रीब लोगों से भी अधिक निर्धन है, जिनके पास सिर ढकने के लिए झोपड़ी भी नहीं। एक मनुष्य भले ही महल में रहता हो और उसका स्वामी हो, लेकिन वह महल उसके लिए यथार्थ में अनाथालय के समान होना चाहिए।

स्मरण रखिए, प्रकृति ने मकड़ियों, दीमकों और चींटियों को अत्यन्त उपयोगी बनाया है। ईश्वर अपनी विचित्र लीला से तोड़ फोड़ और नव-निर्माण करता है, जिससे नये पदार्थ उसकी सृष्टि में प्रगट होसकें। वह पदार्थ, जो संग्रहीत है और जिसका कोई उपयोग नहीं, वह दिन प्रतिदिन कीड़ों द्वारा खाया चला जाता है। एक और नियम भी निरन्तर काम कर रहा है, जिसके प्रभाव से उपभोग करने की शक्तियों का ह्रास होजाता है और धीरे धीरे वे शक्तियां उपयोग के लायक नहीं रहतीं। संचय करने वाले की बौद्धिक और शारीरिक शक्तियां शनैः शनैः इसी प्रकार खतम होजाती है।

दुनिया में बहुत बड़ी संख्या ऐसे स्त्री-पुरुषों की है, जो पुरानी जर्जरित चीज़ों से बुरी तरह चिपटे रहते हैं और जो सुन्दर सात्विक पदार्थों से दूर भागते हैं। यदि वे पुरानी चीज़ों को खतम कर नई लेने की आदत डाललें तो उन्हें सदा नये पदार्थ मिलते रहें और इस प्रकार नव-पदार्थों के लिए स्थान खाली होता जाए। संचय, सदा एक या दूसरे ढंग से नुकसान ही पहुँचाता है। विवेक से किया हुआ सदुपयोग सदा लाभकारी होता है।

यदि कंजूस मनुष्यों की तरह वृक्ष भी अपने पुराने पत्तों को संग्रह कर रक्खें और उन्हें जाने न दें तो नये मनोहर पत्तों का आगमन कैसे हो सकता है! बसंत ऋतु में जो नवजीवन वृक्षों

पर प्रगट होता है, उसका सौंदर्य संसार के सामने कैसे आवे। यदि वृक्ष अपने निकम्मे सड़े गले पत्तों का मोह न छोड़ें तो उसके लिए मृत्यु अवश्यम्भावी है। यदि वृक्ष निर्जीव होचुका है तो वह भले ही पुराने पत्तों को संग्रह करता रहे, किन्तु नये गुल्म तो पल्लवित होंगे ही नहीं। लेकिन जब तक वृक्ष में जीवन विद्यमान है, तब तक उसे पुराने पत्तों को त्यागना ही होगा, जिससे नव-जीवन को स्थान मिले।

विश्व का एक अत्यन्त उपयोगी सिद्धान्त "सम्वृद्धि" है। यदि पदार्थों के बाँटने में किसी प्रकार की बाधा न उपस्थित की जाय तो प्रकृति माता सदा ज़रूरत से ज्यादा पदार्थ हमें देती है। हमारे लिए स्वाभाविक जीवन पथ यही है कि हम ईश्वर के साथ एकता कर उसके अटल नियमों की अनुभूति कर अपने लिए 'सदा सादा जीवन और ऊँचे विचार रखने का प्रयत्न करें।

जब हमारी सादा जिन्दगी हो जायगी, आवश्यकताओं की कमी होगी, श्रेष्ठतम विचार होंगे, तो फिर हमें संग्रह करने की आवश्यकता ही क्यों होगी। हमारे लिए ज़रूरतों के अनुसार पदार्थ सदा आते रहेंगे। हमारी मांग के अनुसार पूर्ति भी होगी और उसमें कभी भी कमी नहीं हो सकती। इस प्रकार जीवन यात्रा करने से हम न केवल उस प्रभु के अनन्त भंडार से आवश्यकतानुसार पदार्थ पाते रहेंगे, बल्कि हमारे द्वारा इर्द-गिर्द के जन साधारण को भी विशेष लाभ पहुंचेगा।

अब हमें यह जानना बड़ा शिक्षा-प्रद होगा कि ऋषि-मुनि, पैग़म्बर-मसीहा, अवतार और सद्गुरु की पदवी कैसे प्राप्त होती है। अगले अध्याय में हम इस पर प्रकाश डालते हैं।

ग्यारहवां अध्याय

दैवत्व-पद प्राप्ति के साधन

अब तक हमने इन सजीव तत्वों के विषय में मीमांसा करने का प्रयत्न किया है; इतना ही नहीं, बल्कि तर्क, अनुभूति और सहज बुद्धि के सहारे इनका स्पष्टीकरण करने की कोशिश की है। हमारा यह सतत प्रयत्न रहा है कि हम दूसरों के प्रमाणों के सहारे अपने विषय का प्रतिपादन न करें—भले ही वे प्रमाण ऋषि, मुनियों, पैग़म्बरों, और मसीहाओं के क्यों न हों।

आइए, अब हम इन तत्वों के विषय में संसार के अन्य महापुरुषों, अवतारों और पैग़म्बरों के उपदेशों के प्रकाश में तुलनात्मक विचार करें। आप को यह भलीभांति स्मरण होगा कि हमने इस पुस्तक के पृष्ठों में जिस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की बारबार चर्चा की है, जिसके आधार पर हमने अनन्त के साथ एकता का प्रदर्शन कराया है, वह मूल भूत सिद्धान्त हमें सदा अपने सामने प्रकाश स्तम्भ की भांति रखना चाहिए और वह है—विश्व की आत्मा के साथ एकता की सजीव अनुभूति और उस अनन्त स्रोत के साथ सीधे सम्बन्ध की स्थापना एक स्थान पर हज़रत ईसामसीह ने यह फ़रमाया है—"मैं और मेरा पिता एक ही हैं।" इन शब्दों में हम यह देखते हैं कि ईसाई धर्म के प्रवर्तक उस यहूदी महापुरुष ने उसी महान सिद्धान्त की ओर इशारा किया है, जिसकी चर्चा हमने की है। इसी प्रकार दूसरे ईश्वर भक्तों ने भी जब अपने अनुयायियों को प्रेम सन्देश दिया तो उन्होंने भी ईश्वरीय शक्ति का ही प्रतिपादन किया। गुरु नानकदेव जी ने एक स्थान पर इसी प्रकार

के वचन कहे हैं—"करे करावे आप ही आप, इस मानस के कुछ नहीं हाथ"—जिसका अभिप्राय यही है कि मनुष्य जो कुछ करता है, उसमें प्रभु की इच्छा की प्रेरणा रहती है।

अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्य की अपनी इच्छा कुछ भी नहीं और वह ईश्वर के हाथ की कठपुतली है? इसके उत्तर में हमारा निवेदन यह है कि जिस समय हम ऐसे उपदेशों की चर्चा करते हैं तो उस समय साधारण मनुष्यों की बात नहीं कही जाती। वे जो द्रष्टा हैं, जिनके ज्ञान-नेत्र खुल गये हैं, जिन्हें रितम्भरा की प्राप्ति होगयी है, जो बिवेक शील हैं—ऐसे महापुरुष, ऋषि, मुनि, अवतार और मसीहा कहलाते हैं; उन्हीं के मुँह से मपे तुले शब्द निकलते हैं और उन्हें ही दैवी सन्देश कहा जाता है। साधारण मनुष्य शरीर का दास बना हुआ, इन्द्रियों के वशीभूत होकर बोलता है, किन्तु जिन्हें आत्म तत्व की पहचान है और जो अन्तरात्मा की आवाज़ सुनने के अभ्यासी हैं, वे अपनी इच्छा से कुछ नहीं बोलते—उनकी इच्छा विश्व की आत्मा के हाथ में रहती है। अतएव यह बात शीशे की तरह स्पष्ट होजानी चाहिए कि दैवत्व पद की प्राप्ति जिन्हें होजाती है, उनकी स्नाब क्रियाएँ ईश्वरीय नियमों के अन्तर्गत होजाती हैं। साधारण मनुष्य प्रकृति का गुलाम होने के कारण सत्य ज्ञान को नहीं पहचानता, इसीलिए हमने बार-बार अपने पाठकों का ध्यान इस महान तत्व की ओर खींचा है कि हमें सबसे पहले ईश्वर के साथ एकता स्थापित करनी चाहिए, तभी मानव-जीवन स्वाभाविक ढंग से आरम्भ हो सकता है।

सारी बाइबिल में यिशु क्राइस्ट का हमें यह वाक्य बहुत पसन्द आया है—

"Seek ye first the Kingdom of God and his

righteousness and all these thigs shall be added unto you."

अर्थात् तुम्हें सबसे पहले ईश्वरीय राज्य और उसके जीवन की पवित्रता की तलाश करनी चाहिए, शेष सब पदार्थ स्वयं ही प्राप्त हो जांयगे। इन शब्दों का अर्थ यह है कि साधारण मनुष्य अज्ञानवश यह समझते हैं कि वे अपनी शक्ति से सब कुछ कर सकते हैं, इसलिए उनका सारा जीवन तुद्र बातों की प्राप्ति में खर्च होता है। वे धनवानों के दरवाजे पर जाकर गिड़गिड़ाते हैं, मदमत्त अधिकारियों के दरवाजे खटखटाते हैं और खुशामद द्वारा अपनी कार्य-सिद्धि करने की चेष्टा करते हैं, लेकिन वे मूर्ख यह नहीं जानते कि संसार के सब पदार्थों के रचने वाला भगवान उन्हें उसकी आवश्यकता की चीजें सहज में ही दे सकता है, यदि वे अपने जीवन को पवित्र कर प्रभु का दरवाजा खटखटाएं तो उन्हें सांसारिक विपत्तियों का सामना न करना पड़े।

हमारे धर्म-शास्त्रों में यह उपदेश बार-बार दिया गया है कि जो मनुष्य सब प्राणियों में आत्म तत्व को देखता है, उसे किसी प्रकार का शोक, मोह तथा ईर्षादि मनोविकार नहीं सताते। हमारे सभी महापुरुषों ने इस बात को स्वीकार किया है कि आनन्द का स्रोत हमारे अन्दर ही है, वह बाहर भटकने से नहीं मिलता। जब भगवान बुद्ध मृत्यु शय्या पर पड़े थे और आनन्द उनके पास बैठा हुआ उनकी सेवा कर रहा था तो भद्रक रोता हुआ वहाँ पर आया। तथागत ने आनन्द से पूछा—"आनन्द यह रोता कौन है?" तब आनन्द, भगवान से बोले—"भन्ते, भद्रक आपके दर्शन करने आया है।" जब भगवान ने उसे बुलाने का आदेश दिया तो आनन्द भद्रक को

बुला लाये। भद्रक को रोता हुआ देखकर भगवान बोले-"भद्रक ! तू रोता क्यों है ?" सिसकियां भरते हुए भद्रकने उत्तर दिया—"भन्ते, जब आप चले जांएगे तो हमें प्रकाश कौन दिखलाएगा ?" तब मधुर स्वर में उस महान् आत्मा ने उत्तर दिया—"भद्रक, मैंने अपनी सारी आयु में इसी बात का उपदेश दिया है कि प्रकाश तुम्हारे अन्दर है, इसे बाहर खोजने की कोई आवश्यकता नहीं। जो लोग प्रकाश की तलाश में इधर-उधर भटकते रहते हैं, जो तीर्थों में जाकर इसकी खोज करते हैं, जो देश विदेश भ्रमण कर इसकी प्राप्ति का प्रयास करते हैं, उन्हें निराश ही होना पड़ता है । भद्रक, प्रकाश तुम्हारे अन्दर है और वह उसी को प्राप्त हो सकता है, जो मन, वाणी और कर्म में एक रस हो जाते हैं। बुद्धत्व का यही मार्ग है।" राजकुमार सिद्धार्थ ने अढ़ाई हजार वर्ष पहले जिस सिद्धान्त को कहा था, वह आज भी वैसा ही सत्य है और हमने इस ग्रन्थ में इसी महान् तत्व को समझाने की चेष्टा की है।

हमारे धर्माचार्य मनु महाराज ने यह उपदेश दिया है—"जो अपनी आत्मा में विश्व की आत्मा को देखता है और समदर्शी होकर सब प्राणियों में उसी तत्व की पहचान करता है, वही मनुष्य मोक्ष पद को प्राप्त करता है। भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में जब जिज्ञासु अर्जुन ने भगवान् कृष्णचन्द्र जी से यह प्रश्न किया—"समाधिस्थ, स्थितधि पुरुष कैसे बोलते हैं, कैसे बैठते हैं, कैसे चलते हैं और किस प्रकार दूसरों के साथ व्यवहार करते हैं ?" तो योगी राजकृष्ण जी ने उत्तर में यही कहा है कि जो मनुष्य सब मनोविकारों को त्याग कर, सभी शारीरिक इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर आत्मा में विश्व की आत्मा को देखते हैं और सब के प्रति समदृष्टि रखते हैं, वे ही स्थितधि

कहलाते हैं; जो शुभ अशुभ की प्राप्ति के समय अपना संतुलन नहीं खोते, जो सभी अवस्थाओं में एक रस रहते हैं, जो किसी के साथ द्वेष नहीं करते और न किसी की निन्दा करते हैं, वे ही महात्मा जन स्थितप्रज्ञ कहलाते हैं।

इससे पता चलता है कि जब तक मनुष्य अपने अन्दर के आत्मतत्व को पहचान कर विश्व की आत्मा के साथ एकता स्थापित नहीं करता, तब तक वह मध्यम पथ को पकड़ने के योग्य नहीं बनता। यह पहली शर्त है, जिसकी विवेचना सभी हिन्दू शास्त्रों में की गयी है। यूनानी सन्त एथेनीसीयस ने फ़रमाया है कि हम इसी जन्म में मानव शरीर रखते हुए ईश्वरीय कार्य कर सकते हैं। उनके इस कथन में भी वही महान सिद्धान्त काम कर रहा है। यही सत्य सिद्धान्त संसार के अन्य महापुरुषों ने भी दर्शाया है। कनकार्ड नगर के ऋषि इमर्सन ने भी अपने ग्रन्थों में इसी विषय का प्रतिपादन किया है। सब प्रकार के पृथकत्व को मिटाकर ईश्वर के साथ एकता स्थापित करना और अनन्त के साथ अपना सीधा नाता जोड़ना - यही तार सब के लेखों में एक-सा बजता हुआ सुनायी पड़ता है।

आधुनिक युग में ऋषि इमैनुअल स्वेडेनबर्ग ने भी यही दैवी आलाप अपनी कृतियों में सुनाया है। वे फ़रमाते हैं कि यदि हम उस विश्व तत्व की ध्वनि को सुनना चाहते हैं, उसके रहस्यों को जानने की इच्छा रखते हैं और अध्यात्मिक समस्याओं पर प्रकाश पाने के इच्छुक हैं तो हमें चाहिए कि हम बाह्य पदार्थों से मन हटा कर अपने हृदय-पटों को खोल दें, जिससे अनन्त स्रोत की वेगवती धारा हमारे मन मन्दिर में प्रवेश कर सके। सभी जाति और धर्म के साधु सन्तों की जीवनियों में आन्तरिक प्रकाश–उसी ब्रह्म ज्योति–की चर्चा सुनने में आती है

और यही कथन बार-बार हम पर छाप डालता है कि जितने दर्जे तक हम अपना सम्बन्ध उस परमात्मा से जोड़ लेते हैं, उतने दर्जे तक ही हम दैवत्व पद की प्राप्ति कर सकते हैं। जीवन रूपी समुद्र हमारे चारों ओर लहरें मार रहा है और हम सबका आगमन, तथा निष्क्रमण उसी में से होता है।

संसार के इतिहास में जिन स्त्री-पुरुषों ने मानव-समाज का पथ प्रदर्शन किया, जिन्होंने अपनी सेवाओं द्वारा लाखों आत्माओं को शांति दी, जिनके सत्संग से लोगों के जीवन बदल गये, वे जो आज भी प्रकाश स्तम्भ बन कर अज्ञानियों को मार्ग दिखला रहे हैं, इसी महान सिद्धान्त की अनुभूति के कारण देवताओं की भांति पूजे गये और इसीके बल पर उन्होंने जन समूह के हृदय को बदल दिया। क्रान्तिकारी वे नहीं कहलाते जो प्रजा को विनाश की ओर ले जाते हैं; सच्चे अर्थों में क्रान्तिकारी वही हैं जो निर्माण कार्य करते हैं, घावों को मिलाते हैं, गढ़ों को भरते हैं, भेदों को मिटाते हैं और शांति तथा न्याय का राज्य स्थापित करते हैं। हाथों में फावड़ा लेकर अथवा कुल्हाड़ी पकड़ कर कोई भी मूर्ख तोड़ फोड़ और ध्वंसात्मक कार्य कर सकता है, किन्तु निर्माता बनने के लिए कार्य कौशल शिल्प कला पटुता, संगठन की शक्ति और धैर्य तथा अध्यवसाय की आवश्यकता है; समदृष्टि रखने वाले, दयालु और चरित्रवान पुरुष ही प्रगतिशील क्रान्तिकारी बन सकते हैं। ऐसा बनने के लिए अनन्त के साथ सम्बन्ध होना ही चाहिए अन्यथा उनकी क्रान्ति आंधी और तूफ़ान का काम करती है, जिसमें निर्माण का तो अभाव होता ही है किन्तु विनाश की तूती सर्वत्र बोलती है।

इतिहास के पृष्ठों में जिन ऋषि, मुनियों, महापुरुषों और अवतारों के गुण गाये गये हैं, जिन्होंने जातियों के उत्थान में

अपना सर्वस्व बलिदान किया था, वे सभी लोग ईश्वरीय नियमों के मानने वाले थे और उन्होंने अन्दर की शक्ति को स्वीकार किया था। प्रकृति के वे अनादि नियम जैसे उस समय काम करते थे, वैसे आज भी करते हैं। जिस भगवान बुद्ध को अज्ञानी लोग नास्तिक कहते हैं, उसने भी प्रकृति के अटल नियम के अनुसार ही उपदेश दिया और मन वाणी तथा कर्म में एकता स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। जैसे प्रकृति में व्यवस्था है, उसके नियमों में पारस्परिक सहयोग है, उनमें कभी भी अदल बदल नहीं होता, इसी प्रकार जो मनुष्य संयमी होते हैं, जिनका जीवन व्यवस्थित है, जिनके मुँह से निकला हुआ शब्द कभी वापिस नहीं लौटता—ऐसे सत्यवादी, जितेन्द्रिय पुरुष मृत्यु को जीत लेते हैं। शरीर उनके वश में होजाता है और वे उसे अपनी इच्छानुसार चलाते हैं। सबकी तह में वही महान सिद्धान्त कार्य कर रहा है और उसी के सहारे ऋषि और महर्षि बना करते थे। उन्होंने सबसे पहले अनन्त के साथ सम्बन्ध करना सीखा, प्राकृतिक नियमों को जाना, अध्यात्म तत्व को पहचाना, तभी उनका जीवन सार्थक हुआ।

स्मरण रखिए कि ईश्वर किसी जाति अथवा देश विशेष का पक्ष नहीं करता। उसकी दृष्टि में सभी एक जैसे हैं; अलबत्ता जो उसके नियमों पर चलते हैं, उन्हें वह सब प्रकार की बरकतें देता है। वह सर्वशक्तिमान स्त्री पुरुषों की रचना तो अवश्य करता ही है, किन्तु उन्हें पैग़म्बर, मसीहा और अवतार बनाना उसका काम नहीं। जो अपने आपको ईश्वर की ओर से भेजा हुआ बतलाते हैं, जो उसका पैग़म्बर होने का दावा करते हैं, जो कहते हैं कि वही ख़ुदा के बेटे हैं, वे या तो महामूर्ख हैं या धूर्तराज—उनसे सदा बचना चाहिए। जब मनुष्यों में से कोई एक भाग्यशाली पुरुष सृष्टिकर्ता के नियमों से अवगत होकर अपने

आपको वैसा बना लेता है तो वह संयमी व्यक्ति प्रभु के उस केन्द्र में आजाता है, जिसे आत्मिक क्षेत्र कहते हैं और उस व्यक्तिको जब अपना केन्द्र मालूम होजाता है। तो उसे भविष्य की बातें जानना आसान हो जाता है। सम्प्रज्ञात समाधि के यही मधुर फल हैं।

मत समझिए कि उस नियन्ता को कोई राष्ट्र अथवा भूमि अधिक प्यारी है। जो लोग ऐसी ऐसी मन गढ़न्त बातें सुना कर सीधे सादे लोगों को भुलावा देते हैं, वे तो दुनियादार व्यक्ति हैं—वे भला ईश्वर के विषय में क्या जानें। जब कभी किसी भूभाग में, कोई मनुष्य अथवा समाज, प्रभु-भक्त बन कर ब्रह्मज्ञान की धारा में स्नान करता है तो वह दयालु प्रभु उस समाज पर ऋद्धि-सिद्धि की वर्षा करते हैं और सब प्रकार का वैभव उस समाज को प्राप्त होता है।

जिन घटनाओं को हम चमत्कार अथवा मोजज़ा कहते हैं, वे प्रत्येक युग में, प्रत्येक स्थान पर हो सकते हैं—उनके लिए केवल उपयुक्त भूमि चाहिए और ऐसी भूमि सभी स्थानों में तैयार की जा सकती है। वे आज भी उनके अनुकूल कानूनों पर चलने से व्यवहारिक रूप में आ सकते हैं निस्सन्देह ईश्वर के साथ घूमने वाले, वार्तालाप करने वाले और उसके आदेशानुसार चलने वाले, बड़े हो शक्ति शाली लोग थे। उन्हें जो शक्ति प्राप्त होती है वह ईश्वर के साथ एकता स्थापित करने का परिणाम ही समझिए। ईश्वर उसी को नीरोगी, समृद्धिशाली और सुखी बनाता है, जो उसकी आज्ञा का पालन करते हैं और उसके अनुशासन में रहते हैं। यमाचार्य ने नचिकेता को दुनिया भर के एश्वर्य देने का प्रलोभन दिया किन्तु उस विवेकी ऋषि कुमार ने कोई भी प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, तभी उसे ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हुई; क्योंकि उस ब्रह्मज्ञान के अन्दर संसार की सभी विभूतियां विद्यमान थीं।

लोग परमात्मा पर नाना प्रकार के दोष लगाते हैं कि उसने संसार में दुःख की उत्पत्ति की है, कठोर हृदय मनुष्य बनाए हैं, अन्याय और अत्याचार होने देता है-- किन्तु यह सब मूर्खता की बातें हैं। ईश्वर यह सब कुछ नहीं करता। उसने मनुष्य को सब प्रकार की उन्नति के अवसर दिए हैं, किन्तु अज्ञानी लोग उसका लाभ नहीं लेते। वह किसी प्रकार की महामारी अथवा प्लेग को नहीं भेजता, ये व्याधियां मनुष्य के अपने कर्मों के फल से उत्पन्न होती हैं। कारण-कार्य का महान तत्व सभी अवस्थाओं में एक जैसा काम करता है। प्लेग आती है, क्योंकि मनुष्य ईश्वरीय नियमों को तोड़ते हैं। हम स्वयं अपने सर्व श्रेष्ठ मित्र अथवा घोर शत्रु बन सकते हैं। यह सब हमारी अपनी मुट्ठी में है। जितने दर्जे तक हम अपने अन्दर की सात्विक शक्तियों के साथ नाता जोड़ लेते हैं, उतने दर्जे तक हम सुखी रहते हैं और कोई व्याधि हमारे निकट नहीं आ सकती। जब हम स्वयं अपने अन्दर की ईश्वरीय आवाज़ की अवहेलना करते हैं, उसका निरादर करते हैं, तब प्रकृति माता हमें डंडा मार देती है।

क्या आप अपने इर्द गिर्द मित्रता, प्रेम और स्नेह का वातावरण उत्पन्न करना चाहते हैं? तो आज से इन दिव्य गुणों का ध्यान कीजिए, इन्हें जीवन का अंग बनाइये और उठते, बैठते इन्हीं के नशे में मस्त हो जाइए। फिर आप देखेंगे कि आप के चारों ओर की खिड़कियां खुल जाती हैं और विश्व के प्राणी आप से आलिङ्गन करने के लिए भागे आते हैं। यह है रहस्य मानवी विकास का और देवत्व-पद-प्राप्ति का। तब हम न केवल अपने ही पापों से मुक्ति प्राप्त करेंगे, बल्कि अपने इर्द-गिर्द के लोगों के मुक्ति दाता बन सकेंगे। इस पृथ्वी पर स्वर्ग की रचना करने का यही एक मात्र मार्ग है।

बारहवां अध्याय

सब मत-मतान्तरों का मूल सिद्धान्त—विश्वधर्म

इस जागृति के युग में जब विज्ञान ने सब प्रकार की दीवारों को गिराना प्रारंभ कर दिया है, जब देशों की दूरियां मिट-मिटा गयी हैं, जब हज़ारों मील के फ़ासले घंटों में खत्म होने लगे हैं—जब सहस्रों मील पर बैठा हुआ व्यक्ति पाताल की बातें सुन सकता है, तब स्वाभाविक ही मनुष्य के हृदय में यह प्रश्न उठता है—"इतने अधिक सम्प्रदायों, मतों और धर्मों की क्या आवश्यकता है? क्या मानव-समाज का एक विश्वधर्म नहीं हो सकता?"

यह है मुख्य बात, जिसकी चर्चा हम इस अध्याय में करना चाहते हैं। इतने मत-मतांतरों को शिक्षित मनुष्य अब सहन नहीं कर सकता। जब ईश्वर एक है तो यह धार्मिक विभिन्नता क्यों? बड़े गम्भीर भाव से जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमें यह पता लगता है कि सब धर्मों के अन्तर्गत सारभूत सिद्धान्त एक ही है, किन्तु भेद केवल क्षुद्र बातों के कारण होगये हैं। सब की तह में एक ही सचाई काम कर रही है, किन्तु जब इन धर्मों के अनुयायी अपने सम्प्रदायों के ब्यौरे की व्याख्या करते हैं, तब उन में देश, काल और जलवायु की विभिन्नता के कारण, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों की वजह से बुद्धि भेद होता चला गया है और आज तक किसीने वैज्ञानिक ढंग से उन भेदों को मिटाने का प्रयत्न नहीं किया। सारभूत सचाई के सम्बन्ध में सब का मत एक है—चाहे वे एक ही मजहब के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग हों अथवा अलग धर्मों के मानने वाले हों।

उनके झगड़े व्यक्तिगत पक्षपातों तथा दृष्टिकोणों के कारण होते हैं, जिनका प्रभाव उनके सारे जीवन पर पड़ता है और वे इसके द्वारा सारे मानव समाज की विचार धारा को बिगाड़ देते हैं।

यदि हम इन साम्प्रदायिक झगड़ों, इन मजहबी भेदों पर न्यायपूर्वक प्रकाश डालें तो पता लगेगा कि यहाँ भी वही मनोविकार काम कर रहे हैं, जिनके कारण यह मानव आत्म दर्शन से वंचित रहा है। जब भी कभी किसी राष्ट्र पर विपत्ति आती है अथवा सारा समाज संकट में पड़ जाता है तो उस समय सब मजहबी भेदों को भूलकर—सब प्रकार के द्वेष भुलाकर—यही अज्ञानी मनुष्य भ्रातृभाव के दैवी सिद्धान्त का अनुयायी बन जाता है। कोई बड़ी बाढ़ आजाय, विनाशकारी भूकम्प के धक्के लगें, महामारी प्लेग आ टूटे अथवा अकाल पड़ जाय तो सभी लोग व्यक्ति गत क्षुद्र बातों को भूला कर जन साधारण मिल कर काम करने लगते हैं। जब प्रयागराज में एक बार बड़ी बाढ़ आयी और गाँवों के गाँव बह गये तो यमुनाजी के पुल पर खड़े दर्शकों ने चकित होकर यह देखा कि एक छप्पर पर भेड़िया और बकरी इकट्ठे बैठे हुए बहे चले आ रहे हैं। हिंसक पशु भी साझी विपत्ति आने पर अपने विकार युक्त स्वभाव को छोड़ कर सारभूत सचाई को धारण कर लेता है तो इससे, पता चलता है कि भेद केवल स्वार्थ के कारण होता है, उच्चतम सिद्धान्तों के कारण नहीं। वह आकस्मिक आपत्ति अनन्त स्रोत के उस सारभूत जीवन तत्त्व का प्रदर्शन करा देती है और मनुष्य को बार-बार समझाती है—"अरे मनुष्य प्रकृति का मोह छोड़ कर, स्वार्थ से मुँह मोड़ कर, वाह्य जगत से नाता तोड़ कर आत्म तत्व की ओर आजा।" जो परिवर्तन शील है, जो विकास युक्त

है, वही भेद डालता है; जो स्थायी है, जो अनादि है, जो कारण है वह आपस में मिलाने वाला है। जहाँ सेवा, त्याग और बलिदान की भावना होगी, वहीं सार सूत सच्चाई के दर्शन होंगे; जहाँ स्वार्थ, कमीनापन और ईर्षाद्वेष की अधिकता होगी, वहीं दंगे-फ़साद और युद्ध का भीषण दृश्य दिखाई देगा। जो अनन्त के सात्विक गुण हैं, उनके धारण करने से शांति और प्रेम की धाराएँ बहने लगतीं हैं, किन्तु जब मनुष्य प्रकृति के प्रपंच में पड़ जाता है तो दुख और क्लेश उसे घेरने लगते हैं।

देखिए, देश प्रेम, एक महान सद्गुण है। हमें अधिकार है कि हम अपनी मात्रभूमि से प्रेम करें और उसे प्राणों से प्यारा समझें; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम दूसरे देश वालों से घृणा करें और उन्हें हानि पहुंचावें। जब हम अपने देश से प्रेम और दूसरे देशों से नफ़रत करने लगते हैं, तब हम भेद की दिवारें खड़ी कर लेते हैं और इस विकार के आजाने से हमारा अपना देश प्रेम भी दूषित हो जाता है। इसके विपरीत यदि हम अपने देश प्रेम के साथ-साथ दूसरे देशों से भी प्रेम करते हैं तो हम अपने हृदय की विशालता और विचारों की उदारता दिखलाते हैं, तब हमारा देश प्रेम सात्विकता का रूप धारण करता है—उसमें चार चांद लगजाते हैं।

इसी प्रकार जब हम अपने ईश्वर से प्रेम करते हैं, गिरजे-मसजिद में जाकर उससे प्रार्थना करते हैं तो हमें यह समझना चाहिए कि हम दूसरों के माने हुए प्रभु से भी प्रेम करना सीखें। ईश्वर एक है और वही सृष्टि कर्ता है; वही सब का जीवन स्रोत है, उसी से हम जीवन-गति पाते हैं, तब फिर क्या हमारा

कर्तव्य यह नहीं कि हम सब मिल कर उस परम पिता से प्रेम करें और किसी प्रकार का भी भेद-भाव इस सम्बन्ध में न रक्खें। दुनिया के सारे मजहब ईश्वर की पवित्रता पर विश्वास करते हैं, उसीको नियन्ता, जगदाधार और पालक मानते हैं तो फिर क्या कारण है कि हम उसके विषय में किसी प्रकार का द्वेष अथवा पक्षपात अपने मन में रक्खें। इस सर्वाङ्गपूर्ण दृष्टिकोण के आजाने से काफ़िर, म्लेच्छ और नास्तिक के लिए समाज में कोई स्थान नहीं रहता; सम दृष्टि हो जाने के कारण विश्व प्रेम की भावना जागरूक होजाती है। यह सच है कि हमारे कानों में नास्तिक विचार धारा के तर्क सुनने में आते हैं और इस विश्वास के लोग अपने आप को अनीश्वरवादी कहते हैं। लेकिन क्या इसमें इनका कोई दोष है? जब हम ईश्वरवादी, ईश्वर के सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी गर्हित और कुत्सित बातें कहते हैं, जिन्हें कोई भला आदमी—कोई स्वाभिमानी पुरुष सहन भी न करे तो ऐसे ख़ुदा को भला कौन मान सकता है। हमारे में जो बड़े ईश्वर भक्त बनते हैं, जिन्हें समाजी होने का घमण्ड है, जो सारा दिन माला फेरते हैं—ऐसे भक्त जन अपने उस ख़ुदा के विषय में ऐसी अनर्गल बातें वर्णन करते हैं, जिन्हें कोई विवेकी पुरुष स्वीकार नहीं कर सकता। जब मजहबी होने की डींग हांकने वाले अपने ख़ुदा के विषय में यह कहते हैं कि उसने क्रुद्ध होकर बिजलियां गिरा दीं, गाँव के गाँव नष्ट कर दिये तो भला कहिए तो सही कि ऐसे ईश्वर को कौन समझदार मान सकता है। जब हम ऐसे विकारों से युक्त स्त्री-पुरुषों को बुरा समझते हैं तो भला फिर क्रोधी ईश्वर के प्रति हमारे हृदय में क्या आदर हो सकता है।

मनुष्य को ईमानदार, सत्यवादी और परोपकारी होना

चाहिए। ऐसे लोग यदि नास्तिक भी हों तो वे उन आस्तिकों से लाख दर्जे अच्छे हैं, जो ईश्वर को तो मानते हैं किन्तु दिन भर झूठ बोलते, दूसरों को धोखा देते और ठगी करते हैं। ऐसे ही लोगों के कारण ख़ुदा बदनाम हुआ है और चिंता-शील स्त्री-पुरुषों की श्रद्धा उस पर से हटती चली जाती है। भगवान बुद्ध को उनके विरोधी नास्तिक कहते हैं, किन्तु मानव जात का वह सब से बड़ा हितैषी हुआ है; उसका त्याग और बलिदान अत्यन्त प्रशंसनीय है और उनके द्वारा उच्चतम संस्कृति की सृष्टि हुई है। ऐसे सच्चे अन्वेषकों ने ईश्वर से इसीलिए मुँह मोड़ लिया, क्योंकि उसके मानने वालों ने अपने परमात्मा को राक्षसी रूप देदिया। जब कर्मकाण्डी ब्राह्मण ईश्वर के नाम पर निरपराध पशुओं का वध करने लगे, उनकी मांस-मज्जा को हवन कुण्डों में डालकर वेद की ऋचाएँ पढ़ने लगे तो सिद्धार्थ का दया से पूर्ण हृदय द्रवीभूत हो उठा और उन्होंने ऐसे कसाई परमात्मा के मानने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार जो ख़ुदा परस्त मुसलमान ख़ुदा का नाम लेकर बकरीद के दिन निरपराध पशुओं का गला काटते हैं, उनके ऐसे राक्षस ख़ुदा को कौनसा सहृदय मनुष्य स्वीकार कर सकता है। वे नास्तिक लोग मनुष्य समाज के सच्चे सेवक हैं, क्योंकि इन्हीं के द्वारा ख़ुदा पर पड़ा हुआ कीचड़ साफ़ होता है और दुनियाँ ब्रह्म के सच्चे स्वरूप को पहचानने के योग्य बनती है।

सभ्य संसार आज लंगड़ लंगोटे कस कर सम्प्रदायों के विरुद्ध क्यों हुआ है? शिक्षित समाज मज़हब के विरुद्ध क्यों बग़ावत करने लगा है?—केवल इसलिए कि वर्तमान काल के सम्प्रदाय और मज़हब रूढ़ियों के ग़ुलाम हैं। सैकड़ों वर्षों से जो जंगली रस्मोरिवाज उनमें चले आ रहे हैं, शिक्षित मनुष्य उन्हें

दूर कर देना चाहता है। पुरानी जर्जरित और दुर्गन्धयुक्त रीति रिवाज़ों का अब युग नहीं रहा। आधुनिक वैज्ञानिक युग का नागरिक नवीन, नीरोग और बलवर्द्धक संस्कारों की अभिलाषा रखता है। सम्प्रदाय वालों को चाहिए कि वे अब चेत जाय और अपनी मज़हबी दुकानदारी को छोड़ दें। देश काल के अनुसार धर्म को बनावें। युग का अपना सन्देश होता है। उसकी आवश्यकताओं के अनुसार नैतिक नियम बनाये जाते हैं। प्रत्येक महापुरुष अपने समय के अनुपयोगी, टूटे-फूटे रिवाज़ों को दूर करने के लिए आता है और उनके स्थान पर स्फूर्तिदायक और जीवनप्रद नियमों तथा संस्कारों की रचना करता है। उसके जाने के बाद, समय गुज़रने पर, उसके द्वारा बनाए गए नियम और संस्कार पुराने होजाते हैं और उन पर मिट्टी पड़ जाती है। तब आवश्यकतानुसार नवीन सन्देश देने वाले महापुरुष का आगमन होता है। इसीलिए हमारा निवेदन यह है—

"A great man is great in his age and not for all ages."—Deva Duta.

अर्थात् महापुरुष अपने युग का महापुरुष हुआ करता है, सभी युगों का नहीं। हमारी भूल यह है कि हम महापुरुषों को पकड़ कर बैठ जाते हैं और उन्हें सब युगों का महापुरुष मान बैठते हैं। इसी भूल के कारण संसार में ये सब मज़हबी अनर्थ हुए हैं और सम्प्रदायों की वाढ़ सी आगयी है।

अतएव हमें अब अपनी भूल को स्वीकार करना चाहिए और सारभूत सत्य तथ्य को भली प्रकार हृदयंगम कर यह समझ लेना चाहिए कि परिस्थितियों के अनुकूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ ऐसे धर्माचार्य खड़े होजाते हैं, जिनके

उपदेश उसी भू-भाग के लिए उस समय के अनुकूल होते हैं और उनका अधिक उपयोग अन्य स्थानों में नहीं होता। किन्तु तिस पर भी बहुत से अज्ञानी उन्हीं धर्माचारियों के सिद्धान्तों को विश्व-उपयोगी मान कर उनका प्रचार करने निकलते हैं और इस प्रकार संसार में बुद्धि भेद की वृद्धि होती है। उदाहरण के तौर पर जैसे पंजाब के गुरुदासपुर जिले के कादियान क़स्बे के साम्प्रदायिक लोग अपने मज़हब का प्रचार करने देश-देशान्तरों में जाते हैं। वे सिवाय हानि के दूसरी कोई बात नहीं कर सकते। ऐसे लोग मानव समाज में फूट फैला कर उसके सदस्यों का मस्तिष्क विकृत कर देते हैं, जिसके कारण लोगों में वितंडावाद फैल जाता है।

भला सोचिए, यदि किसी एक बड़े हौल में अपना अपना आसन अथवा वस्त्र बिछाकर हिन्दू, ईसाई, पारसी, यहूदी और मुसलमान ईश्वर की पूजा करने बैठ जांय तो क्या इसमें कोई हर्ज है? हम में इतनी उदारता होनी चाहिए कि हम एक दूसरे के भावों का आदर करना सीख जांय, लेकिन इसमें शर्त यही है कि ईश्वर के विषय में हमारी कल्पना युक्ति संगत होनी चाहिए। यदि एक मुसलमान नमाजी अपनी बगल में बैठे हुए एक ईश्वर भक्त हिन्दू को काफिर समझे और एक ईसाई अपने निकटस्थ यहूदी को 'हीदन' घोषित करे—इसी प्रकार एक हिन्दू दूसरों को म्लेच्छ कह कर पुकारे—तो क्या वे आपस में मिल कर बैठ सकते हैं? कदापि नहीं। फिर इन सबके हृदय में एक दूसरे के मज़हब के प्रति ऐसी घृणा किसने बिठलायी है? इसका उत्तर हमें यही मिलता है कि इनकी मज़हबी किताबों ने इनके अन्दर इस प्रकार की घृणा भर दी है। यदि यह सच है तो ऐसी मज़हबी किताबों को कभी प्रमाणरूप मानना

नहीं चाहिए। यही कारण हुआ है कि शताब्दियों से साम्प्रदायिक मनुष्य एक दूसरे के शत्रु रहे हैं, क्योंकि उनकी मज़हबी किताबों की व्याख्या करने वालों ने सदा उनमें बुद्धि भेद उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। संयुक्तप्रांत की राजधानी लखनऊ नगर में जब शिया और सुन्नी कुत्ते-बिल्लियों की तरह लड़ते हैं तो हम यह दयनीय दृश्य देख कर अवाक् रह जाते हैं। सत्य बात तो यह है कि पार्टीबाज़, स्वार्थी, मज़हबी पेशवा अथवा धर्माचार्य कदापि भी मानव समाज में शांति और प्रेम नहीं चाहते, क्योंकि उनकी दूकानदारी पारस्परिक फूट के कारण ही चल सकती है। इस आधुनिक युग में अब हम इन सब सामाजिक और धार्मिक त्रुटियों को—इन मज़हबी दुकानों को बन्द करना चाहिए और प्रजा को ईश्वर के सात्विक गुण समझा कर सब को उसकी एकता के सूत्र में बांधना चाहिए। विश्व-धर्म की स्थापना करने का हमारा यह पहला पग होगा।

ईश्वर की एकता स्थापित करने के सम्बन्ध में जब सब सत्पुरुष सहमत हो जांयगे तो शेष भेद की बातें धीरे-धीरे आप ही आप झरने लगेंगी, क्योंकि वे तो व्यक्तिगत स्वार्थ, संकुचित पक्षपात और अनावश्यक क्षुद्र बातों पर निर्भर रहती हैं। जो मनुष्य इस महान् तथ्य को स्वीकार नहीं करता और यह समझने लगता है कि हज़रत ईसा मसीह ही एक मात्र ईश्वर के बेटे और मुक्ति दाता हैं, वह उसी समय मानव समाज में विरोध की तरंगे उत्पन्न कर देता है। ऐसे ही जब एक मुसलमान मुहम्मद साहब को आख़िरी पैग़म्बर मान कर उन्हीं को सारे विवेक और ज्ञान का ठेकेदार समझ लेता है, तब वह दुनिया में दुश्मनी के बीज बो देता है। सभी देशों में समय समय पर दैवी सन्देश देने वाले महापुरुष पैदा

होते रहते हैं, इसलिए यह समझ बैठना कि हमारे यहाँ का महापुरुष ही सर्वगुण-सम्पन्न था और दूसरे देश का महापुरुष नहीं—ऐसी धारणा हिमाकत नहीं तो और क्या है। अपने अपने देश में समय समय पर देशकाल के अनुसार महात्मा लोग पैदा होते रहते हैं। जितने दर्जे तक उस समाज अथवा देश की दुरावस्था होजाती है, उसी दर्जे तक वे अपना उद्योग कर चले जाते हैं; उन्हें सकल गुणनिधान मान कर शेष देशों के लोगों को उनके पीछे चलाने का प्रयत्न करना मूर्खता नहीं तो और क्या है। अब संसार को अपनी यह नादानी छोड़नी पड़ेगी।

याद रखिए कि सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है, इसलिए हमारा सब से पहला उद्देश्य ईश्वरीय एकता स्थापित करना है। जितने दर्जे तक हम उसके ज्ञान-स्रोत से सीधा सम्बन्ध कर लेते हैं, उतने दर्जे तक हमें सत्यज्ञान की प्राप्ति में सहायता मिलती है। जितने भी महापुरुष और अवतारी लोग हुए हैं, उन सब ने उसी ज्ञान भण्डार से मेधा की प्राप्ति की है और हमारे प्राचीन काल के ऋषि-मुनि मेधावी होने के लिए परमेश्वर से प्रार्थना किया करते थे। हमारे गायत्री मन्त्र में भी बुद्धि का वरदान ही प्रभु से माँगा गया है। प्रभु हमें धर्मान्ध विचारहीन और अन्ध विश्वासी न बनावे। प्राचीन काल के आचार्य अपने शिष्यों को उपदेश दिया करते थे कि वे श्रद्धावान, सत्यनिष्ठ और विवेकशील बनें। श्रद्धावान मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है। सत्यनिष्ठ पुरुष उदार, पक्षपात शून्य होजाता है और विवेकी व्यक्ति को सत्यासत्य निर्णय करने की बुद्धि मिलती है। प्रत्येक युग में उन्हीं पवित्रात्माओं को

दैवी वरदान मिला, जिन्होंने अपने अन्तःकरण के मैल को धो डाला।

अब यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में सब से महत्वपूर्ण बात यह नहीं कि उनका मजहब कौनसा है, बल्कि यह कि उनके व्यवहारिक जीवन में धर्म का क्या स्थान है। हम कहाँ तक स्वार्थ त्यागी हैं और कहाँ तक सत्य के प्रति हमारी निष्ठा है। उसी से हमारे व्यक्तित्व की पहचान की जासकती है। जो लोग अपनी भेड़ें बढ़ाने और दूसरों पर अपना विचार लादने की चिन्ता में डूबे रहते हैं, वे केवल एक प्रकार के रंगरूट भर्ती करने वाले अफ़सर मात्र है। जो धर्माचार्य अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के शौक़ीन हैं और जो उनकी नैतिकता की परवाह नहीं करते, वे ईश्वर के सामने बड़े दोषी गिने जाते हैं। संख्या नहीं, बल्कि उत्कृष्टता ही हमारी कसौटी होनी चाहिए। हमें सब प्रकार के साधनों से चरित्रवान नर-नारी बनाने की आवश्यकता है और यही धर्म का पवित्र सन्देश है।

आजकल सम्प्रदायवादी भिन्न प्रकार के चिह्न लगाकर अपने सम्प्रदायों की विज्ञप्ति करते हैं। जैसे राजनीतिक क्षेत्र में भिन्न पार्टियों के लोग अपने अपने झण्डे बनाते हैं। उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी चिह्नों की भरमार है। अज्ञानी लोग धर्म के मुख्य अंगों को भूल जाते हैं और इन्हीं चिह्नों को धर्म समझ कर उनसे चिपटे रहते हैं। उनकी दशा उस पेड़ की तरह होजाती है जिसे अन्दर से घुन ने खा कर खोखला कर दिया हो। आज संसार में ऐसे ही सम्प्रदायवादी जुदा जुदा मजहबी पार्टी बना कर अपना समय और शक्ति नष्ट करते हैं। वे अस्वाभाविक दीवारें खड़ी कर मनुष्य को मनुष्य का

शत्रु बनाते हैं। असली और सच्चा धर्म तो सेवा और बलिदान में है। सब प्रकार के मजहबी बिल्लों को जला डालिए, प्राणी मात्र से मनुष्य की सगोत्रता स्थापित कीजिए और सात्विक प्रेम को ईश्वर पूजा समझिए, तभी आप विश्वधर्म की महिमा समझ सकेंगे।

किसी विद्वान ने यह निर्देश किया है—"धर्म एक ही है। जैसे ईश्वर एक है वैसे ही उसके धार्मिक नियम भी एकता की स्थापना करते हैं। जैसे सभी नदियाँ समुद्र में जाकर मिल जाती हैं, जैसे सभी गलियां और कूचें बड़ी सड़क में आ मिलते हैं, इसी प्रकार विश्वधर्म तो एक ही है, जो समुद्र की भांति गम्भीर और असीम शक्ति रखता है।" संकुचित हृदय लोग केवल भेद देखते हैं और बुद्धिमान विभिन्नता में एकता स्थापित करते हैं। जिनमें प्रेमनिवास करता है, वे किसी की जाति-पाँति नहीं पूछते और न हीं देश तथा मज़हब का भेद स्वीकार करते हैं। वे ईश्वर के प्यारे अपना हृदय खुला रखते हैं और सब प्राणियों का खिले चेहरे से स्वागत करते हैं। काला-गोरा, पीत और लाल रंग के मनुष्य इनके लिए सब बराबर हैं। वे तो सात्विक गुणों से प्यार करते हैं और जिनमें उनकी अधिकता पाते हैं उन्हीं के प्रति उनकी भक्ति बढ़ती है।

संक्षेप में सत्य तथ्य यह है कि धर्म मनुष्य को पशुपन से निकाल कर देवत्व की ओर लेजाने वाला महान साधन है। जिन सद्गुणों से अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है, वही धर्म के अंग हैं। मनु महाराज ने धर्म के जो दस लक्षण कहे हैं—धृति, क्षमा, दमन, चोरी का त्याग पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, विवेकिनी बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध- ये विश्व धर्म के सात्विक चिह्न हैं। धर्म तो एक ईश्वरीय वरदान है, जो मानव

जीवन में माधुर्य और आनन्द भरता है। जब हम सच्चे धर्म की मीमांसा करते हैं तो हमें पता चलता है कि धर्म तो संसार में सुख-शान्ति लाने की सर्वोत्तम सीढ़ी है। ये निराशा, मनहूसी और क्षुद्रता का शत्रु है। धर्म के प्रति आजकल जो विरोध और द्वेष का भाव देखने में आता है, वह केवल साम्प्रदायिकता, पार्टीबाजी और मजहबी दूकानदारी के कारण है। समय आने वाला है, जब मनुष्य सब प्रकार की मजहबी दीवारों को गिराकर अपना मार्ग प्रशस्त करेंगे। ईंट और पत्थरों से प्रेम करने की बजाय वे मानवीयता को अपना धर्म बनायेंगे। आज जो बड़े बड़े मन्दिर, मसजिदें और गिरजे भेद भाव का कारण बने हुए हैं, वे सब प्रकार के लोगों में प्रेम भाव बढ़ाने के काम में आयेंगे। इन्हीं स्थानों में अलग-अलग सम्प्रदायों के गीत गाने की बजाय ईश्वरीय एकता का आध्यात्मिक संगीत सुनायी देगा। जब मनुष्य देश और जाति के भेद को भूल कर विश्व-प्रेम की दीक्षा लेगा, अन्तःकरण की मलीनता दूर हो जाने के कारण छिद्रान्वेषण की बुरी आदत दूर हो जायगी और हम आपस के मिलाने वाले चिह्नों की तलाश करेंगे, तब हमें पता लगेगा कि हमारे में एकता के साधन अधिक और विभिन्नता के चिह्न बहुत ही कम हैं। तब हमारी आँखों के आगे फैला हुआ अन्धकार दूर होगा और दैवी प्रकाश की किरणें जगत का सच्चा स्वरूप हमें दिखलायेंगी। सब मजहबी दीवारें चकना चूर होकर गिर जांयगी और हम सब उस विश्वधर्म को ग्रहण करेंगे जो हमारे दैनिक जीवन में हर्ष और उल्लास भरता है, हमें आशावादी बनाता है और हमें पुलकित करता है। हमारे जीवन में तारतम्य उत्पन्न करने वाली दैवी शक्ति हमें नित्य नया सन्देश देगी और तब हम इस ब्रह्मांड के सौंदर्य को अनुभव करने लगेंगे। यह संसार दुःखों का आगार

नहीं, बल्कि सच्चा स्वर्ग है; शरीर व्याधि मन्दिर नहीं, बल्कि आत्म दर्शन का सुन्दर साधन है; मृत्यु भय देने वाली देवी नहीं, बल्कि नवीनता लाने वाली बसन्तऋतु है, जो सब प्राणियों को स्फूर्ति देती है और नवजीवन का संचार करती है।

इस प्रकार धर्म एक जीती जागती वह जीवनी शक्ति होगी, जो सब प्रकार की कठिन समस्याओं का हल बतलायेगी और हमें आरोग्यता का दिव्य स्वरूप दिखलाकर संसार के पदार्थों का उपभोग करना सिखलाएगी। यदि धर्म मनुष्य को मनुष्य का मित्र नहीं बनाता तो उसे अधर्म ही समझना चाहिए। यह युग है महान वैज्ञानिक उन्नति का, जिसमें चारों ओर शिक्षा का प्रसार होता जा रहा है। अब पुरानी रूढ़ियां किसी को आकर्षित नहीं कर सकतीं और न नवीन फ़ैशन के 'वाद' ही हमें सन्तोष दे सकते हैं। हमें तो इस समय ऐसा विश्व धर्म चाहिए, जो मानव-अभ्युत्थान का मार्ग दिखलावे और नवीन समस्याओं की कठिनाइयों को सुलझावे। आज हम पृथ्वी के प्रत्येक भाग में होने वाली घटनाओं को घर बैठे जान सकते हैं, आज हमारा व्यापार सम्बन्ध एक दूसरे के साथ घनिष्ठ होगया है। एक देश में पड़ने वाला अकाल दूर देशों पर प्रभाव डालता है और दो राष्ट्रों की लड़ाई सारी पृथ्वी पर हलचल मचा देती है, ऐसे युग में हमें एक विश्व धर्म की आवश्यकता है, जो पृथ्वी भर के राष्ट्रों को एक सूत्र में बांध सके, भ्रातृभाव फैला सके और विश्व प्रेम की मधुरतान सुनावे। वह वही धर्म होगा जो देश काल और परिस्थितियों से ऊपर उठकर सब मनुष्यों को एक सूत्र में बांधेगा और आत्म तत्व के दर्शन कराकर हमें अनन्त की ओर ले जायेगा।

तेरहवां अध्याय

अनन्त की एकता से दैवी विभूतियों की प्राप्ति

हम बार बार यह प्रश्न अपने प्रेमियों के मुंह से सुनते हैं— "कृपा कर व्यवहारिक ढंग से ईश्वर के साथ साक्षात्कार करने का मार्ग बतलाइये।" लोग यही पूछते हैं कि जिन बातों का वर्णन आपने इस पुस्तक में किया है, निस्संदेह वे बड़ी अनुपम और अलौकिक हैं, किन्तु उनकी प्राप्ति का सीधा, सच्चा और सरल तरीका दो टूक में बता दीजिए, जिससे हम बिना कठिनाई के उसे अमली जामा पहना सकें।

इन प्रश्नों के उत्तर में हमारा सविनय निवेदन यह है कि जिन सत्य तथ्यों का जिक्र हमने अपने इस ग्रंथ में किया है, उनकी अनुभूति करना कठिन नहीं--यदि हम स्वयं उसके ढंग को कठिन न बना दें। अध्यात्मवाद का सब से मुख्य, सबसे प्रधान 'अनुज्ञा' शब्द है–*"ओ३म्! खोलिए"। इन शब्दों की महत्ता समझ लेने से हमें अपने उद्देश्य की सिद्धि में बड़ी सहायता मिलेगी। अपना मन और हृदय उस अनन्त स्रोत की धारा प्रवेश करने

---

*ओ३म् शब्द भारतीय ऋषि-मुनियों ने अध्यात्मवाद के क्षेत्र में अनन्त शक्ति का परम पवित्र द्योतक नाम माना है, इसीलिए हमने 'अनुज्ञा' के लिए उस शब्द का प्रयोग किया है जिसे भारतवर्ष का अध्यात्म जगत लाखों वर्षों से प्रयोग करता चला आया है। जैसे प्रत्येक भाषा में प्रभु के नाम हैं, इसी प्रकार वैदिक साहित्य में 'ओ३म्' शब्द उस अनन्त जीवन-धारा का प्रतिनिधि माना जाता है।—लेखक

के लिए बिल्कुल खुला कर दीजिए, क्योंकि वह अनन्त धारा आपके अन्दर दाखिल होने की बाट जोह रही है। यह मानो किसी नाले के पटों को खोलने का उपक्रम है, जिसके द्वारा पहाड़ी स्रोत का जल नीचे के मैदान में पहुंचाया जाता है। पानी का स्वभाव है ऊपर से नीचे जाना और वह पटों के खुलते ही बड़े वेग से नीचे उतरना प्रारम्भ करता है और मैदान के खेतों को सींचने लग जाता है, शेष रही बात प्रभु के साथ साक्षात् कार करने की सो उसके विषय में हम बार बार यह लिख चुके हैं कि हमें सबसे पहले उस अनन्त के साथ एकता की अनुभूति करनी चाहिए—प्रभु हमारे साथ है—यह भावना उठते-बैठते, चलते-फिरते हमारे मन में मौजूद रहनी चाहिए। पहली आवश्यक शर्त यह है कि हम अपने मन और हृदय को ऐसा खुला करदें कि उनमें ग्रहण करने की संस्थिति आजाय, इसके बाद श्रद्धापूर्ण बलवती इच्छा की ज़रूरत है।

सम्भव है कि आपको इस तरीके से भी सहायता मिले, जिस का सुझाव थोड़े शब्दों में हम आपके सामने रखते हैं। आप एक ऐसा एकान्त स्थान तलाश कीजिए, जहाँ आपके मन को गड़बड़ाने वाले किसी भी कारण की सम्भावना न हो। नित्य प्रति नियमपूर्वक आप उस एकान्त स्थान में आसन लगा कर अपने मन को शान्त रखने का अभ्यास कीजिए। नियमबद्ध थोड़े समय का यह अभ्यास भी आपके उद्देश्य की सिद्धि में बड़ा सहायक होगा। उस एकान्त स्थान में आप अपने मन का रुख प्रभु से मिलने के योग्य बनाइये—अपनी बलवती इच्छा शक्ति द्वारा अपनी यह धारणा बनाइए कि आपको अवश्य ही प्रभु की अनुभूति करनी है। निश्चल, शांत और आशा भरी ऐसी मानसिक स्थिति आपको बनानी होगी, जिसमें प्रत्येक क्षण आप यह

अनुभव करने लगें कि ईश्वर के दर्शन आप को हुआ ही चाहते हैं। ज्योंही उस अनन्त शक्ति की अनुभूति का आगमन विद्युत् की तरह आप को होने लगेगा और आपकी आत्मा उस आकर्षण से ओत-प्रोत होगी, त्योंही इसका प्रदर्शन आपके मन में होने लगेगा और तब शरीर के प्रत्येक अंग प्रत्यंगों द्वारा उस दैवी ज्योति का प्रादुर्भाव आप अपने में अनुभव करने लगेंगे। तब जितने दर्जे तक आप अपनी इच्छा शक्ति द्वारा आप उस अनन्त धारा को आने देंगे, उसी दर्जे तक आप अपने अंदर प्रशान्त और ज्योतिपूर्ण शक्ति का अनुभव करेंगे और साथ ही आपका शरीर मन और आत्मा केन्द्रीभूत होकर एक सीध में आ जायगा और इसे ही समाधिस्थ होना कहते हैं। समाधि की यह अवस्था योग दर्शन में सम्प्रज्ञात कहलाती है अर्थात् जब आपकी आत्मा, मन और शरीर एक रस होकर डाइनेमो बन जाता है और संसार के चारों ओर फैली हुई सात्विक कल्पनाओं के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करता है, तब आपको यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि ईश्वर के साथ साक्षात् कार करने का उपयुक्त समय आपको प्राप्त होगया है और तब आप अपनी अन्तरात्मा में उस अन्तर्नाद को स्पष्ट तौर पर सुनने लगेंगे। उस दैवी ध्वनि को आप बड़े ध्यान से सुनिये। वह आप की आत्मा में एक अद्भुत आनन्द उत्पन्न करेगी। उस आनन्द के संस्कारों को अत्यन्त मूल्यवान मान कर उनकी स्मृति बनाए रखने का अभ्यास कीजिए, जिससे आप उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते उस नशे को बराबर कायम रख सकें। इस प्रकार के अभ्यास से भले ही वह दैवी ध्वनि निरंतर सुनाई न दे, लेकिन आपका शरीर, मन और आत्मा विद्युत्मय हो जाने के कारण इर्द-गिर्द के सभी पदार्थों को विद्युतमय बनाने का प्रयत्न करेगा और इस प्रकार आप अपने लिए ही नहीं, बल्कि

आपके सम्पर्क में आने वाले सब लोगों को उस आध्यात्मिक वातावरण का रसास्वादन करा सकेंगे।

और देखिये, आपकी जीवनी है व्यापार-धन्धे की। आपको भीड़ भड़क्के में रहना पड़ता है, जहाँ का गुलगपाड़ा मानसिक एकाग्रता होने नहीं देता। किन्तु यदि आप हमारे ऊपर लिखे ढंग से अभ्यास करेंगे तो किसी प्रकार का शोर गुल आपकी मानसिक शांति को भंग नहीं कर सकेगा। प्रायः लोग यह समझते हैं कि समाधिस्थ पुरुष दुनियां के काम के नहीं रहते और वे केवल पर्वतों की कन्दराओं तथा एकान्त गुफ़ाओं में ही निवास करते हैं। यह अत्यंत भ्रमात्मक धारणा समाधि के विषय में संसार में फैली हुई है। स्मरण रहे कि अकर्मण्यता का नाम समाधि नहीं, बल्कि श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार--"योगः कर्मसु कौशलम्"-अर्थात् प्रत्येक व्यवहारिक काम में सात्विक कौशल का आजाना ही सच्चा योग कहलाता है, की उक्तिके अनुसार समाधिस्थ पुरुष ही कुशल कर्मयोगी बन सकता है। आप का दफ़्तर भले ही नगर के व्यापार-केन्द्र में हो, किन्तु आप वहाँ भी अपने इर्द गिर्द मानसिक एकाग्रता का ऐसा प्रभाव शाली पर्दा डाल सकते हैं कि आपको चारों ओर की चिल्लपों कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकेगी और आप शान्ति से अपने दफ़्तर का कार्य कर सकेंगे। आपके अन्तस्तल में यह बात घर कर जांयगी कि आप के चारों ओर उसी अनन्त स्रोत की जीवन कणिकाएँ अपना काम कर रही हैं—मानो दैवी प्रेम, सत्य ज्ञान, शान्ति, बल और समृद्धि, आप का पथ प्रदर्शन, रक्षण तथा नेतृत्व कर रही हैं। यह है आपकी ईश्वरीय प्रार्थना का दैवी मर्म। आप सदा इसी प्रकार की भावनाएँ अपने मस्तिष्क में लाते रहेंगे—इसी को कहते हैं परमात्मा का साक्षात्कार और उसके प्रति आत्म

समर्पण। इसी का नाम है अपने स्वरूप को पहचानना और यही कहलाता है आत्म दर्शन। ऐसे ही पुरुष को जीवन मुक्त कहते हैं, जिसे अपने ही जीवन में दैवी प्रकाश की प्राप्ति हो जाती है। पहला जीवन जो माता पिता के गर्भ से मिलता है प्राकृतिक कहलाता है और दूसरा जो सम्प्रज्ञा समाधि के बाद होता है, उसे अध्यात्म पुनर्जन्म कहते हैं। इस अध्यात्म पुनर्जन्म में स्थूल शरीर के स्थान पर आत्म दर्शन द्वारा सूक्ष्म शरीर का निर्माण हो जाता है। यही असत से सत की ओर जाना, अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ना और मृत्यु से अमरत्व को प्राप्ति करना कहलाता है। सत्य, शिव और सुन्दर की अनुभूति यही कहलाती है। अब तक तो हम शारीरिक सुख को ही अत्यन्त प्रिय मानते रहे हैं, किन्तु अब हमें सच्चे सौंदर्य का आनन्द मिलने लगता है और अब हम स्वर्गीय संगीत का आलाप करने लगते हैं।

यही संक्षेप में सत्यज्ञान का स्वरूप है और हम में से प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपनी इच्छानुसार उसकी गुण-गरिमा को अपना सकते हैं। हमें चाहिए कि हम अभी से इसी लक्ष्य को प्राप्ति के हेतु कमर कस कर तैयार हो जांय और निश्चित समय के अन्दर ही हमें पूर्णतया आत्म सिद्धि के सात्विक लक्ष्य की प्राप्ति हो जायगी। हिमालय की चोटी पर पहुंचने के लिए सब से पहली बात यह करनी होती है कि हम उसके लिये दृढ़ व्रती हों। तब सीधे खड़े होकर अपनी यात्रा आरम्भ करदें तो अवश्य ही हम कभी न कभी शीघ्र अथवा देर में चोटी पर पहुँच जांयगे। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हमारी यात्रा की दिशा ठीक हो और हम बराबर उस ओर गतिवान रहें, जब तक कि चोटी पर न पहुँच जांय। जर्मनी के जगत् प्रसिद्ध दार्शनिक

गेटे ने कहा है—'क्या आप सचमुच दृढ़ व्रती हैं, तब इसी समय खड़े हो जाइए और जो कुछ आप करना चाहते हैं, उसे आरम्भ कर दीजिए; याद रखिए साहसी पुरुष जादूगर होता है, उसमें कार्य साफल्य की विचित्र शक्ति होती है; पहले सिर्फ कार्य आरम्भ करना होता है और जब मन उसके अनुकूल हो जाता है तो फिर वह कार्य बड़ा मधुर और प्यारा बन जाता है—फिर उसे पूरा होते देर नहीं लगती।"

परम पुरुषार्थ के अवतार शाक्य वंश के उस राजकुमार गौतम ने जब सत्य ज्ञान की प्राप्ति का बीड़ा उठाया तो उन्होंने दृढ़ संकल्प कर कहा—"मैं अपने इस संकल्प को अवश्य पूरा करूँगा; मैं बुद्धत्व-पद की प्राप्ति के लिए कोई बात उठा न रखूँगा।" उनके ऐसे साहसी वाक्यों ने उनके अन्दर परम पुरुषार्थ की वह शक्ति भर दी कि जिसके सहारे वे मानव समाज के लिए प्रकाश स्तम्भ बन गये और इसी जन्म में उन्हें निर्वाण-पद की प्राप्ति हुई। उनके उपदेशों में वह बल भरा हुआ है कि जिसके सहारे हम सब उसी पद की प्राप्ति कर सकते हैं। उनका यही दृढ़ संकल्प लाखों आत्माओं के लिए शान्ति देने वाला हुआ और सारे एशिया में उनके ज्ञान सूर्य की किरणें फैल गयीं।

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं कि सारी बाइबिल में हमें इस वाक्य ने सबसे ज्यादा अपनी ओर आकर्षित किया है—

"Seek ye first the Kingdom of God and his righteousness and all these things shall be added unto you."

अर्थात् हमें पहले ईश्वरीय राज्य और उसके पवित्र नियमों की खोज करनी चाहिए, तब शेष संसार के पदार्थ हमें आप

ही आप मिल जांयगे। इस एक वाक्य में कितनी अधिक सामग्री भरी हुई है और जीवन की समस्याओं के हल का कैसा व्यवहारिक तरीका इसमें बतलाया गया है। जिसके अन्दर प्रकाश है, जिसे सत्य की चाह है और जो सच्चा जिज्ञासु है, उसके लिए उपरोक्त शब्द चुम्बक का काम करेंगे और उनकी अधिक गहराई में जाने से हमें यह ज्ञान हो जायगा कि इनमें प्रभु के साथ एकता स्थापित करने की कैसी ज़बर्दस्त प्रेरणा भरी हुई है।

अपने संसार-भ्रमण में हमें इस प्रकार के मनुष्यों से मिलने का अवसर मिला है, जिनका जीवन इसी प्रकार अनन्त के नियमों के अनुकूल ढला हुआ था। ऐसी आत्माएँ सदा सुखी और प्रसन्न रहती हैं। उन्हें किसी प्रकार की दुनियावी जरूरतें नहीं सताती; सब चीज़ें उनके पास आप ही आप चली आती हैं, जैसे ऋतुएँ नियमपूर्वक बदलती रहती हैं। उसी प्रकार उनके जीवन की गति-विधि सुव्यवस्थित रहती है। किसी प्रकार की कठिनाई आजाने पर वे बिलकुल नहीं घबाड़ते। उनका आत्म-विश्वास ऐसा दृढ़ होता है कि वे कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करते हुए, अपने उद्देश्य की सिद्धि सहज में कर सकते हैं। अपने कार्योपयोगी वस्तुओं के चुनने में वे बड़े सिद्धहस्त होते हैं और जिधर वे हाथ डालते हैं, उधर की मिट्टी भी सोना हो जाती हैं।

हमें एक ऐसे ही प्रेमी की याद आती है। फ़िलीपाइन द्वीप की राजधानी मनीला के शिक्षा विभाग में वे हैड-क्लर्क थे—उनका नाम था मिस्टर क्लीन्टन सी स्कौट। सन् १९०६ के शीतकाल में मेरी उनसे मनीला नगर में भेंट हुई थी। कैसा उदार और कैसा सज्जन था यह अमेरिकन! उसकी

मधुर स्मृतियां आज भी मेरे हृदय-पटल पर लिखी हुई हैं। कैसा स्नेह भरा उनका बर्ताव था मेरे साथ और कैसी करुणा मयी दृष्टि थी उनकी! इन्होंने बड़ा आग्रह किया था मुझे अपने पास रखने का, किन्तु उस समय तो मुझ पर अमेरिका जाने का भूत सवार था। पाँच वर्ष बाद अमरीका भ्रमण करते समय उनकी मेरी दोबारा भेंट केलेफोर्नियां में हुई थी। उस अपने प्यारे मित्र की स्नेहमयी मूर्त्ति आज भी मुझे बार-बार स्मरण होआती है। सच है, ऐसे लोग कभी नहीं मरते। वे अपना स्थायी प्रभाव आकाश में छोड़ जाते हैं।

सब प्रकार के क्लेश, फ़साद, त्रास, दुख, भय, अश-कुन, घबराहट और चिन्ताएँ हम सब के जीवन में इसलिए आती हैं, क्योंकि हम अपना सम्बन्ध अनन्त के साथ तोड़ लेने के कारण अव्यवस्थित अवस्था में होजाते हैं। उपरोक्त सब प्रकार के विकार और कष्ट हमें सताते रहेंगे, जब तक कि हम अपने जीवन को सुव्यवस्थित और संयमी न बनाएँगे। जीवन धारा के विरुद्ध बहना अनुचित है। धारा के अनुकूल चलते हुए, परिस्थितियों का लाभ लेते हुए, अनुशासन का जीवन रख, यदि हम आगे बढ़ने का प्रयत्न करेंगे, तो हमें सफलता प्राप्ति में अधिक देर न लगेगी। अनन्त-स्रोत के साथ चैतन्य सम्बन्ध कर लेना प्राकृतिक नियमों के अनुकूल धारा के साथ चलना कहलाता है। क्योंकि अनन्त के साथ एकता स्थापित करने का अभिप्राय इर्द-गिर्द के सभी पदार्थों के साथ एकता-सम्बन्ध स्थापित करना है—इसी से शनैः शनैः सारे विश्व के साथ हमारा प्रेम सम्बन्ध हो जाता है और सब से बढ़ कर उपयोगी बात यह हो जाती है कि हमारी आत्मा मन और शरीर एक सीध में आ जाते हैं और इस प्रकार हमें सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है।

जब ऐसी अवस्था में प्राप्त हो जाती है तो लाखों योनियों में पाये हुए शारीरिक संस्कार हमारा पीछा छोड़ने लगते हैं और हमारी इन्द्रियां हमारे वशीभूत होकर हमें आत्मिक उत्थान में सहायता देने लग जाती हैं। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर द्वारा शासित होने लगता है और यह सूक्ष्म शरीर लिंग शरीर के अधीन होकर आत्मिक ज्योति की प्राप्ति करता है। जीवन तब अपने यथार्थ स्वरूप में गुलाब के फूल की तरह खिलने लग जाता है और मानव शरीर के रोम-रोम से आध्यात्मिक सूर्य की किरणें प्रस्फुटित होने लगती हैं। जीवन का वह आनन्दमय स्वरूप विकास की उस सीमा पर पहुँच जाता है, जहाँ किसी प्रकार की तमोगुणी वृत्ति मानव को दुःख नहीं पहुंचा सकती और उसके चारों ओर हर्ष तथा उल्लास का वातावरण उपस्थित होजाता है। मध्यम पथ की चमत्कारिक शक्ति तब हमें भली प्रकार समझ में आती है, जिस मध्यम पथ का निर्देश तथागत ने अपने उपदेशों में बार-बार किया है। भगवान् बुद्ध को जब बुद्धत्व-पद की प्राप्ति हुई तो उन्होंने इस सत्य सिद्धान्त को भली प्रकार अनुभव कर लिया कि न तो चारवाक का वाम-मार्ग और न जैनियों की, शरीर सुखाने वाली तपस्या का सिद्धान्त मनुष्य के लिए आदर्श हो सकता है— केवल मध्यम पथ ही सब से श्रेष्ठतम् नैतिक मार्ग है। जो लोग उपवासों द्वारा शरीर को सुखाते, आग ताप कर उसे अर्द्ध दग्ध करते, सिर के बाल नोंच नोंच कर उन्हें उखाड़ते, उपस्थेन्द्रिय को काट डालते तथा अन्य अस्वाभाविक और कुत्सित ढंगों से झूठे वैराग्य का परिचय देते हैं, वे किसी प्रकार भी सच्चे तपस्वी नहीं कहला सकते; साथ ही जो "ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्" कर्ज करके घी खाते हैं, और मौज बहार करने का सिद्धान्त सिखलाते हैं, ऐसे कम्यूनिस्ट लोग मानव समाज के

घोर शत्रु हैं। संयमी जीवन ही समाज का सच्चा आदर्श है और यही ऋषि-मुनियों का वैदिक पथ है। संसार के सब पदार्थ उस प्रभु ने हमारे उपयोग के लिए दिये हैं, किन्तु उनका सदुपयोग होना चाहिए, जिससे उनका पूरा लाभ हमें मिल सके।

मत समझिए कि अध्यात्मिक जीवन में स्थूल इन्द्रियां नहीं रहतीं अथवा हम उनके प्रति उदासीन हो जाते हैं—नहीं नहीं, वास्तविक बात यह है कि संयम पथ पर चलने वाले ही इन्द्रियों का यथार्थ उपयोग समझने लगते हैं, क्योंकि शरीर स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलने लगता है, उसकी कठोरता दूर होकर उसमें कोमलता आजाती है, इस कारण इन्द्रियां भी स्थूल तत्वों को छोड़ कर सूक्ष्म तत्वों की ओर आकर्षित होने लगती हैं। जो भोजन हम स्थूल पदार्थों द्वारा लेते थे और उनसे शक्ति प्राप्त करते थे, वही शक्ति हमें सूक्ष्म पदार्थों से मिलने लगती है और अध्यात्म तत्वों के साथ सम्बन्ध होजाने के कारण प्राकृतिक शक्तियां हमें वरदान में मिलने लगती हैं। परिणाम यह होता है कि मानव जीवन पूर्ण और स्वाभाविक ढंग से विकसित होने लगता है और उसकी उन्नति चतुर्मुखी होजाती है। अब आत्मा चैतन्य ज्योति के क्षेत्र में प्रवेश करता है, जहाँ उसकी ऋतम्भरा बुद्धि प्रकृति के उच्चतम सिद्धान्तों और दैवी रहस्यों को समझने लगती है। उस चैतन्य ज्योति-क्षेत्र में प्रवेश करने पर आत्मा सब प्रकार की शकाओं से मुक्त होजाता है। उसका निकाला हुआ परिणाम ठीक निशाने पर बैठता है अर्थात् उसे निर्मल सत्य की अनुभूति होने लगती है; वह द्रष्टा होकर सब पदार्थों की तह को जानने लग जाता है। उसकी ऋतम्भरा बुद्धि अब उस आनन्द का रसास्वादन लेने लगती है, जिसका वर्णन—"न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते" अर्थात् वाणी उसका

वर्णन नहीं कर सकती, वह आनन्द केवल अन्तःकरण से ही अनुभव किया जा सकता है। उस समय आत्मा को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि वह ज्ञेय से अज्ञेय की ओर चला जाता है और मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ने लगता है। परमात्मा को जानने के लिए हमें अमूर्त पदार्थों को समझने की अति आवश्यकता है और जब हमारी विचार-धारा अमूर्त भावों को चित्रित करने लग जाती है तभी हमें अपने आप को अध्यात्मवाद के क्षेत्र में प्रविष्ट समझना चाहिए।

प्रायः हम लोग जिन विषयों की चर्चा करते हैं उनके असली रूप को हम नहीं पहचानते। यही कारण है कि बहुधा हमारे निकाले हुए नतीजे असत्य सिद्ध होजाते हैं। क्योंकि हमारे दिलों में जमे हुए पक्षपात तथा मनोविकार वस्तु-स्थिति समझने में रुकावटें डालते हैं और हमारा मस्तिष्क विकृत ढंग से सोचने लग जाता है। लेकिन जब सम्प्रज्ञान समाधि द्वारा हमारे सारे विकार दूर हो जाते हैं, तब लौकिक पदार्थों के विषय में हमारी विचार-धारा निर्दोष होजाती है। तभी हमें ऋषि-मुनि पद प्राप्त होता है और हममें सब विषयों को यथार्थता पहँचानने की योग्यता आ जाती है और हमारी इन्द्रियां बिल्कुल नये ढंग से प्राकृतिक पदार्थों का अध्ययन करने लग जाती हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म बात हमारी दृष्टि से बच नहीं सकती और धूर्त से धूर्त मनुष्य हमें धोखा नहीं दे सकता। वह हमारे सामने आने से घबड़ायेगा—इतना ही नहीं, बल्कि हमारी उपस्थिति से उसकी सोई हुई आत्मा चैतन्य होने लगेगी और वह अपने दोषों को देखने लगेगा; इसीलिए महात्माओं के सत्संग से पापियों का त्राण होजाता है और वे भी अपने पापों का प्राय-श्चित कर सीधे मार्ग पर आ जाते हैं। बहुत सी बातें ऐसी हैं

कि जिनका यथार्थ स्वरूप सुनने और पढ़ने से भली प्रकार ज्ञात नहीं हो सकता, जब तक हम उस अवस्था में से स्वयम् न गुज़रें। इसी कारण विकास की पूर्णता के लिए आत्मा को ऐसी योनियों में से गुजरना पड़ता है, जिनके विषय का उसे पहले ज्ञान नहीं होता; कई वार ऐसा भी होता है कि अत्यन्त विकसित जीवात्मा किसी विशेष अनुभव की प्राप्ति हेतु किसी खास शरीर में प्रवेश करता है और वहाँ का अनुभव लेने के बाद किसी सिद्धान्त का असली तथ्य उसकी समझ में आता है। आध्यात्मिक जगत् की इस प्रकार की घटनाओं के सम्बन्ध में अभी मनोवैज्ञानिक लोग बड़ी दिलचस्पी से अपना अन्वेषण कर रहे हैं और वह समय शीघ्र आने वाला है, जब जागरूक आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व और उसकी क्रियाएँ बड़ी आसानी से पहचानी जा सकेंगी। यदि मनुष्य परमात्मा की इच्छानुकूल जीवन बनाना सीख जाय तो उसके लिये ईश्वरीय क़ानूनों की जानकारी सहल होजाय। प्लौटीनस ने यह बात कही थी कि ईश्वरी रहस्य समझने के लिए मनुष्य को ईश्वर बनना पड़ता है, तभी उसकी क़ुदरत समझ में आ सकती है। प्राकृतिक क़ानून जो ब्रह्मांड में काम कर रहे हैं, उनके रहस्य हमारी समझ में नहीं आते किन्तु जैसे ही हम अध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं हमें यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है कि कुदरत के वे अगम अगोचर रहस्य कैसी आसानी से हमें स्पष्ट होने लगते हैं। तब हम एक प्रकार से ऐसा दैवी साधन बन जाते हैं, जिसके द्वारा बड़ी अद्भुत बातें संसार में होने लगती हैं। जैसे उदाहरण के तौर पर हमने तेरह वर्ष के एक ऐसे ब्रह्मचारी को देखा, जो चारों वेदों के किसी भी मन्त्र का अर्थ बिना किसी कठिनाई के शब्दार्थ व्याख्या सहित झट करने लगता था। जिन वेदों के पढ़ने तथा समझने में लोग सारी आयु खर्च

कर देते हैं और तिस पर भी वे उन मन्त्रों के अर्थ बड़ी कठिनाई से निघंटु और निरुक्त की सहायता से समझने में समर्थ हो सकते हैं, उन्हीं वेद मन्त्रों के अर्थों को वह बालक फटाफट लगाता चला जाता और साथ-साथ व्याख्या भी कर देता था। है न यह बड़े चमत्कार की बात !

जब मनुष्य इस दर्जे तक जागरूक होजाता है कि उसे अध्यात्म क्षेत्र की सीमाएँ बोध होने लगें—जब उसे जनसमूह में कार्य करते समय नये अनुभव प्राप्त होने लगते हैं—ऐसे अनुभव कि जिनके द्वारा वह अपने इर्द गिर्द के लोगों में साहस, उत्साह, शक्ति और आकर्षण भरने लग जाता है—तब हम मिकनातीसी चुम्बक बन कर चारों ओर अपने प्रभाव को दौड़ाने लग जाते हैं; उस समय हमें दूसरों पर अपना प्रभाव डालने का काम कैसा सहज प्रतीत होने लगता है। लोग आप ही आप लोहे की भांति हमारी ओर खिचे चले आते हैं और बिना किसी रुकावट के हमारे आदेश को मानने लगते हैं। कई बार यह बड़े आश्चर्य से देखा गया है कि कुछ लोगों का व्यक्तित्व इतना जबरदस्त होता है कि लोग उनका शासन झट स्वीकार कर लेते हैं और अपने आप को उनके सामने समर्पित कर देते हैं। हमारा बुरा भला असर इसी प्रकार काम करता है जैसा कि मधुर और विषैले फूल पौधे काम करते हैं। गुलाब का फूल अपनी मीठी सुगन्धि आप ही आप देता है और विषैले पौधे जहरीली कल्पनाएं छोड़ते रहते हैं।

जितनी अधिक सात्विक जीवनचर्या किसी व्यक्ति की होती है, उतना ही अधिक प्रभाव उसका दूसरों पर पड़ता है। जिनके जीवन अधम और पतित होते हैं, वे उन्हीं के अनुसार उसी दर्जे तक दूसरों को हानि पहुँचाते हैं। हम सब एक प्रकार के

ऐसे रेडीएटर अर्थात् प्रभा-प्रसारक यन्त्र हैं जो चारों ओर बुरी भली किरण फैलाते रहते हैं। अपवित्र जीवन के लोग अपने इर्द गिर्द नरक की रचना करते हैं और सदाचारी व्यक्ति स्वर्ग के निर्माता होते हैं।

हिन्द महासागर में चलने वाले स्टीमरों के मल्लाह अपने अनुभव बतलाते हुए वर्णन करते हैं कि जब वे अपने स्टीमर में किसी प्रभात के समय चन्दन की मीठी सुगंध सूँघते हैं और वायु में उसकी लपटें आती हुई पाते हैं तो वे समझ जाते हैं कि चन्दन की लकड़ी से भरपूर जंगलों वाला द्वीप निकट आ रहा है, यद्यपि अभी तक कोई दूसरा चिह्न उस द्वीप का उन्हें दिखाई नहीं देता और न उड़ते हुए पक्षी ही कहीं दृष्टिगोचर होते हैं। क्या आप इस एक उदाहरण से इस बात के महत्त्व को हृदयंगम नहीं कर सकते कि ऐसी आत्मा बन जाना आप के लिए कितना सौभाग्य पूर्ण होगा, जिसकी शक्ति और पवित्रता की कल्पनाएँ दूर दूर तक दूसरों पर असर डालने की सामर्थ्य रखने वाली हों। तब आप जहाँ भी जांयगे, वहीं आपका आशीर्वाद तथा आपकी तपस्या के मीठे फल लोगों पर आप ही आप प्रगट होने लगेंगे। तब आप के मित्र प्रेमी और सम्बन्धी बड़े उल्लास से यह कहा करेंगे—"भाई साहब आपके आने से हमारी हृदय कली खिलने लगती है और हम गद्गद् होजाते हैं।" क्या इस प्रकार का सुन्दर प्रभाव आप अपनी आत्मा में उत्पन्न करना चाहते हैं? यदि चाहते हैं तो आज से ही हमारे लिखे अनुसार जीवनचर्या बनाइए और नित्य प्रति अपनी दैवी शक्तियों को बढ़ाइए, फिर आप देखेंगे कि आप के शरीर से कैसी सुगंध चारों ओर फैलने लगती है और आप के मित्र प्रेमियों की संख्या कितनी जल्दी बढ़ती है। आपका स्वागत करने के लिए

राह चलते लोग खड़े हो जाया करेंगे और आप की कीर्ति-कौमुदी का प्रकाश चारों ओर होगा। थके-हारे, दुःखी-अनाथ, विधवा स्त्रियां और बीमार लोग आपकी उपस्थिति से निहाल हो जाया करेंगे। पशु भी आपके स्पर्श को पाकर अपनी प्रसन्नता प्रगट करेंगे।

मानवीयता से परिपूर्ण आत्मा का कैसा अद्भुत प्रभाव समाज पर पड़ता है। आत्मा हमारे ही पुरुषार्थ और तप से भय ऐसा शक्ति-शाली और प्रभावोत्पादक बन सकता है, इस बात की जानकारी हमारे पाठकों को हर्ष और उल्लास से ओत-प्रोत कर देगी। हम संसार में कैसे बलवान और प्रतिभाशाली महापुरुष हो सकते हैं, इसका रहस्य अब हमारी समझ में आजाना चाहिए; अब हमें भली प्रकार इस बात को समझ लेना उचित है कि जितने महान सेनापति, बड़े-बड़े मसीहा, सामर्थ्यवान, अवतार और मेधावी लेखक इस पृथ्वी पर हुए हैं, जिनकी जीवनियां पढ़ने से हमारी रग-रग में आनन्द की लहरें दौड़ने लगती हैं और हमारा हृदय नवीन स्फूर्ति पाकर नाचने लगजाता है— ऐसी प्रतिभाशाली आत्माएं जैसे पहले युगों में उत्पन्न होती रही हैं, वैसी अब भी हो सकती हैं और भविष्य में भी होती रहेंगी। यदि हमारे इस ग्रन्थ की कोई पाठिका अथवा पाठक उन जगत् प्रसिद्ध आत्माओं की श्रेणी में अपने आप को खड़ा करना चाहता है तो उसे दृढ़व्रती होकर आज से ही इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि वह अपने जीवन को इसी आदर्श के लिए बलिदान कर देगा। आप अपने पुरुषार्थ से अपनी आत्मा को ऐसा आकर्षक बना सकते हैं कि समाज में आप की उपयोगिता दिन प्रतिदिन बढ़ती जाय। इस प्रयोग की कुञ्जी आप की अपनी मुट्ठी में है। सब प्रकार के सन्देहों को छोड़ कर, संशयों को दूर भगा अब आप को आत्म-विश्वास

के साथ कमर कसकर अपने जीवन में नया अध्याय खोलना चाहिये और अनन्त के साथ सम्बन्ध कर बिन्दु को समुद्र के साथ मिलाने का प्रयास करना उचित है। जब यह बिन्दु उस अनन्त ब्रह्मज्ञान की धारा से सम्बन्ध स्थापित कर लेगा तो इसे अनन्त की शक्तियां प्राप्त हो जांयगी। "तत्वमसि अथवा सोहम्" की रट लगाने से आप ब्रह्म नहीं बन सकते। इस आत्म वंचना के झूठे मार्ग को छोड़कर अब आपको अनन्त के साथ सच्चा सम्बन्ध करना सीखना चाहिये—

सबसे पहले आत्म शुद्धि के सिद्धान्त को भली प्रकार जान लीजिए और "Like attracts like" अर्थात् समगुणों वाले एक दूसरे को आकर्षित करते हैं, इस तथ्य को अपने हृदय पट पर लिख लीजिए। जब आप अपने आपको सात्विक गुणों से विभूषित करने पर तुल जांयगे, जब आप एक एक क्षण प्रभु की उपस्थिति अभ्यास करेंगे, जब आप मन, वाणी और कर्म से एक रस हो जांयगे और आप का फ़ोकस एक सीध में आ जाएगा, तब आप को अनन्त के साथ एकत्व का वरदान प्राप्त होगा और तभी आप को ईशोपनिषद् के नीचे लिखे मन्त्र की महत्ता पूर्णतया समझ में आ जाएगी—

यस्मि[illegible] ...भूद्विजानतः।
तत्र [illegible] ...त्वमनुपश्यतः॥

अर्था[illegible] प्राणियों को अपने आत्म[illegible] पहचानने लग जांयगे, उस समय किसी प्रकार का मोह [illegible] शोक हमको स्पर्श नहीं करेगा और उस समय हम अनन्त के साथ एकत्व स्थापित कर उसकी अद्भुत शक्तियां प्राप्त करेंगे।

ओ३म् शम्॥